TEXT FLY WITHIN
THE BOOK ONLY

UNIVERSAL LIBRARY

OU_180637

UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 83 S 58 G Accession No. H 2283

Author सिंह, गोविन्द

Title गटर के कीडे १९५४

This book should be returned on or before the da
last marked below.

गटर के कीड़े

—गोविन्द सिंह

प्रकाशक—
सुभाष पुस्तक मन्दिर
अवधगर्वी, बनारस

प्रथम संस्करण
जून : १९५४

★

आवरण चित्र
श्री मनोरंजन कांजीलाल
मिश्र पोखरा, बनारस

मुद्रक—
राष्ट्रभाषा मुद्रणालय
लहरतारा, बनारस।

उठ-उभरती हुई नयी पीढ़ीको —
टप्पू बननेकी आशाओंके साथ।

—गोविन्द सिंह।

हड्डियोंके ढाँचे

श्री गोविन्दसिंह द्वारा रचित

एक अनूठा उपन्यास

मूल्य

पाँच रुपया

भूख के मारे जब खनमन रोने लगा, तो जसुदिया ने उसे डाँटकर चुप कराते हुये, टप्पू से कहा—"जा रे, पंडितजी के यहाँ से मेरा नाम लेकर दो ठो रोटियाँ माँग ला और इसे खिला देना। तीन बज रहा है। मुझे सड़क साफ करने जाना है। जमादार जी आ जावेंगे तो मुझे दस ठो बातें कहेंगे।"

माँ की बातों को सुनी-अनसुनी कर टप्पू मिट्टी के कच्चे टूटे-फूटे खपरैल वाले अपने मकान से बाहर हो गया।

मैदान में लड़के खेल रहे थे। हरिजनों के लड़के। काले-कलूटे। बहुत से नङ्ग-धड़ङ्ग थे। धूल भरे, मैल भरे शरीर। गन्दे और घिनौने। ऐसे ही लड़कों के बीच टप्पू पलकर बड़ा हुआ। अब उसके खेलने के दिन चले गये।

वह बड़ा हो गया है।

जवान हो गया है।

उस जैसे और भी जवान लड़के हरिजनों की इस बस्ती में हैं, पर टप्पू और उनमें अन्तर है। बहुत अन्तर है। वह कहने को हरिजन है

पर सूरत-शकल से उसे सहसा कोई हरिजन नहीं कह सकता है, जब तक कि उसे सड़क साफ करते, नाली साफ करते या कूड़ा-गाड़ी ठेलते कोई देख न ले।

भींगती हुई मसें, पुष्ट-शरीर, गेहुँआ रंग, उन्नीस-बीस का वह एक सलोना जवान था जिसका चेहरा सुन्दर था। स्वभाव से शान्त और शरमीला कि पास-पड़ोस के लोग आश्चर्य करते कि वह हरिजन के घर कैसे उत्पन्न हो गया? उसे तो किसी कुलीन वंश में जन्म लेना चाहिये था।

पर कभी-कभी ईश्वर की माया भी विचित्र हो जाती है कि हरिजन के घर राजकुमार-सा बालक जन्म ले लेता है। टप्पू भी एक ऐसा ही बालक था। उसके जन्म के समय खूब खुशियाँ मनाई गईं। छककर शराब पी और पिलाई गई। अपनी स्त्री से ऐसा फूल-सा बच्चा पाकर पति को बड़ी प्रसन्नता हुई थी। यह प्यार का नाम टप्पू उसने ही रक्खा। मरते दम तक इस बच्चे को बड़े जतन से रक्खा। सदा प्यार किया। जाते-जाते जसुदिया को हिदायत देता गया कि उसे कभी कोई तकलीफ न दे।

टप्पू के जन्म के समय जसुदिया भी बड़ी खुश थी। फूल-सा बच्चा पाकर उसकी खुशी का पारावार न था।

उसका नाक-नक्शा देखकर हठात् जसुदिया के अधरों पर मुस्कुराहट खेल गई थी।

उसके अधर अपने आप मुस्कुरा उठे थे, फुसफुसा उठे थे—"वही, बिलकुल वही। हूबहू वही।"

टप्पू जसुदिया का पहला बच्चा था। उस समय जसुदिया जवान थी। गदराया हुआ शरीर था। हसीन थी। टोकरी उठाकर हाथ में झाड़ू लेकर चलती थी तो कमर सौ-सौ बल खाती थी। देखने वाले इस खूबसूरत हरिजन-बाला को देखते रह जाते थे। भय के मारे समाज के सामने तो नहीं पर चुपके-चुपके बड़े-बड़े तिलकधारी पंडित भी उसे छेड़ा

करते थे। वह रोटी माँगती, तो पूड़ियाँ मिलती थीं। पैसा माँगती, तो रुपया मिलता था। जसुदिया के पास रकम हो गई थी। वह हर प्रकार से खुशहाल थी।

पति मरा! शरीर भी ढला! दुःख बीमारियाँ भी टूटीं। इन सब के कारण उसकी कमर टूट गई और उसकी दशा अपने जैसे अन्य लोगों की-सी हो गई।

मैदान पाकर टप्पू सड़क पर आया और किनारे-किनारे आगे बढ़ चला।

पंडित हरिहरनाथ शास्त्री का घर वह आज से नहीं बचपन से जानता है। उसे आज भी स्मरण है, उसकी माँ उसे वहीं उनके दरवाजे के पास बिठा कर अपने काम पर चली जाया करती थी। वह वहीं से रोटी माँग कर खा लिया करता था।

अब. बड़े होने पर जाने क्यों उसके मन में इस घर में जाने पर एक झिझक-सी मालूम होने लगी। उसके मन में संकोच-सा होने लगा पर माँ की आज्ञा का पालन उसे करना ही पड़ता था।

झिझकता हुआ, सिर झुकाये हुये टप्पू पंडितजी के घर के सामने जाकर खड़ा हो गया।

पंडितजी सदा बारामदे में ही रहा करते थे।

"क्या है, टपुआ?"

"पंडितजी....रोटी...खनमन रो रहा है। माँ ने कहा है।"

पंडितजी ने नीचे से ही आवाज़ दी—"ओ गौरा, नीचे आके दो रोटी दे जाओ। टपुआ आया है!"

"........"

पंडित जी हट गये।

बारामदे की सीढ़ियों के पास टप्पू खड़ा रहा, सिर झुकाये। कुछ देर बाद पायलों की आवाज़ सुन उसने आँखें उठाईं। गौरा थी। उसके

हाथ में रोटियाँ थीं। टप्पू ने अपनी मैली कमीज़ आगे बढ़ाकर रोटियाँ झेल लीं। उसने गौरा की ओर देखा। गौरा ने उसकी ओर देखा।

वह गौरा को बचपन से जानता है।

वह गौरा को पिछले दो-तीन बरस से प्रायः रोज देखता है। उसकी बस्ती के मैदान से सटी हुई सड़क से रोज गौरा अपने ताँगे पर स्कूल जाती है। दूर से वह उसकी एक झलक रोज पा ही लेता है। कभी-कभी रास्ते में भी उससे उसकी भेंट हो जाती है। वह ताँगेपर जा रही होती है और वह अपनी कूड़ागाड़ी ठेलता हुआ रहता है। उस समय टप्पू का सिर अपने आप जमीन में इस तरह से गड़ जाता है कि वह उसकी ओर उस समय तक कदापि नहीं देख पाता जब तक कि ताँगा ओझल नहीं हो जाता है।

टप्पू मन-ही-मन दुःखी हो उठा। पश्चाताप कर उठा अपनी स्थिति पर। अपने जन्म पर, अपने वंशपर और अपने कर्म पर।

"सब्जी बन रही है।"—गौरा बोली—"ठहर जाओ तो लेते जाना।"

"रहने दीजिये।"—टप्पू का स्वर सहमा हुआ था—"खनमन सूखी ही खा लेगा। अभी तो वह बच्चा ही है!"

"........"

गौरा पन्द्रह-सोलह साल की गौर वर्ण की लड़की थी। वक्षः पर यौवन के चिन्ह क्रमशः उभरते जा रहे थे। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों की काली-काली पुतलियों में एक चुम्बक-सा था। वह अधिक सुन्दर तो नहीं थी, पर कुल मिलाकर उसे एक सामान्य सुन्दरी निःसंकोच कहा जा सकता था।

रोटी देकर गौरा लौट गई।

टप्पू भी बाहर आ गया।

गौरा की ओर वह देख लेता था पर चाहकर भी अधिक देर तक वह

उसकी ओर नहीं देख सकता था। एक अज्ञात झिझक से वह सहम जाता और अपने आप उसकी पलकें ढँप जातीं थीं। लालसा उसके मन में होती कि वह उसकी ओर देखे। और देखे। देखता ही रहे पर साहस न होता था। मन की यह लालसा मन में ही रह जाती थी।

गौरा को देख लेने के पश्चात् टप्पू चिन्तित हो उठता था। जाने किन विचारों में वह खो जाता। वह गंभीर हो उठता था। अपने में ही खो-सा जाता था।

टप्पू इसी दशा में चला जा रहा था।

उसे इस बात का भान भी न था कि उसके साथ-साथ कमर पर टोकरी रक्खे कोई और साथ-साथ चल रहा है। उस गन्दी टोकरी में झाड़ू भी पड़ा हुआ था, जो बल खाती हुई कमर के साथ हिलता जा रहा था। साँवले, गन्दे पर आकर्षक चेहरे की दो बड़ी-बड़ी आँखें आश्चर्य से उसकी ओर देखती भी जा रहीं थीं।

हठात् मिस्सी लगे हुये दाँत चमके और एक हँसी सुनकर टप्पू चौंक पड़ा।

चिहुँककर उसने देखा।

"अरे, तुम लच्छो....!"

"अब तो ऐसा कहोगे ही!"—लच्छो बोली—"कब से तुम्हारे साथ-साथ चल रही हूँ और तुम देखते भी नहीं!"

उन्नीस-बीस की इकहरे बदन की साँवली लच्छो की ओर देखकर टप्पू बोला—"पंडितजी के घर रोटी लेने गया था। खनमन रो रहा है। जल्दी जा रहा हूँ, इसी से नहीं देखा!"

"दैया रे! जल्दी जा रहे हो। चीटीं जैसी चाल से तो मेरे साथ-साथ चले आ रहे हो!"

टप्पू ने कुछ न कहा।

वह मुस्कुरा पड़ा।

कुछ कदम दोनों साथ चले। लच्छो का घर पहले था। एक बार बड़े ही अभिनय से उसकी ओर देखती हुई लच्छो घर में चली गई। अनजान की तरह टप्पू आगे बढ़ गया। घर में आया।

जसुदिया न थी।

खनमन बैठा था। उसे रोटी देकर, एक टूटे प्याले में उसके लिये पानी लाकर रख दिया उसने।

बोला—"खा ले और जा खेल! किसी से लड़ाई-झगड़ा मत करना। मैं काम पर जाता हूँ।"

हाथ में झाड़ू लगा-डण्डा लेकर वह चल पड़ा।

अपने क्षेत्र में आकर वह अपने कार्य पर जुट गया। सिर झुकाकर नाली साफ करने लगा। उसे कार्यरत देखकर लोग हटने लगे।

गन्दगी से बदबू निकलने लगी।

यत्र-तत्र पथ पर से चलते हुये पथिक हटकर चलने लगे। टप्पू को तो इस गन्दगी में रहने की आदत पड़ गई थी। उसके पास से लोग नाक दबाकर निकल जाते थे, पर टप्पू को भला इसकी क्या आवश्यकता थी!

यह सब देखकर उसके मन में आश्चर्य अवश्य होता कि लोग उससे दूर क्यों भागते हैं? क्या वह आदमी नहीं है? टप्पू के मस्तिष्क में यह प्रश्न बहुधा चक्कर काटा करता था। मनुष्य होकर भी वह मनुष्यों के साथ नहीं रह सकता है! लोग उसके स्पर्श से दूर भागते हैं। उसे आते देख अथवा उसे कूड़ा-गाड़ी ठेलते देख राहगीर, जाने और अनजाने अपने आप हटकर उसे रास्ता दे देते हैं।

चाय की दूकान पर, पान की दूकान पर उसे दूर ही खड़े रहना पड़ता है। हाथ में ही झेलकर उसे सब वस्तुयें ले लेना पड़ती हैं। उसका स्पर्श नहीं। टप्पू बहुधा आँखें फाड़कर रह जाता। उसका स्पर्श

किया हुआ पैसा लोग सहर्ष ले लेंगे, पर उसे स्पर्श नहीं कर सकते हैं। पैसे से मोह है, मनुष्य से नहीं।

मनुष्य होते हुये भी वह मनुष्यों की दुनिया से दूर है। उसका अपना सामाजिक जीवन है। दूसरों के समाज में वह घुल-मिल नहीं सकता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आपस में घुलते-मिलते हैं। उठते-बैठते हैं, पर एक वह है कि इनमें कभी घुल-मिल नहीं सकता है। इतना ही नहीं आम लोग उससे बात करने में भी दूर भागते हैं।

वह सब को स्वच्छ रखता है। गन्दगी हटाकर उनकी सेवा करता है। यदि एक दिन के लिये भी वह अपना काम बन्द कर दे तो मुहल्ले में हाहाकार मच जाता है। इस पर भी उसका मूल्य उस गन्दगी से अधिक नहीं है। मनुष्य होते हुये भी उसमें और गन्दगी में कोई अन्तर नहीं है। वह प्रायः अपने इस जन्म पर दुःखित रहता।

उसमें कोई कमी नहीं है। उसका आकार भी मनुष्यों जैसा है, बल्कि वह तो विशेष रूप से सुन्दर है और उच्च-कुल का प्रतीत होता है, इस पर भी उसके साथ ठीक वही व्यवहार यह समाज करता है, जो गन्दगी के साथ होता है। उसी दृष्टि और उसी उपेक्षा से उसे देखा जाता है।

टप्पू दुःखित रहता मन ही मन।

सोचा करता क्या वह मनुष्यों के अधिकार से आजीवन वंचित रहेगा? क्या इसी प्रकार गन्दगी हटाते-हटाते और नालियाँ साफ करते-करते, कूड़ा गाड़ी ठेलते-ठेलते उसकी जिन्दगी समाप्त हो जावेगी?

टप्पू का मन छटपटाता रहता। स्कूल जाने वाले लड़कों को वह हसरत भरी निगाहों से देखा करता। सोचता क्या वह भी लिख-पढ़ नहीं सकता है? यदि वह लिख-पढ़ जावे और इस काम को छोड़ दे, कहीं नौकरी कर ले, तब क्या उसे इस समाज में प्रतिष्ठित स्थान नहीं मिल सकता है?

अपनी गन्दगी की दुनियाँ से ऊपर उठने की प्रबल लालसा उसके मन में काम कर रही थी।

यह सत्य है कि उसकी बस्ती का कोई भी न लड़का, न लड़की स्कूल जाता है और न कोई भी व्यक्ति शिक्षित है। ऐसी अवस्था में क्या वह इस ओर कदम उठा सकता है? उसकी बस्ती के बच्चे बड़े होते ही, होश सँभालते ही, अपने माता-पिता के काम में हाथ बँटाने लगते हैं। म्युनिसिपिल से उन्हें अल्पवेतन मिलने लगता है। खानदान का यह पुश्तैनी पेशा है। इस जाति में उत्पन्न होनेवालों को न शिक्षा-दीक्षा की आवश्यकता है और न ही नौकरी के लिये भटकने की आवश्यकता है। अपने आप नौकरी लग जाती है। तनख्वाह मिलने लगती है। रोटियों की भी कोई चिन्ता नहीं। दो-चार घर में आवाज़ दी। एक वक्त का खाना मिल ही जाता है।

टप्पू बार-बार सोचता कि क्या इस गन्दगी से वह ऊपर नहीं उठ सकता है? क्या उसके लिये बाहर के इस विस्तृत समाज में तनिक भी स्थान नहीं है।

गौरा प्रायः उसके नेत्रपाटलों पर झूल उठती। वह पढ़ रही है। घर के ताँगे में आती-जाती है। अपने समाज में, अपने आस-पास के वातावरण में वह घुल-मिल रही है। ठीक गौरा के विपरीत उसका जीवन है। इतना ही नहीं, उसकी बस्ती भी शहर से दूर है। उनके लिये शासन की ओर से अलग बस्ती बसाई गई है।

वह इतने घृणित और इतने गन्दे माने जाते हैं कि उनको शहर में रहने का भी अधिकार नहीं है। अत्यावश्यक और अनिवार्य सेवा का यह पुरस्कार उन्हें मिलता है। शहर के सामाजिक जीवन को स्वच्छ रखने-वालों के साथ इस प्रकार का अमानवीय व्यवहार। यदि वह सब अपना काम छोड़ दें, तो शहर में हाहाकार मच जावे। प्लेग और हैजा पड़ जावे। सैकड़ों देखते-देखते साफ हो जावें। इतने उत्तरदायित्वों का पालन करने-

वाले व्यक्तियों को इंसान नहीं गन्दगी समझा जाता है। गटर के कीड़े ! बिलकुल वैसे ही। गटर के कीड़े आदमी के पास फटक नहीं सकते हैं। ठीक इसी प्रकार उनकी भी दशा है।

युग-युग से घृणित उपेक्षित समझे जाने वाले इन इंसानों की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता है। सब अपने अधिकारों के लिये लड़ते हैं। लड़कर आजादी भी ले ली गई। सब के पास सामाजिक अधिकार भी हैं, पर इन लोगों को तो सामाजिक अधिकार भी नहीं है। नागरिक-स्वतंत्रता का अपहरण अपराध है : पर इनके नागरिक अधिकारों का अपहरण एक युग से चला आया है।

शहर की सीमा पर निष्कासितों की तरह जिन्दगी व्यतीत करना पड़ती है। शहर के सामाजिक-जीवन में घुल-मिल सकने का कोई अधिकार नहीं है।

इंसान होते हुये भी गटर के कीड़े हैं।

हाँ, गटर के कीड़े !

एक दीर्घ-निःश्वास लेकर टप्पू अपने कार्य में दत्त-चित्त हो गया। अपने मन के इन सब विचारों को वह भूल जाना चाहता था।

"इतनी बड़ी लड़की को जरा भी शरम-लिहाज नहीं है। आँखों देखी मक्खी नहीं खाई जा सकती है। दो-चार रोज से इधर मैं तेरे नखरे बराबर देख रहा हूँ। बीते भर की छोकरिया दुनियाँ की सब बातें सीख गई हैं। बता तू चाहती क्या है ?"

"........"

लच्छो चुप थी।

माँ का रौद्ररूप देखकर उसके देवता कूच कर गये थे। उसे कभी

आशंका भी न थी कि माँ उसे इस प्रकार आड़े हाथों लेगीं। टप्पू के आगे बढ़ जाने पर उसे एक शरारत भरा संकेत कर वह घर में दौड़ी आई। माँ ने यह सब देख लिया।

"क्या चाहती है। उस टपुआ के साथ तुझे जाना है तो तू चली जा! अपना काला मुँह कर! जिसके बाप का भी ठिकाना नहीं जिसके मुँहपर हम लोग थूँकते हैं....पर तू हरामजादी ऐसी है कि उसके ही पीछे पड़ती है!"

लच्छो इस बात से अनभिज्ञ न थी। मुहल्ले में यह सामान्य चर्चा थी कि टप्पू जसुदिया के पति का बेटा नहीं है। पति होने के नाते वह उसका बाप हो गया है, पर वास्तविक बाप तो ऊँचे खानदान का ही कोई आदमी है। टप्पू की सूरत-शकल इस बात का प्रमाण है। 'हाथी घूमे गाँव-गाँव, जिसका हाथी उसका नाँव।' इस कहावत के अनुसार टप्पू जसुदिया के पति की ही सन्तान मान लिया गया है, अन्यथा भीतर ही भीतर इस चर्चा को प्रश्रय न मिलता।

लच्छो चुप रह गई।

चुप रहने में ही उसने अपनी भलाई समझी। अपनी सौतेली माँ के क्रोधी स्वभाव से वह परिचित थी। इतना ही नहीं अगर कहीं उसने बाबू से शिकायत कर दी तब तो उस ी चटनी ही बन जावेगी। रात को वह पीकर जरूर आते हैं। पाव-आधपाव ताड़ी चढ़ाकर नशे में चूर होकर आने का उनका नियम प्रतिदिन का है। उस नशे में वह सब की खबर लेते हैं। वह भी अछूती नहीं रहती है। माँ की यह बात तो आग में घी का काम कर देगी। ऐसी स्थिति में उसका चुप रहना ही अच्छा है।

"आज मैं तुझे आखिरी बार समझाये देती हूँ, तू टपुआ के फेर में मत पड़ना। वह दोगली औलाद है। खूबसूरत है तो क्या हुआ। पर अपनी माँ के साथ भी दगा करने से बाज नहीं आवेगा!"

"........"

"आज से तू उससे बात मत करना।"

"तुम्हारी बात मंजूर है।"—लच्छो ने ढंग से काम लिया—"वह तो मैं मजाक ही मजाक में...."

"इस उमर में ऐसे मजाक और खेल जिन्दगी को चौपट कर दे सकते हैं।"

"........"

"आज क्या क्या लाई है? निकाल?"

"यह रोटी और चार पैसे हैं!"—लच्छो ने अपने कमर में बँधा हुआ आँचल खोला। मुहल्ले से मिली हुई रोटियाँ और चार पैसे अपनी माँ के हाथ पर रख दिये।

बुढ़िया ने खुश होकर पैसे रख लिये। पैसों को देखकर उसका क्रोध काफूर हो गया। चेहरा खिल गया। रूखी-सूखी मिली हुई रोटियाँ लच्छो को वापस करते हुए वह बोली—"ले, तू खाले!"

खुश होकर वह लच्छो के सामने से हट गई। उसका क्रोध ठण्डा देखकर लच्छो ने सन्तोष की साँस ली। चुपचाप वह वहीं बैठ गई। सूखी रोटियाँ खाने लगी। अपनी नवीन माँ के इस प्रकार के व्यवहारों से लच्छो अभ्यस्त थी।

टप्पू के विषय में सब कुछ जानते हुये भी वह उससे दूर नहीं रह सकती थी। टप्पू जैसा भी है उसका है। टप्पू उसे अच्छा लगता था। भला लगता था। टप्पू को वह बहुत दिनों से जानती है। जब से उसने होश सँभाला है, उससे भी पहले से जानती है। टप्पू से उसे प्यार है और उसकी मन की इच्छा यह है कि इसी बस्ती में एक मिट्टी का मकान बनाकर वह उसके साथ रहना चाहती है।

ऐसे विचार उसके मन में क्यों उठते हैं? इसका उत्तर वह स्वतः नहीं दे सकती है, पर अपनी यह इच्छा जानती है। उसका वश चले तो

वह अभी टप्पू के साथ कहीं चल दे। अपनी इस भावना को वह कई बार उसपर प्रकट भी कर चुकी है, पर टप्पू हँसकर रह जाता है।

टप्पू को देखे बिना वह एक दिन भी नहीं रह सकती है। उसे देखते ही उसके मन की सारी उदासी, दिन भर की सारी थकावट उड़ जाती है। उसका मन खुशी से भर जाता है। उससे दो बातें कर लेती है जिस दिन, तो वह रात उसके लिये बड़ी मीठी होती है। अगर टप्पू जरासा होता तो वह उसे सदा अपनी टोकरी में रखे रहती। एक पल को भी उसे बिलग न करती, पर अफसोस यही था कि टप्पू बहुत बड़ा था, जवान था।

जब वह छोटी-सी थी तभी उसकी माँ मर गई थी और शायद दो या तीन ही महीने पश्चात् उसकी यह नई माँ आ गई थी। उस दिन इसी घर के सामने पञ्चायत हुई थी। पञ्चायत में छककर शराब भी पी गई थी और पञ्चों की राय से उसके पिता सरबन ने उसे चूड़ी पहिनाकर अपनी औरत स्वीकार कर लिया था।

सरबन चालीस-पैंतालीस का एक काला-कलूटा अधेड़ व्यक्ति था। उसके सिर के बाल सदा खड़े रहते थे। बायें गाल पर निकला हुआ एक मस्सा उसके चेहरे को और भी भयानक बनाये हुये था। वह एक बहुत ही बदसूरत आदमी था और ठीक उसकी ही तरह उसकी चाल-चलन भी बदसूरत थी। उसकी प्रायः पूरी कमाई शराब और ताड़ी में जाती थी। जुआ भी खेलता था पर कम हां! कम इसलिये कि तनख्वाह मिलने के दो-तीन दिन तक ही यही क्रम चलता था। उसके पश्चात् हाथ खाली हो जाता था, अतएव विवश था वह।

शराब पीकर रोज मार-पीट, गाली-गलौज करना उसकी साधारण प्रवृत्ति थी। वह बस्ती भी ऐसी ही थी। हर घर का यही हाल था। कोई भी रात ऐसी न जाती थी जब कि उस बस्ती के किसी न किसी घर में मार-पीट उठा-पटक, बच्चों की चिल्ल-पों न हो। इतना था कि

कोई किसी के मामले में कोई भी दखल न देता था। स्त्री-पुरुष और बच्चों के बीच झगड़ा चलना साधारण बात थी, पर स्त्रियों के बीच झगड़ा यदाकदा ही होता था। उस समय पूरी बस्ती घटनास्थल पर टूट पड़ती थी। बीच-बचाव घर वाले ही करते थे। वह भी उस समय जब गुत्थम-गुत्थी होने लगती।

औरतों का यह युद्ध दर्शनीय होता था।

एक दूसरे के बाल पकड़ कर लात-घूँसे चलाती अथवा नख और दाँतों का प्रयोग होता या एक दूसरे को विवस्त्र करने का प्रयास करतीं थीं। औरतों में ठन जाने के पश्चात् पुरुषों में ठन जाना प्राय: स्वाभाविक था। ऐसी स्थिति होने पर पुलिस पहुँचती तो सब ठण्डे पड़ जाते। पुलिस एक-दो को थाने पर पकड़ कर ले जाती और घूस लेकर छोड़ देती थी।

लच्छो अपने दरवाजे पर बैठी रही, इस आशा से कि टप्पू लौटकर काम पर जावेगा। वह प्रतीक्षा में थी। कुछ देर बाद टप्पू आता दिखलाई पड़ा। वह उठ खड़ी हुई। घबड़ा कर उसने आस-पास देखा कि कहीं से उसकी माँ चौकसी तो नहीं कर रही हैं। माँ को कहीं न देख वह टप्पू की ओर देखने लगी। टप्पू अपने में ही खोया हुआ था।

उसने लच्छो की ओर देखा भी नहीं और चुपचाप सीधे निकल गया; इस तरह से कि जैसे उसे किसी से कोई भी वास्ता नहीं है।

लच्छो क्रोध से भर गई।

"अच्छा, मिलने दो! बड़ी झाड़ झाड़ूँगी!"—उसने मन ही मन कहा और भीतर आ गई। उसका चेहरा भी रुआँसा-सा हो गया। आँखें भी भर आईं। उसे इस बात का बड़ा ही दुःख हुआ कि वह टप्पू के लिये इतना तरसती रहती है और वह इतना 'निरदई' है कि उसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता है!

टप्पू पर मन ही मन कुपित होती हुई कुछ देर पश्चात् वह भी अपनी

टोकरी और झाडू लेकर अपने क्षेत्र में कार्य पर चली गई। वह जानती थी कि वह टप्पू पर कुपित हो सकती है, उससे रूठ सकती है, उसे फटकार सुना सकती है, पर उसको अलग नहीं हो सकती है। किसी भी दशा में वह टप्पू से ऐसा नहीं रूठ सकती है कि उसे बिना देखे ही रह जावे।

सोलह

दिनभर जलने के पश्चात् सूरज अपनी कालिख बिखेर कर चला गया। पृथ्वी उस कालिख से भर गई और अँधियारा चारों ओर फैल गया। शहर के भीतर धँसती हुई सड़क की पटरियों पर यत्र-तत्र छोटे-छोटे प्रकाश-पुञ्ज टिमटिमा रहे थे। बस्ती के मैदान में और भी अँधियारा था। सरकार की ओर से लगी हुई सिर्फ एक बत्ती ही उस बस्ती में रहने वाले सौ डेढ़ सौ हरिजनों के लिये पर्याप्त थी।

वह बत्ती भी ऐसी कि उसका प्रकाश कुछ दूर तक केवल दो-तीन माटी की टपरियों तक ही जा रहा था और शेष बस्ती अन्धकार में डूबी हुई थी। घरों में चिराग़ अवश्य टिमटिमा रहे थे।

मैदान में सन्नाटा था।

बच्चों का शोरगुल न था। सब शान्त था।

केवल एक ओर, बत्ती से काफी हटकर अन्धकार में टप्पू बैठा हुआ था। आँखें फाड़कर वह अन्धकार में एक हिलती हुई मूर्ति को देख रहा था जो उसकी ओर धीरे-धीरे बढ़ी चली आ रही थी। कुछ पास आई तो उसने पहिचान लिया।

"लच्छो...."

"........"

वह लच्छो ही थी। उसके पास धम्म से बैठ गई।

सत्रह

"मैं तुम्हें बुरी लगती हूँ, क्या ?"

"क्यों ?"

"पूछ रही हूँ ?"

"किसलिये ?"

"आज जाते वक्त देखा भी नहीं। मैं दरवाजे पर खड़ी थी।"

"भूल गया !"—टप्पू ने धीरे से सहमे हुये स्वर में कहा—"ख्याल नहीं रहा मुझे !"

लच्छो क्षणभर आँखें फाड़कर उसकी ओर देखती रही, पर अन्धकार में टप्पू उसकी आश्चर्य से फटी आँखें न देख सका। वह चुप ही रहा और अपने विचारों की दुनियाँ में ही खोया रह गया।

"मालूम पड़ता है, एक दिन तुम मुझे बिलकुल ही भूल जाओगे !" —लच्छो ने शान्ति भङ्ग की—"मैं इधर कुछ दिनों से तुम्हें बराबर कुछ सोचते देखा करती हूँ। क्या सोचा करते हो ? कौन-सा दुःख तुम पर आ पड़ा है, बताओगे टप्पू ?"

"ऊँ ?"

"तुम्हें मेरी बात भी नहीं सुनाई पड़ी।"

"सुन ली है, पर इस बात का मैं तुम्हें क्या जवाब दूँ ? दुःख तो किसी बात का नहीं है पर एक ही बात सोचा करता हूँ कि...."

"क्या ?"

"क्या हम लोग आदमी नहीं हैं ?"

लच्छो खिलखिलाकर हँस पड़ी। उसने टप्पू की बात का गाम्भीर्य ही नहीं समझा ! उसे यह एक प्रश्न बहुत ही साधारण-सा लगा।

अपनी हँसी रोककर वह बोली—

"हम लोग आदमी नहीं तो क्या हैं ? आदमियों जैसे हमारे हाथ-पैर सब कुछ हैं। हम लोग कूड़ा-गाड़ी के बैल या पड़वे नहीं हैं। अरे,

इतनी-सी बात तुम्हारी समझ में नहीं आती। कोई अन्धा भी तुम्हें जानवर नहीं कह सकता है।"

"हम लोग आदमी हैं?"

"हाँ!"

"तो फिर लच्छो, हम लोगों को शहर में रहने के लिये क्यों नहीं मिलता है? हम लोग किसी दूकान में भीतर घुसकर क्यों नहीं खा सकते हैं? शहर के लोग हमें देखते ही बिचक क्यों जाते हैं? जानवरों को भी देखकर शहर के लोग इतने दूर नहीं होते हैं, जितना कि हमें देखते ही हट जाते हैं। हमें कोई छूता नहीं। शहर की जिन्दगी में हम लोग घुल-मिल भी नहीं सकते हैं। आदमी से तो दूर की बात है। हम लोग जानवरों से भी गये गुजरे हैं। जानवर तो शहर में घूमते रहते हैं, पड़े रहते हैं। आदमी को छूकर उसकी बगल से निकल जाते हैं, पर हम लोग ऐसा भी नहीं कर सकते हैं? इसीलिये मैं तुमसे पूछता हूँ कि क्या हम लोग जानवर भी नहीं हैं?"

लच्छो ने अब टप्पू की बात समझी। वह गम्भीर हो उठी।

बोली—"तुम ठीक कहते हो, टप्पू, पर बाप-दादों से यही कायदा चला आया है कि मेहतरों को शहर के बाहर बसाया जाता है। गाँव में भी ऐसा होता है। डोम-चमार की बस्ती गाँव के गंवड़े अलग ही होती है। हम लोगों का कर्म ही ऐसा है और कर्म से ही यह कायदा है। यह रिवाज सैकड़ों पुश्तों से चलता आया है। इसी नगरी में पहले डोम लाठी बजाता चलता था। आवाज देता चलता था। लोग हट जाते थे। अब वह कायदा नहीं रहा, पर फिर भी यह सब है!"

"यही मैं सोचा करता हूँ लच्छो कि हम आदमी हैं और शहर के लोगों की सबसे ज्यादा सेवा करते हैं। अगर एक दिन के लिये भी हम लोग अपना काम बन्द कर दें तो शहर में हाहाकार मच जावे, इस पर भी हम लोग कुत्तों से भी गये गुजरे हैं!"

उन्नीस

"हमारा पेशा ही ऐसा है।"

"........"

टप्पू चुप रह गया। लच्छो ने जो कुछ अभी कहा वही उत्तर घूम-फिरकर उसे भी अपने आपसे मिलता था। पेशा ही ऐसा है। जो दिन रात गन्दगी उठाये हुए अपने सिरों पर रखे घूमते हैं, यदि उन्हें ही गन्दगी समझ लिया जावे, तो क्या आश्चर्य ! गन्दगी से हर आदमी दूर भागता है और गन्दगी उठाने वालों, गन्दगी साफ करने वालों से भी आदमी दूर भागता है। यह स्वाभाविक नियम-सा है; पर इंसानियत की दृष्टि से क्या यह उचित है?

"अच्छा लच्छो, यदि हम लोग यह पेशा छोड़ दें तो?"

"दैय्या रे ! यह पेशा छोड़ दोगे तब भूखों मरोगे। हम लोगों को यह पेशा छोड़कर और कोई पेशा करने ही को नहीं मिल सकता है। चाय की दूकान में प्याले साफ करने की भी नौकरी नहीं मिलेगी, टप्पू! तुम्हारी जात सुनते ही लोग तुम्हें गालियाँ देकर भगा देंगे। हम लोगों का यह पैदायशी पेशा है। हम लोग यह काम छोड़कर और कुछ नहीं कर सकते हैं इसलिये कि और कोई काम हम लोगों को नहीं मिल सकता है।"

"तब ऐसा कहो न कि न केवल हम लोगों का पेशा ही बल्कि हम लोगों की जात ही जानवरों से बदतर समझी जाती है!"

"हाँ।"—बोली लच्छो—"पर तुम्हें इन सब बातों से क्या करना है? क्या हम लोगों का पेशा बुरा है? हम लोगों को और चाहिये ही क्या? भरपेट रोटियाँ मिल ही जाती हैं। रुपया मिल ही जाता है। सरकार की तरफ से रहने के लिये जगह भी मुफत में मिल जाती है और लोग बड़े हैं तो क्या हुआ? पर रोटी के लिये हाय-हाय करते हैं, किराया देकर रहते हैं। उन सब लोगों से तो हम लोग मजे में हैं।"

"ऐसी जिन्दगी कुत्तों की भी है। भरपेट घूम-फिरकर वह खा लेते हैं। रहने की फिकिर नहीं। कहीं भी पड़े रहे।"

"आखिर तुम्हारी मंशा क्या है?"

"मेरी मंशा आदमी बनने की है। मैं यह पेशा छोड़ देना चाहता हूँ।"

"क्या करोगे?"

"बाबू बनना चाहता हूँ। पढ़-लिखकर मैं नौकरी करूँगा। आदमी की तरह रहना चाहता हूँ।"

लच्छो खिलखिलाकर हँस पड़ी।

"तुम पागल हो गये हो! तुम्हें कोई पास फटकने भी न देगा। पढ़ना-लिखना तो दूर रहा। तुम्हारे लिये यही काम करना जरूरी है...."

"और कोई न करना चाहे तो....?"

"जब सभी ऐसा करने लगेंगे तो शहर की साफ-सफाई कौन करेगा? तुम्हारे जैसी बातें सभी सोचने लगें, करने लगें तो यह बस्ती ही उजाड़ हो जावे, इसीलिये ऐसे कानून-कायदे बने हैं कि हम लोग यहीं रहें और यही पेशा करें। तुम्हारे ही मन में क्या यह बात उठती है। बड़े-बड़े घरों में जब मैं जाती हूँ तो मेरा भी मन ललचता है। ठाट-बाट और आराम से कौन नहीं रहना चाहता है! उनके नये-नये कपड़े और जेवर देखकर मेरा भी मन ललचता है, पर यह सब अपने-अपने करम की बात है! पिछले जनम में हम लोगों ने जो पाप किये हैं, यह सब उसका ही फल भोगना पड़ रहा है!"

"........"

"यह सब फालतू बातें हैं!"—लच्छो बोली—"इनपर सोचने-बिचारने से कोई फायदा नहीं है। शहर में कहीं भी हम लोगों को बित्ता भर जगह नहीं मिल सकती है। जो भी सुनेगा कि मेहतर है दुतकार

कर भगा देगा ! इतनी बड़ी दुनियाँ में तुम्हें कहीं भी जगह नहीं मिल सकती है ।"

लच्छो की सब बातें सुनकर भी टप्पू चुप था ।

शौक के लिये जाने कितने लोग कुत्ते को भी पाल लेते हैं । उसे नहलाते-धुलाते हैं, खिलाते-पिलाते हैं और बहुत से अपने ही पास सुलाते हैं । क्या उसको पालने वाला कोई नहीं मिल सकता है ? क्या एक कुत्ते 'बरोबर' भी उसकी कीमत नहीं है ?

वह आदमी है और आदमी होकर भी उसने ऐसा कौन-सा पाप किया है, जिसके कारण उसके संग लोग ऐसा व्यवहार करने पर प्रस्तुत हैं कि उसे बित्ता भर जगह भी नहीं दे सकते हैं ? क्या इसलिये कि वह हरिजन है ? गन्दगी साफ करने वाला है ?

बात टप्पू को कुछ जँच न रही थी फिर भी लच्छो की बात मानने के लिये उसकी आत्मा कह रही थी कि कहीं भी वह देख ले उसकी जात के कोई भी आदमी इस पेशे को, इस जगह को छोड़कर और कहीं नहीं हैं । सब यही करते हैं । सब की यही जिन्दगी है और उसे भी यही करना पड़ेगा ।

क्या सचमुच...?

लच्छो उसकी ओर देखती हुई चुप बैठी थी ।

अन्धकार में उसके चेहरे की गौर रेखाएँ स्पष्टतया दमक रहीं थी । पिपासित-नेत्रों से वह उसकी ओर देख रही थी । वह चिन्तित है । वह कुछ सोच रहा है । यह वह समझ रही थी ।

उसका मन यहाँ नहीं लगता है । यह सच है । स्वयं उसे भी तो अपने इस जीवन से नफ़रत है, पर वह इसके अतिरिक्त और कर ही क्या सकती है ? विवश है वह ! भले ही टप्पू कुछ कर सकता है पर वह तो अँगुली भी नहीं हिला सकती है । उसे यहीं अपना जीवन व्यतीत करना ही होगा ।

टप्पू उसके सामने सदा रहे तो वह कहीं भी सहर्ष रह सकती है। दुःख को भी सुख समझ कर वह गले से लगा लेने को प्रस्तुत है।

मौन, गम्भीर टप्पू को देखकर उसका मन भय से भर गया। क्या वह सचमुच इस जीवन से उदासीन हो गया है? क्या वह सचमुच यहाँ से भाग जाना चाहता है? क्यों? किसलिये? लच्छो को असम्भव सा तो लग रहा था, पर कुछ-कुछ सम्भव भी न था। वह यदि जाना ही चाहे तो उसे रोक ही कौन सकता है।

जान लो कि टप्पू सचमुच चला गया।

लच्छो का दिल भर आया। आखें भर आईं।

"टप्पू...."—उसका स्वर भी करुण था—"क्या तुम सचमुच में... सचमुच में यहाँ से चले जाना चाहते हो? मुझे छोड़ जाओगे?"

"हाँ, यदि मैं चला जाऊँ तो तुमको दुःख क्यों?"

टप्पू ...."

टप्पू ने चिहुँक कर उसकी ओर देखा। धुँधलके में उसके साँवरे कपोलों पर आँसू की बूँदें चिलक रहीं थीं।

"क्यों? तुम्हें क्या हुआ?"

"मैं तुम्हारे बिना यहाँ कैसे रह सकूँगी, टप्पू...."

"पागलपन मत करो, लच्छो! मेरा तुम्हारा क्या नाता। चार दिन की इस जिन्दगी में जाने कितने मिलते और बिछुड़ते हैं! इसके लिये दुःखी क्यों होना? तुम बड़ी हो गई हो। सब समझती हो। जवान हो गई हो। कोई इस तरह से तुम्हें देख ले तो मन में क्या सोचे वह? एक दिन चाची ही मुझे डाँट रही थी कि मैं तुम्हारा जादा संग न करूँ।"

"पर मैं तुम्हारा संग नहीं छोड़ सकती हूँ!"

"क्यों?"

"........"

तेइस

आँसुओं के अतिरिक्त इसका और कोई उत्तर लच्छो के पास न था। वह स्वतः अनभिज्ञ थी कि टप्पू के संग वह क्यों रहना चाहती है ?

इस सवाल पर उसने अनेक बार सोचा।

सोचा और बहुत सोचा।

: पर इसके अतिरिक्त उसे और कोई उत्तर न मिला कि टप्पू उसे अच्छा लगता है। उससे बढ़कर और कोई उपयुक्त साथी उसके लिये नहीं है।

टप्पू उसका प्रत्यक्ष रूप से कुछ भी न होकर सब कुछ है।

वह खामोश लच्छो के आँसुओं को देख रहा था। मन ही मन इच्छा हो रही थी कि वह उसके उमड़ते आँसुओं को पोंछकर उसे अपने कलेजे से लगा ले।

कहे—"न रो पगली। मैं तुझे छोड़कर नहीं जाऊँगा।"

अपनी इस भावना को प्रकट कर सकने में जाने क्यों वह असमर्थ था ? हलकी-सी, एक मुस्कुराती हुई आकृति उसकी आँखों के समक्ष झूल रही थी। वह आकृति गौरा की थी। वह आकृति उसकी प्रत्येक गति-विधि को देख रही थी। उसे उठने के लिये विवश कर रही थी। अपना अनुसरण करने के लिये विवश कर रही थी।

टप्पू मौन था।

लच्छो के प्रति उसके मन में सहानुभूति थी। भोली-भाली निश्छल इस हरिजन बाला के प्रति उसके मन में बचपन से लगाव था, पर वह लगाव सीमित था। उसके आकर्षण से वह प्रभावित था। उसके मन की भावनाओं की चुप-चुप वह कद्र किया करता था।

अपने घर के विरोध के बावजूद भी वह उसका साथ देती थी। जाने कितनी बार वह उस पर बिगड़ा होगा, डाँटा-फटकारा होगा और वह तुनक-तुनक कर चली जाती थी, पर दूसरे ही दिन अपने से ही वह उसकी राह छेंक लेती।

बोलती—"तुम मुझसे नाराज हो टप्पू ?"

वह खिलखिलाकर हँस पड़ता।

दोनों में पुनः मेल हो जाता। मेल का हाथ हर वक्त लच्छो की ही ओर से उठता था, इसलिये कि लच्छो टप्पू से अधिक देर तक दूर न रह सकती थी। टप्पू इस बात से परिचित था और जानते हुये भी वह विशेष झुकाव न रखता था।

लच्छो का ख्याल आते ही उसे गौरा का ख्याल आ जाता था और तब वह उसमें ही खो जाता था। गौरा की स्मृति उसके मन में नाना प्रकार के विचारों को उद्वेलित कर उसे न जाने क्या-क्या सोचने के लिये विवश कर देती थी।

न चाहते हुये भी उसे लच्छो को भुला देना पड़ता था।

हलकी निःश्वासें लच्छो के अधरों से निकलती हुई टप्पू का स्पर्श कर रहीं थीं। उस अन्धकार में यदि वह लच्छो का चेहरा पूर्णतः देख पाता तो शायद मौन न रह सकता। लच्छो का दर्द भरा चेहरा, आँसुओं भरी आँखें, उसे झकझोर देतीं। वह जान जाता। अपने प्रश्न का उसे उत्तर मिल जाता कि वह उसका साथ क्यों नहीं छोड़ सकती है ?

दूर से सरवन की काँपती और तेज आवाज ने आकर लच्छो को चौंका दिया। हड़बड़ा कर वह उठ खड़ी हुई।

"बाबू पी के आ गये। अब तमाशा होगा।"

लच्छो भाग गई। अनिच्छा से, विवश होकर उसे जाना ही पड़ा। पिता से पहले अगर वह घर नहीं पहुँचती है, तो माँ आसमान सर पर उठा लेगी।

सूरज के उठने से पहले ही टप्पू अपने काम पर चला गया। जसोदा भी चली गई। लच्छो भी गई। बस्ती के अधिकांश स्त्री-पुरुष और लड़के अपने परम्परा से चले आये काम पर चले गये। बालकों के झुंड मैदान में इकट्ठे होकर शोरोगुल मचाने लगे। खनमन भी उनमें से एक था। अपने बड़े भाई टप्पू के ठीक विपरीत था वह।

टप्पू अपने घर में अपने ढंग का एक अकेला ही था। उसका रूप-रंग उसके संस्कार उसकी जाति के अनुकूल न थे। भले ही वह जसोदा का बेटा था, पर उसकी उत्पत्ति में एक उच्चकुलीय आधार था, जिसका रहस्य केवल जसोदा तक ही सीमित था।

टप्पू के संस्कार, उसके विचार, उसके व्यवहार उस बस्ती में बसने वालों से निराले थे। यह सत्य था कि उसके माथे पर हरिजन की मुहर लग चुकी थी, पर वह इतनी अदृश्य थी कि सहज ही में कोई देख न सकता था।

टप्पू अपने जीवन के विषय में ही सोचता हुआ उठने की महत्त्व-कांक्षाओं के बीच पल रहा था। ज्ञान होते ही उसके मन में इस भावना ने अधिकार कर लिया। उसने देखा कि वह मनुष्य है, पर फिर भी उसे मनुष्य के अधिकार नहीं है। उससे लोग दूर ही भागते हैं। दूसरों को वह देखता, उनकी ही तरह वह भी बनना चाहता था।

उसे अपने दायरे से सन्तोष न था। उसकी धारणा थी—वह मनुष्य भी क्या मनुष्य जो अपने दायरे से ऊपर न उठ सके। मनुष्य प्रगति के लिए पैदा हुआ है। प्रगति में ही मनुष्य का विकास है।

टप्पू अपने जीवन से, अपने आस-पास के वातावरण से सर्वथा असन्तुष्ट था। तृप्ति उसके मन में न थी।

छब्बीस

अपना कार्य करता हुआ वह सदा की तरह देखने लगा। दूर बहुत दूर एक दीपक की ज्योति टिमटिमा रही है, जिसमें गौरा बैठी हुई उसे बुला रही है। वह उठे। आगे बढ़े। गौरा की प्रत्येक मुद्रायें उसका हृदय खींचकर उसे आगे बढ़ने के लिए प्रेरित कर रहीं थीं।

टप्पू छटपटा पड़ा।

इतना छटपटा पड़ा वह कि उसके हाथ से वह झाड़ू छूट गिरा जिससे वह नाली साफ कर रहा था।

झाड़ू छूट गिरा तो टप्पू ठगा-सा खड़ा रह गया। उसके हाथ शून्य हो गये। उनमें इतनी शक्ति और न थी कि उसे पुनः उठाकर अपना कार्य कर सकें।

वह ठगा-सा, खड़ा सोचता रह गया।

सचमुच में उसे यह नहीं करना चाहिए। यह उसके मन की ही नहीं, वरन् उसके आत्मा की भी आवाज थी। नहीं! उसे यह नहीं.... उसे यह सब नहीं करना चाहिए। वह गटर के कीड़े की तरह जिंदगी व्यतीत करने के लिए उत्पन्न नहीं हुआ है। उसे आदमी बनना है। वह आदमी बनेगा इसलिए कि वह आदमी है।

टप्पू ने झाड़ू नहीं उठाया।

नहीं उठाया।

वह खड़ा रहा।

एकटक कुछ क्षण वह देखता रहा। उसका चेहरा क्रमशः गंभीर होता गया। वह गहरे सोच में पड़ा रह गया। जाने कितने-कितने विचार उसके मन में उठे और मिटे।

लच्छो की प्रत्येक बातें आईं।

गौरा याद आई।

अपनी बातें अपनी आकांक्षायें उसे याद आईं।

सत्ताइस

अन्ततः टप्पू उस स्थान से डिगा। हटा। झाड़ू वहीं पड़ा रह गया। उसने छोड़ दिया, सदा के लिए। सर्वदा के लिए।

वह आगे बढ़ गया।

इस पेशे को और वह नहीं करेगा।

उसके क़दम बढ़ते गये। बढ़ता गया वह। म्युनिसिपैलिटी की लाल बिल्डिंग में एक खिड़की के पास जाकर उसके पाँव थम गये। खिड़की में एक मनुष्य का चेहरा दिखलाई पड़ रहा था।

"बाबू साहब..."

"क्या है?"

"मेरा नाम टप्पू है!"

"टप्पू जसुदिया का बेटा...?"

"जी हाँ!"

"क्या बात है?"

"हुजूर आज से मैं काम नहीं करूँगा। अपनी मरजी से छोड़ना चाहता हूँ।"

"क्या परदेश जा रहे हो?"

"जी नहीं।"

"फिर···? कोई काम कहीं दूसरा मिल गया है?"

"जी नहीं!"

टप्पू का सर झुक गया।

"फिर....? क्यों नौकरी छोड़ रहे हो?"

"अच्छा नहीं लगता।"

आश्चर्य से आँखें चौड़ी हुईं—"तुम...तुम्हारा दीमाग़ ख़राब हो गया है। कहाँ से खाओगे?"

"मैं पढ़-लिखकर नौकरी करूँगा, बाबू साहब..."

वह अट्टहास कर उठा।

घोर अट्टहास जैसे किसी की गजब की मूर्खता पर कभी-कभी मनुष्य इस प्रकार हँसता है कि उसका पूरा मुँह खुल जाता है। बत्तीसी पूरी गिनी जा सकती है।

"हः हः हः तुम पढ़-लिखकर नौकरी करोगे! मेहतर होकर तुम यह नहीं करोगे तो क्या करोगे? तुमको और कहाँ जगह है!"

"......"

टप्पू सर झुकाये रह गया।

उसके पास इसका कोई उत्तर न था।

"जहाँ भी जाओगे यही काम करना पड़ेगा। तुम्हारा जन्म इसीलिये हुआ है।"

"......"

"बोलो..."

"मेरा नाम काट दीजिये!"

"यह मूर्खता तुम न करो। मैं फिर तुम्हें समझाता हूँ। तुम्हें यही काम करना पड़ेगा। चाहे यहाँ करो या बाहर। सोच लो।"

"आप...मैं काम नहीं करूँगा..."

"अच्छा तुम्हारी मरजी।"

रजिस्टर खुला। टप्पू का नाम ढूँढ़ा गया। मिला। कलम उठी। काट दिया गया उसका नाम।

"अँगूठा लगाओ। बाकी तनख्वाह पहली को आकर ले जाना।"

टप्पू ने अँगूठा लगाया और सिर झुकाये हुए उसी तरह बाहर हो गया।

उसे बिल्कुल ही चिन्ता न थी। हाँ, वह गम्भीर अवश्य था कि उसका भविष्य अब अन्धकारमय है। उसे एक ऐसे रास्ते पर बढ़ना है जो काँटों से भरा हुआ है। उसकी जिंदगी में अब तूफान आनेवाला है।

उन्तीस

उसकी माँ को जब ज्ञात होगा कि उसने काम छोड़ दिया है, तो उसे पचीस खरी-खोटी सुनने को मिलेंगी। हो सकता है कि उसे घर से निकल जाने का आदेश भी मिल जावे।

बस्ती के लोग जब सुनेंगे तो उसकी इस मूर्खता का उपहास सभी उड़ावेंगे।

सभी संभावित प्रतिक्रियाओं पर सोचता हुआ टप्पू चला जा रहा था, पर एक भी संभावना उसे विचलित न कर पा रही थी।

बस! झाड़ू उसके हाथ से गिर गया है। न केवल उसकी ही इच्छा है यह, वरन् ईश्वर का भी आदेश है यह। ईश्वर की यह आज्ञा शिरोधार्य होनी चाहिए उसे।

टप्पू की विचारधारा हठात् अवरुद्ध हो गई।

देखा उसने।

एक ताँगा 'खड़रखड़र' करता हुआ उसके पास से निकल गया। देखा टप्पू ने तो देखता ही रह गया। उस ताँगे में गौरा थी। सादे वेश में वह खिल रही थी। उसकी ओर देख रही थी वह। हिचकोले खाता हुआ गौरा का सुपुष्ट शरीर बड़ा ही मोहक था।

टप्पू अपनी आँखें हटा न सका।

देखा उसने। ताँगे से कोई चीज गिर गई नीचे। टप्पू ने पुकारना चाहा कि देखो क्या गिरा? पर वह चाहकर भी न पुकार सका। ताँगा आगे बढ़ गया। मोड़पर जाकर ओझल हो गया।

उसने पास जाकर उस वस्तु को देखा।

वह कोई पुस्तक थी।

उस पुस्तक की ओर एक टक टप्पू देखता रह गया। उसका मन टीस से भर गया। काश! वह पढ़ सकता। रंगबिरंगे चित्रमात्र वह देखता रह गया। आँखें उसकी भर आईं। आह! वह कितना अभागा है कि पढ़ भी नहीं सकता।

तीस

दर्द भरी एक दीर्घ निःश्वास लेकर टप्पू ने वह पुस्तक पोंछकर ले ली।

आगे बढ़ गया।

गौरा की यह किताब गिर गई है। शायद और किताबों में से खिसक गई है। गौरा यह नहीं देख सकी है। यह उसके स्कूल की किताब है। उसके काम की किताब है। इसे गौरा को वापस कर देना चाहिये।

इसी विचार से वह पंडितजी के घर की ओर बढ़ गया।

गया वहाँ।

भीतर गया।

पुकारा उसने।

दो आवाजें दीं उसने, तब कहीं सीढ़ियों पर कुछ आहट सुनी उसने। टप्पू ने अनुमान लगाया शायद घर की दासी आ रही है। पंडितजी घर में नहीं है। और वह गौरा भी तो हो सकती है...

गौरा...

अगर वह सचमुच में गौरा हुई तब...

टप्पू की धड़कनें रुक गईं।

गौरा ही थी वह।

टप्पू की आँखें झुक गईं। टप्पू नीचे सीढ़ियों पर खड़ा था। गौरा उसके सामने आकर रुकी।

"क्या है...?"

टप्पू ने पुस्तक हाथ में ली। दिखलाई।

"आप...आपकी यह किताब गिर गई थी...ताँगे से...मुझे मिली है..."

गौरा ने इधर-उधर देखा। कहीं और कोई न था।

इक्तीस

धीरे से बोली वह—"यह गिरी नहीं है। मैंने जान-बूझकर गिराई है।"

टप्पू का कलेजा 'धक्' से रह गया।

"......"

"यह बच्चों की पहली सीढ़ी है। तुम्हारे पढ़ने के लिये मैंने तुम्हें दी है। तुम रास्ते में जाते दिखे, मैंने गिरा दी!"

"यह मेरे लिये है?"

"हाँ टप्पू, मैं चाहती हूँ तुम पढ़ो लिखो, आदमी बनो। गन्दगी में कब तक पड़े रहोगे...?"

"......"

टप्पू आँखें फाड़कर गौरा की ओर देखता रह गया। उसका सारा शरीर सनसना उठा कि गौरा भी यही चाहती है, जो उसके मन की आवाज है। हर्षावेग से अनायास उसके नयन भर आये।

"मेरी भी यही इच्छा है।"—बोला वह—"आपने मेरे मन की बात कैसे ताड़ ली?"

"......"

गौरा के पास मुस्कुराहट के सिवाय और कोई इसका उत्तर न था। उसकी मुस्कुराहट इतनी सजीव थी कि टप्पू भी अपने को न रोक सका। उसे लगा कि जैसे उसकी खोई हुई जिन्दगी मिल गई। वह भी मुस्कुरा पड़ा।

"पर मैं पढ़ूँगा कैसे....?"—शंका व्यक्त की उसने—"बिना गुरु के ज्ञान नहीं आता है।"

"अपनी आत्मा को अपना गुरु मान लो।"—सरलता से गौरा ने बताया—"किताब खोलो। उसमें गणेशजी की मूरत बनी है। वह ग गणेश का है। उसे देख लो। वैसा ही ग बनाओ। सीखो लिखना और उसे पढ़ना। उसके बाद एक मछली बनी है। वह म मछली का

है। फोटो देखकर तो तुम समझ ही सकते हो कि कौन क्या चीज है ? इसी तरह से जो तस्वीरें बनी हैं, उनके सहारे पढ़ चलो।"

इतनी आसान तरकीब सुनकर टप्पू की खुशी का पारावार न रहा।

प्रसन्न हो उसने पुस्तक का पन्ना खोला।

प्रथम चित्र देखा।

"यह....यह झंडा बना है....झ....झंडे का है...."

"हाँ, शाबास ! ऐसे ही पढ़ो। यह कोने में जो अक्षर बना है वह झ है।"

"यह—जहाज बना है....ज....जहाज का...?"

"हाँ हाँ !"—गौरा की आँखें खुशी हो चमक उठीं—"पहले अक्षर पहिचान लो। देख-देखकर बनाना सीख लो। बीच-बीच में मैं तुम्हें बता दिया करूँगी।"

टप्पू की आँखों में प्रेमाश्रु उमड़ आये।

उसके मन में बड़ी प्रबल भावना उठी कि वह गौरा के चरणों पर गिर पड़े। कहे वह देवी है....पर यह जानकर कि उसे गौरा को स्पर्श करने का भी अधिकार नहीं है, एक सर्द आह उसके होठों से निकल गई।

टप्पू अपने आनन्द के आँसू सम्भाल न सका।

दो बूँद आँसू टपक ही गये।

गौरा ने देखा।

"अरे, यह क्या है टप्पू....!"

"यह....यह खुशी के आँसू हैं।"—रुँधा था उसका गला—"आज मैं अपनी खुशी को नहीं रोक पा रहा हूँ। मैं खूब मन लगाकर पढ़ूँगा। मैं पढ़ूँगा ! मेरा मन बड़ा खुश है। मैं दिनरात एक कर पढ़ूँगा।"

"हाँ, मैं भी यही चाहती हूँ, टप्पू....तुमको हर तरह से मैं मदद दूँगी।"

"........"

तत्तीस

टप्पू अपने सम्मुख खड़ी गौरा की ओर एकटक देखता रह गया।

उसे वह स्त्री रूप में वह देवी के सदृश लग रही थी, जिसे ईश्वर ने विशेष रूप से उसकी सहायता के लिये धरती पर भेजा है।

"मैं इसी तरह से और किताबें दूँगी। अब तुम जाओ।"

श्रद्धा से अभिवादनकर टप्पू चला गया।

उसके पाँव धरती पर ही न पड़ रहे थे। वह खुश था। बहुत खुश था। उसे अपनी जिंदगी का प्रकाश मिल गया था।

टप्पू के पाँव धरती पर ही न पड़ रहे थे। उसे जैसे दुनिया का राज्य मिल गया हो। गौरा का चित्र और स्पष्ट हो उसकी आँखों के आगे झूल रहा था। उसे स्वप्न में भी गौरा से इस प्रकार की सहायता की आशा न थी। उसके अन्तर में यह अवश्य महसूस होता था कि गौरा उसे प्रेरणा दी रही है। दूर एक दीपक की 'जोत' टिमटिमा रही है और उसमें से झाँकती हुई गौरा की आकृति उसे उठने की प्रेरणा दे रही है। उसकी कल्पना सत्य निकली।

टप्पू का मन प्रसन्नता से फूला न समा रहा था।

उसका स्वप्न सत्य निकला।

गौरा ने प्रत्यक्ष रूप से उसे प्रेरणा दी।

रह-रहकर सारा दृश्य उसके आगे नाच उठता था। भागता हुआ ताँगा। हिचकोले खाती हुई गौरा। किताब गिरा दी उसने। ओह! यह सब कितना मधुर है!

टप्पू का जी हो रहा था कि वह खूब खिलखिलाकर हँसे। कैसा मधुर षड़यन्त्र है यह! गौरा ने पुस्तक गिरा दी। समझा उसने कि गिर गई है। वापस करने गया। लेकिन कितना मजा रहा! गौरा ने

वह पुस्तक उसके लिए ही गिराई थी। अहा! वह पहले इस बात को जान लेता।

उछलता हुआ टप्पू चला जा रहा था।

हठात् वह रुक गया।

थम गया।

उसकी आँखें फट गईं।

अपने मन के प्रश्न से ही वह चकित हो गया।

गौरा की इस सहायता के पीछे उसके प्रति कुछ न कुछ आकर्षण अवश्य है! गौरा उसके विषय में सोचती रहती है। यह आज उस पर प्रकट हुआ है। यदि ऐसी बात न होती तो आज चुपके-चुपके पुस्तक उसके लिये वह क्यों गिराती?

गौरा इस तरह उसकी सहायता क्यों कर रही है?

उसका उद्देश्य....?

इस संकेत से उसे स्पष्ट आभास हुआ कि गौरा के मन में उसके लिये भी स्थान है।

एक ब्राह्मण उच्च-कुलोत्पन्न बालिका एक हरिजन के लिए इतना करे! हरिजन....जिसके स्पर्श से लोग दूर भागते हैं। जिसको देखते ही नाक दबाकर कदम तेजकर बढ़ जाते हैं। ऐसे व्यक्ति के लिए इतना महत्त्व! उसका इतना ख्याल!

टप्पू के मन को जैसे साम्राज्य मिल गया। गौरा का चित्र स्पष्टतया उभरकर उसकी आँखों के सामने से हट ही न रहा था। गौरा का वह चित्र, जो वह दीपक के साथ देखा करता था, परिवर्तित दिखा! अब गौरा केवल उसे प्रेरणा ही न दे रही थी, वरन् हाथ पकड़ उसे उठा रही थी कि टप्पू उठो, जागो।

उठो! जागो!!

हाँ, वह उठेगा। जागेगा! उसे यह जीवन नहीं चाहिये। यह

वातावरण नहीं चाहिये। घृणित उपेक्षित जिंदगी नहीं, उसे इन्सान की जिन्दगी चाहिये।

पुस्तक बगल में दबाये हुए टप्पू अपनी बस्ती में आया।

अपनी टपरिया में आया। कोई न था। खनमन भी शायद खेलने गया था। जसुदिया अभी आई न थी। टपरिया में भीतर जाते ही उस एकान्त में वह थरथरा गया।

उसे याद आया कि उसने क्या किया है! वह क्या कर आया है!

अपना नाम कटवा आया है।

अब वह इस पेशे को नहीं करना चाहता है।

माँ जब सुनेगी तब....?

उसे डाँट फटकार सुनने मिलेगी।

अब क्या करेगा वह?

कहाँ जावेगा?

टप्पू ठगा-सा खड़ा रह गया। अपना ही प्रतिबिम्ब उसे अपनी आँखों के सामने उठ, हँसता हुआ दिखलाई पड़ा। उसका उपहास उड़ाता हुआ।

टप्पू सिहरकर हठ गया।

क्या सचमुच में वह इन्सान के रूप में एक गटर का कीड़ा है, जिसे अपनी गटर से ऊपर उठने का तनिक भी अधिकार नहीं है? क्या समाज के अंचल में उसे तनिक भी जगह नहीं है?

"टप्पू, टप्पू...."

सुरीला स्वर उसके कानों से टकराया। उसकी स्वप्नावस्था भंग हुई। कौन है? उसे कौन पुकार रहा है?

"टप्पू....टप्पू..."

वह बाहर आया। देखा। लच्छो थी।

उसका चेहरा गम्भीर हो गया।

छत्तीस

"क्या है, लच्छो....?"

"मैं तुम्हें बुलाने आई हूँ।"—मुस्कुराकर उसने कहा—"शहर के बहुत बड़े सेठ के यहाँ आज भोज है। बस्ती के बहुत से लोग वहाँ गये हैं। चल, तू भी चल। पत्तलों में ही आज इतना अच्छा-अच्छा माल मिल जावेगा कि दो दिन बैठकर खावेंगे।"

"........"

"चल जल्दी।"

टप्पू चुप ही रह गया। वह लच्छो के चेहरे की प्रसन्नता को देख रहा था। वह पत्तलें बटोरने जा रही है। उसे भी साथ चलने को कह रही है वह। टप्पू का मन घृणा से भर गया।

वह एक बार गया था।

भोज था एक स्थान पर।

अतिथियों द्वारा पत्तलों पर छोड़ा हुआ भोजन पत्तलों सहित बाहर फेंक दिया जाता था। पत्तलों के गिरते ही सब टूट पड़ते थे और पत्तलों में पड़ा हुआ भोजन अपनी-अपनी टोकरियों में एकत्रित कर लेते थे। इन जूठी पत्तलों पर ही उसके जैसे बहुत से लोगों की भीड़ में धक्कम-धुक्का होने लगती थी। एक पर एक लोग टूट पड़ते थे।

टप्पू यह सब देखता रहा मूर्तिवत् हो। उसकी आँखें सजल हो गईं। उसने इंसान की जिन्दगी का यह पहलू पहली बार देखा। जूठी पत्तलों के लिये इतनी लूट-मार। भीतर भोज उड़ाने वाले इंसानों की तरह बाहर खड़े यह सब भी इंसान हैं पर वह हैं, कि छककर खाते हैं और यह हैं कि उनके जूठन पर ही टूटे पड़ रहे हैं।

एक सिक्के के यह दो पहलू कितने दर्दीले हैं।

टप्पू उस दिन कुछ भी इकट्ठा न कर सका। जो कुछ इकट्ठा किया वह नहीं के बराबर था।

वह लौट आया।

सैंतीस

माँ बिगड़तीं रहीं, पर उसने माँ को इस बात का कोई स्पष्ट उत्तर न दिया। वह चुप ही रह गया और तब से उसने क़स्द कर लिया कि वह अब और न जावेगा।

"चल रहे हो ?"

"मैं नहीं जाऊँगा ?"—बोला टप्पू।

"क्यों....?"

"हम आदमी हैं लच्छो, कुत्ते नहीं, जो जूँठी पत्तलों पर टूटें।"

लच्छो खिलखिलाकर हँस पड़ी।

हँसते हुये उसने कहा—"तुम तो ऐसी बतिया कर रहे हो टप्पू जैसे तुम कोई खास नवाब के बेटे हो ! अरे यही होता तो क्या न था ! अकाल पड़ने पर आदमी को जूँठन क्या, घास-पात भी खाना पड़ता है। यह तो चक्कर की बात है। जिसका जैसा चक्कर। हम लोगों को जूँठी पत्तल बटोरना ही भाग्य में बदा है, तो क्या करोगे ? अच्छा-अच्छा माल तो मिल जाता है।"

"तो अच्छाई के लिए हम इन्सानियत खो दें ?"

लच्छो अवाक् हो गई। आँखें फाड़कर वह रह गई। टप्पू की इस बात को उसने समझने का प्रयास किया कि आजकल यह टप्पू कैसी नई-नई बातें करने लगा है ! क्या-क्या कहने लगा है ? इन्सान और इन्सानियत की बातें करने लगा है। इस बस्ती में नहीं रहना चाहता है। कहता है शहर के लोग मुझसे इतनी दूर-दूर क्यों भागते हैं ?

क्रमशः लच्छो का मन भारी हो गया।

उसके टप्पू को यह सब क्या हो गया है ?

"टप्पू"—वह फुसफुसायी—"तुम आजकल यह कैसी बातें करते हो ? तुम्हें क्या हो गया है ? तुम्हारी बातें मेरी समझ में बिल्कुल नहीं आती हैं। तुम यह क्या कहा करते हो ? इन्सानियत क्या है, जिसके लिए तुम इतने बेकल रहते हो, टप्पू !"

"तुम इस सब बातों को समझती हो लेकिन अपने बाप-दादों से ऐसा चला आया है, यह मानकर तुम सब कुछ बर्दाश्तकर लेती हो। जाओ, कुत्तों-सी जिंदगी बिताओ। इन्सान के रूप में कुछ कुत्ते भी तो रहना चाहिए। जाओ, मरो। मैं नहीं जाऊँगा!"

टप्पू बिगड़ गया।

उसे बिगड़ते देख लच्छो के नयन भर आये।

"मुझे दुतकारते क्यों हो?"

"तुम अब उसी काबिल हो।"

"मैं भी....?"

"हाँ!"

"पर टप्पू!"—लच्छो ने अपने मन की बात उसके सामने रख दी—"तुम नहीं समझते हो कि मैं तुम्हें कितना चाहती हूँ। मैं हमेशा तुम्हारे साथ रहना चाहती हूँ। एक पल को भी तुम्हें अपने सामने से ओझल नहीं देख सकती हूँ। तुम मेरे मन की इन बातों को समझने की कोशिश करो। टप्पू मैं तुम्हारे साथ एक टपरिया में पड़ी रहना चाहती हूँ। और कहीं जगह न दो तो कम से कम अपने चरनन में तो मुझे जगह दे दो।"

लच्छो के नयनों का नीर धरती पर चू पड़ा।

"यह सब तो ठीक है?"—टप्पू नरम पड़ गया—"लेकिन मेरा तुम्हारा साथ नहीं हो सकता है, लच्छो। मैं दूसरी ही मंजिल का मुसाफिर हूँ। इस मंजिल पर तुम मेरे साथ न चल सकोगी।"

"टप्पू....ऐसा न कहो, टप्पू! तुम्हारे बिना मैं रह न सकूँगी। मर जाऊँगी।"

"यह सब पागलपन छोड़ दो। कुछ सोचने और समझने की कोशिश करो।"

उनतालीस

"मैं तुम्हारा साथ नहीं छोड़ सकती हूँ। तुम्हारे साथ मंजिल पर चलूँगी"

"कठिन मंजिल है।"

"मैं तुम्हारे लिए सब कुछ कर सकती हूँ।"

"सब कुछ कर सकती हो?"

"हाँ!"

"तो सुनो आज मैंने अपनी इस नौकरी से नाम कटवा लिया है। क्या तुम भी यही कर सकती हो?"

"टप्पू...."

"हाँ, यह बात सच मानो।"

"अब तुम क्या करोगे? तुम्हारी अम्माँ तुम पर कितनी बिगड़ेंगी!"

"मैं पढ़ूँगा।"

"पढ़ोगे?"

"हाँ!"

"खाने को कौन देगा?"

"मैंने सुना है कि जो गरीब हैं, उनके पढ़ने के लिए और खाने के लिए इस काशी नगरी में बहुत से छेत्र हैं। वहाँ सब बन्दोबस्त है।"

"पर हमलोगों के लिए नहीं।"

फिर टप्पू चीख पड़ा—"हमलोगों के लिए क्यों नहीं? क्या हम लोग आदमी नहीं हैं? क्या दुनिया में कोई भी ऐसा नहीं है, जो हम लोगों को आदमी समझे? ऐसी सब गलत बातें क्यों किया करती हो? पंडितजी की लड़की....

हठात् टप्पू रुक गया।

वह यह क्या कहने जा रहा है!

चालीस

"हाँ, हाँ, रुक क्यों गये ? पण्डितजी की लड़की....?" लच्छो ने आश्चर्य से पूछा।

"पण्डित जी की लड़की नहीं !"—टप्पू ने बात पलटी—"दुनिया में अभी भी ऐसे लोग हैं, जो हमें आदमी समझते हैं और हमारी मदद के लिए तैयार हैं, बशर्ते कि हमलोग उठने की कोशिश करें।"

"हो सकता है ?"

"बाप-दादों की बनाई हुई लकीर पर मैं नहीं चलना चाहता हूँ !"

"........"

लच्छो चुप रह गई।

उसका मन भारी हो गया।

"समझ गई ? अब तुम जाओ। तुम्हें देर हो रही होगी। कहीं पत्तलें खतम न हो जावें।"

"मैं अब नहीं जाऊँगी।"

"क्यों ?"

"तुम जो नहीं जा रहे हो ?"

"मैं तुम्हें समझा रहा हूँ कि तुम मेरी बराबरी मत करो लच्छो। मेरा रास्ता दूसरा है।"

"मैं नहीं जाऊँगी !"

"चाची तुम्हारे ऊपर बिगड़ेंगी।"

"बिगड़ने दो। मार खाऊँगी मैं। तुम्हें क्यों फिकिर होती है।"

"जा लच्छो, जा !"

"जा सकती हूँ पर...."

"पर क्या ?"

'मेरी एक बात मानो !"

"कह....?"

"तुम चाहे कुछ भी करो, लेकिन इस बस्ती को छोड़कर न जाना।"

इकतालीस

"लेकिन मैं यहाँ रहूँगा कहाँ ?"

"कहीं भी रहो, पर मुझे मालूम रहना चाहिये।"

"तुझे ही क्या वह तो सबको ही मालूम रहेगा। तुम्हारे लिए इसमें कौन-सी खास बात है !"

लच्छो का जी जल गया। तुनककर वह हट गई। उसने कुछ न कहा। पलट-पलटकर वह टप्पू की ओर देखती हुई क्रमशः दूर होती गई और जब वह आँखों से ओझल हो गई तो टप्पू हँसकर भीतर आ गया।

"अजीब लड़की है !"

भीतर आकर टप्पू उस पुस्तक के पन्ने खोलकर बैठ गया। गौरा के बताये हुए ढङ्ग से वह अक्षरों को पहिचानने और उनके बनाने का ढङ्ग करने लगा।

मन ही मन वह पढ़ चला।

गणेश से ग, मछली से म और कबूतर से क आदि वह इसी क्रम से पढ़ने लगा। अक्षरों की आकृति वह अपने मस्तिष्क में उतारने लगा। थोड़े से ही प्रयास में वह तीन-चार शब्द सीख गया।

आकृतियाँ कैसे बनाये ?

किस पर बनाये ?

स्लेट भी उसके पास नहीं है।

तीक्ष्ण बुद्धि टप्पू के मन में हठात् एक उपाय सूझ गया। पुस्तक को लेकर वह खेल के मैदान में आ गया। बालू न मिली तो सड़क के किनारे दौड़ गया। वहाँ पर्याप्त बालू थी।

पुस्तक खोलकर उसने सामने रक्खी।

अँगुली से वह बालू में अक्षर बनाने लगा।

क, ख, ग बनाया उसने देख-देखकर और मन ही मन दुहराता हुआ अक्षरों को मन पर अंकित करने लगा फिर पुस्तक बन्द कर दी और

स्मरण से उसने अक्षर बनाये। खोला। कुछ ठीक थे। कुछ गलत थे। गलत सुधारकर बनाये उसने।

टप्पू का आकांक्षित प्रयास प्रारम्भ हो गया।

अँधियारी घिर आने पर ही वह सड़क किनारे से हटा

जसुदिया नागिन-सी फुफकार रही थी। अकारण ही खनमन को उसने खूब पीटा था। वह बाहर गला फाड़-फाड़कर रो रहा था, पर जसुदिया के मन में दया न थी। उसकी मौत मना रही थी वह और अनुपस्थित टप्पू को भी खरी-खोटी सुनाती हुई बड़बड़ा रही थी।

बगल में पुस्तक दबाये हुए टप्पू आया।

वह माँ को अपने मन की आकांक्षायें बतला देना चाहता था कि वह इस काम को पसन्द नहीं करता है, वरन् लिख-पढ़कर कोई काम दूसरा करना चाहता है। दूसरी बस्ती के लड़कों की तरह वह शिक्षा प्राप्त करना चाहता है। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर उसने अपना नाम आज कटवा लिया है। उसे वह सहारा दिये रहती है, तो ठीक है। नहीं तो वह कहीं और जाकर अपनी इस आकांक्षा को पूर्ण करना चाहता है।

जसुदिया ने देखा।

टप्पू सामने खड़ा था।

"आ गये नवाबजादे!"—उसने व्यंग्य से कहा—"नौकरी से नाम कटवा लिया। अब कहाँ की बादशाही करने जा रहे हो!"

"माँ, मैं पढ़ना चाहता हूँ!"

जसुदिया आसमान से गिरी। उसका क्रोध एटना ज्वालामुखी-सा फूट पड़ा।

तेंतालीस

"बाप न दादे, अठारह पीढ़ी ! हमारे खानदान में किसी ने पढ़ा था कि तू ही एक बड़ा पढ़ैया की दुम निकला है। पढ़-लिखकर तू क्या करेगा ! यह काम न करेगा, तो क्या सोना चाँदी ढोने का काम करेगा।"

"माँ मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता !"—टप्पू ने सहमकर कहा।

"आँय !"—जसुदिया आँखें फाड़कर बोली—"तुझे यह सब अच्छा नहीं लगता ! तुझे कौन खिलायेगा ? तेरा बाप ! उसे भी तो तू खा गया। बाकी अब रहा ही क्या है ? जा गली-गली भीख माँग ! बड़ा नबाब पैदा हुआ है, तो जा यहाँ से। काला मुँह कर ! पाल-पोसकर बड़ा कर दिया। चाहे सुख से रह या भाड़ में जा। मुझसे मतलब नहीं...।"

"........"

टप्पू जसुदिया का मुँह ताकता रह गया। उसे हलकी-सी आशा थी कि माँ शायद उसे आश्रय दे दे और उसे पढ़ने-लिखने की छूट मिल जावे, तो उसे दर-दर भटकना न पड़ेगा और वह आसानी से पढ़-लिख सकता है, लेकिन जसुदिया की क्रोधित-मुद्रा ने उसकी इन सब आशाओं पर पानी फेर दिया।

"नाम कटा लिया है, नबाबजादे ने ! खानदानी काम न करेंगे तो गली-गली मारे-मारे फिरेंगे। मेहतर की जात कुत्ते से भी गई बीती होती है। यही भगवान की कृपा है कि खाने और पहनने को मिला जाता है। बाप-दादों से जो चला आया है, वह न करके, लिखेंगे-पढ़ेंगे। सोना-जवाहरात पैदा करेंगे।"

"माँ...."

"मैं एक बात नहीं सुनना चाहती हूँ। तुझे इस घर में कमाकर चार पैसे लाने होंगे। आज तू अकेला है, कल को बीबी-बच्चे होंगे। हर आदमी की अपनी मर्यादा रहती है। वह उसी में रहता है।"

"तुम मुझे पढ़-लिख जाने दो माँ !"—टप्पू बोला—"पढ़े-लिखे

आदमी की दुनिया में बहुत क़द्र है। देखना फिर मैं कितने ढेर से पैसे लाकर दूँगा और शान से हम सब शहर में रहेंगे।"

जसुदिया और जल-भुन गई।

"तेरा तो दिमाग फिर गया मालूम होता है! पढ़े-लिखे आदमी की दुनिया में क़द्र है, पर हमलोगों की नहीं। कोई सुरखाब के पङ्ख लगा लेने से ही सुरखाब नहीं हो जाता है।"

"......."

क्रोधित जसुदिया की दृष्टि टप्पू की बगल में दबी हुई पुस्तक पर पड़ी।

"यह तेरे पास कैसे आई? किसने दी? मालूम होता है अब तूने पैसे चुराना भी सीख लिए!"

जसुदिया पुस्तक छीनने के लिए लपकी, पर टप्पू उसका मन्तव्य समझकर पीछे हट गया। वह समझ गया कि माँ के हाथ में यदि पुस्तक गई, तो वह उसे फाड़कर फेंक देगी।

"किसने दी....?"

"माँ...."

"आग लगे तुझे और तेरी इस किताब में, नाश मिटे...."

"माँ..."

टप्पू पीछे हटता गया।

"तुझे अगर इस घर में रहना है, तो यह किताब फाड़कर फेंक दे। तू यह घर ही ले ले, या किताब ही। दोनों में से एक। दोनों इस घर में नहीं चल सकता है?"

"माँ, क़िताब तो विद्या...।"

"आग लगे तेरी विद्या में। मैं बूढ़ी हो चली और मेरी कोख से पैदा यह कल का छोकरा मुझे ही पढ़ाने आया है। निकल, दुष्ट!"

जसुदिया झाड़ू उठाकर मारने दौड़ी।

पतालीस

टप्पू भाग गया।

बाहर आकर वह सड़क की तरफ बढ़ गया। घर और किताब में से उसने घर नहीं, किताब पसन्द की। अपनी पुस्तक को बगल में दबाये टप्पू उदास मन से सड़क किनारे आ बैठा एक पुलिया पर।

इन सब घटनाओं की उसे पहले से ही आशंका थी।

टप्पू ने तो अपने में सोच ही लिया था, चाहे कुछ भी हो, वह अपने निश्चय पर दृढ़ ही रहेगा।

उदास टप्पू माँ के विषय में सोच उठा।

माँ का हृदय इतना पत्थर नहीं होता है! क्या माँ अपने बेटे को अपने घर से निर्वासित देख सकती है!

अपने पर भी सोचा उसने।

उसका यह कदम कहाँ तक उचित है?

यह सत्य है कि इस बस्ती में रहनेवालों ने अपना खानदानी पेशा ही किया है। सभी अनपढ़ हैं। थोड़े से हैं भी, पर वह नाममात्र को पढ़ सकते हैं, किन्तु इसी कर्म में संलग्न हैं।

क्या उसे भी यही करना चाहिये?

इसका अर्थ यह नहीं कि जो एक परम्परा चली आई है उसी पर सब चलें और उसकी यह जिंदगी....यह जिंदगी भी कोई जिंदगी है। नहीं! नहीं!! नहीं!!! उसे यह जिदगी नहीं चाहिए। वह आदमी है। उसे आदमी की जिंदगी चाहिये। उसका पेशा यह है तो इसका यह मतलब नहीं कि शहर से अलग एक बस्ती में गटर के कीड़ों की तरह वह जिंदगी बिताये....?

और उसका यह कदम गलत भी तो नहीं है!

सभी गलत कहते हैं, पर गौरा...वह उसे उत्साहित क्यों कर रही है? यहाँ वालों की दृष्टि में उसका यह कदम अनुचित है, पर गौरा

अनुचित क्यों नहीं मानती ? वह तो इसे बहुत अच्छा समझती है ! उसने उत्साहित भी किया।

पढ़ो, लिखो और आदमी बनो।

जिंदगी का यही तो मूलमन्त्र है।

अंधकार में सड़क की उस पुलिया पर बड़ी देर तक टप्पू बैठा रहा। अन्ततः वह वहाँ से उठा। कुछ आगे बढ़ा। बत्ती जल रही थी। उसी के नीचे बैठकर वह उदास मन से पुस्तक खोलकर पढ़ चला। प पतंग का और ब बकरी का याद कर चला।

उसे आगे की चिन्ता न थी। कल क्या होगा ? इस ओर उसका ध्यान न था। कल की कल से देखी जावेगी। शहर में जाकर किसी क्षेत्र में आश्रय प्राप्त करने का प्रयत्न करेगा और इस सबके अतिरिक्त उसको सबसे ज्यादा भरोसा गौरा पर था।

गौरा ने उसके लिए इतना किया है, तो क्या जब उसे यह सब मालूम होगा, तो वह उसकी कुछ भी मदद न कर सकेगी !

टप्पू पढ़ चला।

बस्ती में सन्नाटा छा गया। काफी रात गये तक वह पढ़ता रहा। अपने मन की लगन से पढ़ता रहा। जुटा रहा वह। शीघ्र से शीघ्र उसे सब सीख लेना है। गौरा को वह बता सके, सुना सके, दिखा सके, सिद्ध कर सके कि सचमुच में उसमें पढ़ने की लगन है।

रात भींग चली।

पुस्तक सिरहाने रख पुलिया पर आकर टप्पू लेट गया।

सोने का उपक्रम करने लगा। नींद न आ रही थी। मन में हलचल थी। आकाश साफ था। केवल तारे टिमटिमा रहे थे। नील गगन के तारे। जैसे किसी प्रकाशपुञ्ज को छेदोंवाली नीली चादर से ढाँक दिया गया हो और उन छिद्रों से प्रकाश चमक रहा हो।

रात ढल चली।

संतालीस

टप्पू की आँखें भारी हो चलीं। सो गया वह। ठण्डी हवा के झोकों ने उसे थपकियाँ दीं।

हठात् टप्पू की आँख खुल गई। उसे लगा कि कोई ठंडी वस्तु उसके बालों पर चल रही है। घबड़ाकर वह उठ बैठा। अन्धकार था। आँखें मलकर देखा एक नारी की आकृति !

"तुम लच्छो !"—वह कहने ही जा रहा था कि थम गया।

"बेटा..."

टप्पू चुप रह गया। उसका मन भर आया। गला रुँध गया। जसुदिया उसके पास थी। माँ का स्नेह घर में न रह सका था। बेटे के लिए वह दौड़ आया था।

"चल बेटा, घर में चल। वहीं सो रह ! यहाँ सरदी लग जावेगी !"

"पर तुमने तो भगा दिया था, माँ !"

"गुस्से में आदमी क्या नहीं कर डालता है ! पर बाद में समझना ही पड़ता है !"

"........"

"तू चल ! घर में रह ! जबतक मेरे हाथ पैर चलते हैं, तू खा और पड़ा रह ! मेरे मर जाने के बाद जब तेरे सर पर बोझ पड़ेगा, तभी तुझे आटे-दाल का भाव मालूम पड़ेगा और मैं भी देखती हूँ, तू पढ़-लिख कर क्या करता है !"

"माँ...."

टप्पू को जसुदिया ने अपने कलेजे से लगा लिया। पाप का बेटा भी माँ को बड़ा प्यारा होता है।

"चल बेटा !"

टप्पू का हाथ पकड़कर वह ले आई।

माँ का स्नेह पाकर टप्पू पुलकित हो उठा। अब उसे कहीं भी

भटकने की आवश्यकता नहीं है। घर में वह रह सकता है। पढ़ सकता है! गौरा को भी वह यह खुशखबरी सुना देगा।

टप्पू लौट आया।

माँ के पास वह सो रहा। माँ से उसे जैसी आशा थी, वैसा ही फल मिला। बेटे के उचित और अनुचित सभी काम माँ को प्यारे होते ही हैं।

माँ के आँचल का स्नेहसागर प्रशान्त महासागर से भी विशाल है जहाँ नमकीन और मीठे और कड़वे सभी का सम्मिश्रण रहता है!

टप्पू गहरी नींद में सो गया।

भोर होते ही टप्पू उठा। उसके मन में नई आशा का सञ्चार था। माँ का प्रोत्साहन पाकर उसका मन फूला न समा रहा था। वह बहुत खुश था। माँ के इस अप्रत्याशित रूप को देखकर वह मगन था। अपनी पुस्तक बगल में दबाये हुये वह गौरा के घर की ओर बढ़ चला।

गौरा को वह यह शुभ संवाद देना चाहता था। गौरा इसे सुनकर निश्चय ही प्रसन्न होगी। इसी ध्येय की स्मृतियों को सँजोये हुये वह बढ़ा चला जा रहा था।

पण्डितजी के मकान में जब वह गया तो गौरा को पुकारते-पुकारते वह रुक गया। देखा बरामदे में ही पण्डितजी खड़े थे। वह सहम-सा गया कि क्या कहेगा वह! पर तत्क्षण ही उसने सब कुछ बतला देने का निश्चय अपने मन में कर लिया।

"क्या है टपुआ? इतने सबेरे-सबेरे कैसे....?"

"मैंने काम छोड़ दिया है, पण्डितजी !"—पुलकित होकर वह बोला।

"कैसा काम....?"

"अपना काम ! अब मैं पढ़ रहा हूँ। माँ ने भी पढ़ने की इजाजत दे दी है। अब मैं पढ़ूँगा-लिखूँगा।"

उसकी बात सुनकर पण्डित हरिहरनाथ शास्त्री खिलखिलाकर हँस पड़े—"तू पढ़-लिखकर क्या करेगा ? तुझे पढ़ने-लिखने से क्या मतलब ! तुझे तो जन्म भर दो रोटियाँ अपने इस काम से ही मिल सकती हैं।"

पण्डितजी की यह बात सुनकर वह तिलमिला उठा। उसका मन कचोट उठा। पण्डितजी से ऐसी बात सुनने की उसे आशा न थी।

"आप लोग भी तो पढ़ते-लिखते हैं !"

"हाँ, हम लोगों के लिए यह बहुत जरूरी है।"

"और हम लोग ?"

"अरे तेरी और हमारी बराबरी हो सकती है ! तुम लोग हो नीच कौम ! पैदा होते ही नौकरी पा जाते हो। यहाँ तो टक्कर खाने के बाद नौकरी मिलती है और हमलोग ठहरे ऊँची जात ! तू बेकार में इस पढ़ने लिखने के चक्कर में पड़ा है।"

"पढ़-लिखकर मैं नौकरी करूँगा।"

"हः हः हः हः !"—हरिहरनाथ शास्त्री अट्टहास कर उठे—"किसने तेरे दिमाग में यह पागलपन की बात भर दी है रे ! नौकरी और तुझे ! तू आसमान का तारा भी तोड़ ले तो यह बात नहीं मानी जा सकती है कि एक भंगी नौकरी पा सके। क्या करेगा ? नाली साफ करेगा या ज्यादा से ज्यादा जमादार हो जावेगा।"

"........"

टप्पू ! मालूम पड़ता है, किसी ने तुझको बहका दिया है। तू यह सब छोड़ और चुपचाप अपना काम कर। तुम लोगों को हमलोग ही क्या,

हमारे इस शहरी समाज का कोई भी व्यक्ति छू भी नहीं सकता है। पढ़-लिखकर तू भले ही बी० ए० हो जा, पर तेरे लिए जगह कहीं भी न रहेगी। कौन अपने पास तुझे बैठाकर अपना धर्म बिगाड़ेगा !"

उसके पास इसका कोई उत्तर न था। वह मन मारकर रह गया। कहना चाहा उसने कुछ, पर बात कड़ुवी थी। न कही उसने और चुप ही रह गया।

हरिहर शास्त्री ने उसकी ओर देखा। अपनी बातों का प्रभाव देख वह मुस्कुरा उठे।

"अपना काम करो। इस व्यर्थ के पचड़े में कुछ भी नहीं रक्खा है। तुम शूद्र हो। शूद्र को सेवा से काम है। शिक्षा से नहीं !"

उसका मन पण्डितजी का यह रूप देखकर कसक उठा। गौरा उनकी ही लड़की है। उसने ही उसे प्रेरणा दी और एक यह हैं। ठीक उसके विपरीत ! एक ही अंश के दो अङ्गों का विरोधी स्वरूप !

"तेरी माँ ने भी पढ़ने को कह दिया है।"—हरिहर शास्त्री की आँखें चमक उठीं—"तूने जिद की होगी इसलिए उसने तुझसे कह दिया होगा पर यह अच्छा नहीं है।"

"लेकिन मेरी इच्छा है पढ़ने की। शूद्र हूँ तो क्या हुआ पण्डितजी, क्या पढ़ने का हक मुझे नहीं है !"

"नहीं ! समाज के विधान ईश्वरीय आज्ञा से बना दिये गये हैं। हमारा समाज चार वर्णों में इसीलिए विभाजित है। पठनपाठन का अधिकार ब्राह्मण को है और रक्षा का अधिकार क्षत्रिय को, व्यापार का अधिकार वैश्य को और सेवा का अधिकार शूद्र को है।"

पण्डितजी के मुँह से यह सुनकर टप्पू अवाक् रह गया। यह एक नई बात थी। एक नई परिभाषा थी, जो वह पहली बार सुन रहा था। उसके मन पर एक चोट लगी। यह कैसी व्यवस्था है ? यह कैसी ईश्वरीय आज्ञा है ?—भगवान ने सब मनुष्यों को बनाया है। बिना किसी भेद-

भाव के उसने सबका निर्माण किया है। तब वह कैसे इस बात की आज्ञा दे सकता है कि उसके ही बनाये हुये कुछ प्राणी मानवोचित अधिकारों से वञ्चित रहें। उसके मन में यह बात कुछ जँची नहीं।

उसकी जिज्ञासा ने उसे प्रश्न करने के लिए बाध्य किया।

"क्या सचमुच में पण्डितजी हम लोगों को पढ़ने का हक नहीं है? यह शास्तर में लिखा है?"

"हाँ!"—पण्डितजी बोले—"क्या तुम्हें मेरी बात का विश्वास नहीं हो रहा है? क्या मैं झूठ बोलूँगा?"

"नहीं पण्डितजी!"—वह घबड़ाकर बोला—"बात मेरी समझ में नहीं आ रही थी, इसलिये आपसे पूछा!"

"हाँ, हाँ, शास्त्र में लिखा है और सारा समाज शास्त्रानुसार ही अपने काम चलाता है इसीलिये तुम देखते हो कि हमलोग तुम्हें छूते भी नहीं। तुम्हारी गिनती अछूतों में है। भ्रमवश तुम्हारा स्पर्श हो जावे, तो हम लोगों को तत्काल जनेऊ बदलना पड़ता है। स्नान करना पड़ता है। यह सब शास्त्र की आज्ञा है और सारा समाज इसीसे बँधा हुआ है। मैंने तुम्हें बता दिया। मानो न मानो तुम्हारी मरजी!"

पण्डित हरिहरनाथ शास्त्री खड़ाऊँ 'खट-खट' करते हुए चले गये।

वह सोचता रह गया कि यह कैसा शास्त्र है? कैसी व्यवस्था है? पण्डितजी की इस बात पर उसे विश्वास हुआ कि शास्त्र में अवश्य ही ऐसा होगा, तभी तो लोग उसके स्पर्श से दूर भागते हैं। शास्त्र में शूद्र को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं है। यह बात उसके गले में न उतर रही थी।

उसकी आत्मा ने कहा कि यदि वास्तव में शास्त्र में ऐसा लिखा हुआ है, तो कुछ उच्चवर्गीय लोगों द्वारा कुछ को अपना दास बनाये रखने के लिए ही इस शास्त्र का निर्माण हुआ है। मनुष्य होने के नाते सबको समान अधिकार है। शिक्षा-दीक्षा और समाज में रहने का अधिकार सबको

है। यह बात और है कि अपनी विद्या-बुद्धि के बल से कोई ऊँचे पद पर है और कोई साधारण चपरासी है।

वह निराश होकर वहाँ से हट गया।

उसका मन दुःखित हो उठा। पण्डितजी से यदि उसे प्रोत्साहन मिल गया होता तो उसके हृदय को इस समय अपार हर्ष हुआ होता। बहुत कुछ इसी प्रेरणा से उसने यह बात उनके सामने खोल दी थी।

उसके मन में क्रमशः यह विश्वास जमता जाता था कि उसके विरोधी ही सर्वत्र हैं। उसका समर्थन करनेवालों की संख्या न्यूनतम ही है गौरा के अतिरिक्त उसे और कोई अपना समर्थक, प्रोत्साहित करनेवाला दृष्टिगोचर न हो रहा था।

केवल गौरा ही उसे प्रोत्साहित कर रही है।

टप्पू को आश्चर्य हुआ कि वह किस उद्देश्य से प्रेरित हो उसे बढ़ावा दे रही है। इसमें उसका स्वार्थ क्या है?

वह लौट जा रहा था। मन भारी था कि कहीं पण्डितजी ने जोर देकर उसकी माँ से यह बात कह दी, तो शायद माँ अपनी आज्ञा रद्द कर दें।

टप्पू ने इस संभावना से अधिक पीड़ित होने पर अपने मन को यह समझा कर पीछा छुड़ाया कि यदि ऐसा होगा तो वह घर से निकल जावेगा। किसी भी मूल्य पर वह अपने इस उद्देश्य से विरत नहीं हो सकता है।

वह मैदान में आकर बैठ गया और बालू के अभाव में एक लकड़ी के टुकड़े से ही जमीन पर लकीरें बनाकर अपना पाठ दुहराने लगा। वह इस बात का विशेष ध्यान रख रहा था कि उसकी लिखावट हूबहू छपे अक्षरों-सी हो। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर पुनः पुनः वह अपना पाठ दुहरा-दुहराकर उसीके अनुकूल अपने को बनाने लगा।

तिरपन

लगन से जिस ओर ध्यान लगाया जाता है, वह उद्देश्य आसानी से फतह हो जाता है। सफलता उनके ही चरण चूमती है, जो लगन से और निरन्तर कर्म से उसकी आराधना करते हैं।

अपने पढ़ने में वह इतना लीन था कि उसे इस बात का पता ही न लगा कि लच्छो उसके पीछे आकर खड़ी हो गई है और आश्चर्य से उसकी ओर देख रही है। उसको अत्यधिक लीन देख और अपने आने का उसे कोई भान न होते देख वह स्वतः बोली—

"यह क्या कर रहे हो टप्पू ?"

वह चौंक पड़ा। भागती हुई गाड़ी जैसे एक जोर के झटके से रुक गई हो।

"तुझे मतलब ?"

"पूछ रही हूँ। आज तुम काम पर नहीं गये और तो सब खैरियत है ?"—लच्छो ने व्यंग्य से कहकर मुस्कुराने की कोशिश की।

"मैं काम पर नहीं जाऊँगा। माँ ने मुझे लिखने-पढ़ने की इजाजत दे दी है।"

"वाह ! तुमने हाथी जीत लिया। अच्छा माँ ने यह अच्छा ही किया। हम लोगों को भी देखने मिलेगा कि हमारे बीच का यह रतन कैसा है !"

"......."

"कल मैंने खूब माल उड़ाया। रसगुल्ला, खीर, पूड़ी....सच कहती हूँ टप्पू तुम भी रहते हो तो और भी मजा रहता।"

"जूठन तो कुत्ते ही खाते हैं। मैं कुत्ता नहीं हूँ !"

"तो क्या हमलोग कुत्ते हैं ?"

"वह जो आदमी होकर भी आदमी बनने की कोशिश नहीं करते हैं वह कुत्ते नहीं तो और क्या हैं !"

"तुम पण्डितों जैसी बहुत बढ़-बढ़कर बातें करने लगे हो।" कहकर लच्छो ठठाकर हँस पड़ी—"आखिर हो भी तो पण्डत के..."

छूरा लगा टप्पू को। आँखें फाड़कर उसने लच्छो की ओर देखा। वह उसकी ओर देखती हुई मुस्कुरा रही थी। टप्पू ने जैसी-जैसी ठेस उसके हृदय पर की थीं, वैसे ही वह उसे भी चोट देना चाहती थी। जाने कितनी आरजू मिन्नतें वह अबतक उससे कर चुकी थी, पर वह था कि उसकी एक बात न सुनता। पत्थर के आदमी से भी वह इतनी 'पराथना' करती तो वह पिघल गया होता !

"क्या कहती है ?"

"जो मैं जानती हूँ, वही कहा।"

"फिर से कह ?"

"तुम पण्डितों जैसी बातें करते हो। आखिर हो भी वहीं के !"

"लच्छो !"—वह चीख पड़ा—"तेरा मतलब....?"

"मेरा मतलब मुहल्लेवालों से पूछो !"

"तुझे बताना होगा।"

"बता सकती हूँ पर एक शर्त है कि तुम्हें मुझे दुतकारना न होगा। मुझे फटकारा न करो। मैं केवल तुमसे दो मीठी-मीठी बातें ही करना चाहती हूँ, पर तुम हर वक्त मुझे दुतकार दिया करते हो ?"

"......"

"मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है टप्पू जो तुम इस तरह से मेरे साथ पेश आते हो ?"

"अच्छा तू बता !"

"पहले मंजूर करो।"

"मंजूर !"—उसने फुसफुसाकर कहा।

हठात् लच्छो को अपनी बात की गंभीरता याद आ गई। अपनी प्रतिशोध की भावना में वह इस बात के यथार्थ को भूल ही गई थी कि यदि

वह इस बात को उससे बताये देती है, मुहल्ले में उसकी माँ के सम्बन्ध में यदाकदा चलनेवाली इस चर्चा से उसे अवगत कराये देती हैं, तो इसका उस पर क्या प्रभाव होगा ?

ऐसी अनैतिक बात !

लच्छो सिहरकर चुप हो गई।

लच्छो ने करवट लेना ही उचित समझा। इसके अतिरिक्त उसके आगे और कोई रास्ता ही न था।

वह खिलखिलाकर हँस पड़ी।

हँसती हुई बोली—"तुम मेरी बात को सच मान गये। अरे टप्पू, मैं तो मजाक कर रही थी !"

"मजाक !"

"हाँ !"

"भाड़ में जाय तुम्हारा ऐसा मजाक !"—टप्पू झल्ला पड़ा।

"......."

"नाराज हो गये ?"

"तुम्हारी यही सब बातें मुझे अच्छी नहीं लगती हैं। तुम देख रहो हो कि मैं पढ़-लिख रहा हूँ। मुझे इन सब बातों के लिए समय ही कहाँ है ! इस तरह की बातों में अगर मैं पड़ने लगूँ तो मेरी पढ़ाई-लिखाई धरी रह जावे।"

"लेकिन ऐसा तो मैंने कहीं नहीं देखा।"

"कैसा...?"

"यही कि धरती पर किसी ने लिखा हो।"

"क्या हुआ ? अभी मेरे पास सलेट पिंसल नहीं है। माँ से माँगने की हिम्मत नहीं होती है। बाकी तनख्वाह के पैसे मिलेंगे तो ले लूँगा।"

लच्छो एकटक उसकी ओर देखती रह गई। उसकी बातों का उसके मन पर प्रभाव पड़ रहा था। उसकी इस लगन को देखकर

उसका मन भर आया। टप्पू के इस क्रम में बाधा देने के कारण उसका मन अपने आप पर दुःखित हुआ। उसके मन ने इस बात को स्वीकार किया कि उसने बाधा देकर अच्छा नहीं किया है।

उसके प्रति उसका मन भर आया। उसके फटकारने पर बड़ा भी उसका मन कचोट उठने पर भी टप्पू के प्रति पिघल ही जाता था। वह इस बात को स्पष्ट रूप से जान चुकी थी कि वह तनकर भी उससे अधिक समय तक दूर नहीं रह सकती है।

"अच्छा टप्पू, मुझसे गलती हुई। आगे मैं दखल न दूँगी।"

लच्छो अपनी टोकरी और झाड़ू सँभालकर चुपचाप आगे बढ़ गई। पीठ अपनी ओर रहने से टप्पू उसकी गीली आँखें न देख सका। लच्छो भी आगे ही बढ़ती गई और उसने पलटकर भी न देखा।

उसे इस तरह से जाते देख टप्पू का मन भर आया।

अपने पाठ को वह भूल गया और भारी आँखों से वह उसे जाते हुए देखता रह गया।

लच्छो चली गई। न उसने मुड़कर देखा और न पलटकर देखा। उसके ओझल हो जाने पर टप्पू कुछ विशेष रूप से इस बार गम्भीर हो उठा। इस बार उसने लच्छो पर अधिक सहानुभूति से विचार किया। इतना फटकारने पर भी, दुतकारने पर भी वह उससे दूर नहीं होती है। उसकी छाया की तरह वह उसके साथ सदा रहना चाहती है। उसको अपने पर दुःख हुआ कि वह इस तरह का व्यवहार उसके साथ करता है यह अनुचित है! जब दूसरे उसको इस प्रकार तिरस्कृत करते हैं, तो वह मानवता की दुहाई देने लगता है, पर वह खुद ही इसी कार्य को कर रहा है। यह अनुचित है। यह अनुचित है।

किसी के साथ इस प्रकार का व्यवहार नहीं करना चाहिये।

उसने मन ही मन भविष्य में ऐसा न करने की ठान अपने मन को संतोष दिया।

सत्तावन

विचारों से मुक्त होकर उसने सर ऊपर किया। आँखें सड़क पर गईं। एक ताँगा दौड़ा जा रहा था और उस ताँगे में एक रम्य बाला हिचकोले खा रही थी। उसकी रूप-रेखा देखते ही उसका चेहरा खिल उठा। अपने आप अधर उसका नाम फुसफुसा उठे और भरपूर शक्ति से वह उस ओर दौड़ गया सड़क पर उसके पहुँचने से पूर्व ही कहीं ताँगा निकल न जावे, पर ऐसा हुआ नहीं। वह जब सड़क पर पहुँचा, तो ताँगा उसके पास ही कुछ दूरी पर था।

सदा की तरह वह जानता था कि ताँगा रुकनेवाला नहीं है। गौरा का ताँगा और उसे देखकर सड़क पर रुक सके। यह सर्वथा असंभव था। वह यह जानते हुए भी केवल इस आशामात्र से वहाँ खड़ा था कि वह गौरा को देख सके और गौरा उसे देख सके। आँखों ही आँखों में वह उसे बतला सके कि वह पढ़ रहा है और उसके आदेशानुसार वह पढ़ता ही रहेगा। वह यह भी बतला देना चाहता था कि पढ़ने के कारण ही उसने अपना काम भी छोड़ दिया है और माँ ने भी यह बात स्वीकार कर ली है लेकिन उसको समझ में न आ रहा था कि अपनी इस बात को वह गौरा पर कैसे प्रगट करे।

ताँगा पास आता जा रहा था। उसकी धड़कनें बढ़ती जा रही थीं। ताँगा पास आया। देखते-देखते उसके सामने आया। गौरा स्कूल जा रही थी। ताँगेवान का ध्यान उस पर न गया। न जाने इस तरह के कितने लड़के उसे सड़क पर खड़े मिलते या चलते मिलते अथवा कुछ लड़के साइकिल पर ताँगे के पीछे-पीछे कुछ दूर तक चले चलते। यह सब उसके लिये साधारण-सी बातें थीं। इस ओर उसका विशेष ध्यान न रहता था। उसे केवल गौरा की सुरक्षा का भार सौंपा गया था और इस सुरक्षा को आज तक किसी ने भङ्ग करने का दुस्साहस न किया था इस-लिये कि प्रौढ़ स्थूलकाय उसकी आकृति किसी दैत्य से कम न थी। भारी-भरकम शरीर और सिर पर बँधा हुआ साफा, हाथ की आवश्यकता

से अधिक मोटा चाबुक, जो किसी भी प्रयोग में आ सकता था। उसकी लाल सुर्ख डरावनी आँखें और आकृति ही आजकल के छोकरों को सहमा देने के लिए पर्याप्त थीं।

देखते-देखते ताँगा आगे निकल चला। वह एकटक देखता रहा। गौरा ने उसकी ओर न देखा। दूर जब ताँगा निकल गया तब गौरा ने उसकी ओर देखा। टप्पू को जीवन मिला। प्राण मिले। वह मुस्कुरा उठा और तभी ताँगे से कोई बड़ी सफेद वस्तु नीचे गिरते उसने देखी।

ताँगा आगे बढ़ता ही गया। मोड़ पर जाकर ओझल हो गया।

वह दौड़ गया और दौड़कर उस वस्तु को उठा लाया। कागज में कुछ बँधा हुआ था। टप्पू को आनन्दमिश्रित कौतूहल के साथ-साथ आश्चर्य भी हुआ कि उसमें है क्या, जो इतनी सुरक्षा से बाँधकर उसे दिया गया है? प्रसन्नता के प्रवेग से वह तागे की गाँठें न खोल सका और कागज एक-दो स्थान से फट गया। टप्पू ने उसी स्थान से देखा। वह स्लेट थी। पेन्सिल थी। कागज फाड़ फेंका उसने। तागा तोड़ दिए और स्लेट को मुक्ति दी। देखा! मजबूत काली स्लेट। टप्पू के आनन्द का ठिकाना न रहा। उलटकर देखा उसने। दूसरी ओर बड़े-बड़े अक्षरों में कुछ लिखा हुआ था। वह आँखें फाड़कर उसे पढ़ने लगा, पर लाख प्रयत्न करने पर भी उसकी समझ में न आया कि क्या लिखा है? इतना तो वह अवश्य समझ गया कि गौरा ने कुछ लिखा है, पर क्या....? यह उसकी समझ के परे था।

कुछ ही कुछ समझ सका वह। म मछली का। न नथ का। ल लड़के का। ग गणेश का। क कबूतर का। र रथ का। प पलंग का। ढ ढक्कन का। पर सब मिलकर यह क्या प्रगट करते हैं? उसकी समझ में न आया। वह यह जानने के लिए उत्सुक हो उठा कि अन्ततः गौरा ने क्या लिखा है? कोई न कोई बात गौरा ने लिखकर उससे अवश्य कही है, जिसे वह पढ़ नहीं पा रहा है। उसका मन कसक से भर गया। काश! वह

पढ़ पाता। इतना मन उसका कसक गया कि उसके नयनकोर सजल हो उठे।

अब...?

उसके मन को एक उपाय सोचकर सन्तोष हुआ। गौरा ने क्या लिखा है? यह जान सकने के लिए उसने उपाय निकाल लिया। उसने स्लेट के लिखे उस भाग को बड़े ही जतन से सँभाला और सड़क किनारे-किनारे चल पड़ा। स्कूल का समय है। स्कूल में पढ़नेवाले बहुत से लड़के इस समय रास्ते में होंगे। किसी को भी रोककर वह पढ़वाकर समझ सकता है और इसके साथ-साथ वह स्कूल में भरती भी हो सकता है।

अरे हाँ....इस बात पर तो उसने अभी तक सोचा ही नहीं था। ओः इतनी अच्छी बात वह भूल कैसे गया?

वह सड़क किनारे-किनारे बढ़ चला। गौरा भी इसी रास्ते स्कूल गई है! जाने कौन-से स्कूल में वह पढ़ती है। लड़कियों का स्कूल तो अलग होता है। लड़कियों के किसी स्कूल में वह पढ़ती होगी।

शहर की सीमा में आने पर एक लड़का उसको जाता दिखा। उसकी ही अवस्था के लगभग का था वह। उसने रोका उसे।

"सुनना भैया....?"

वह रुक गया।

टप्पू ने स्लेट का वह लिखा भाग उसके सामने किया—"इसमें क्या लिखा है?"

उस बालक ने देखा। मुस्कुरा पड़ा वह।

"क्या लिखा है?"

"मन लगाकर पढ़ो!"

"बस....?"

"हाँ!"

वह लड़का बढ़ गया और टप्पू पुलकित, विस्मित-सा वहीं खड़ा रह

गया। गौरा ने उसे पुस्तक दी। यह स्लेट दी और लिखकर उसे आदेश दिया है कि 'मन लगाकर पढ़ो!' टप्पू ने इन शब्दों को गर्व के साथ दुहराया। हाँ, वह मन लगाकर पढ़ेगा। गौरा की यह आज्ञा ही क्यों, उसकी प्रत्येक आज्ञा उसे शिरोधार्य है! उसके एक इशारे पर, कहने मात्र से ही वह कूएँ में भी कूद सकता है।

"मन लगाकर पढ़ो।"

हाँ, वह मन लगाकर ही नहीं जी जान से पढ़ेगा। और इस भावना के साथ उसके मन में भारी अफसोस हुआकि उसकी ही उम्र का लड़का यह पढ़ गया और वह न पढ़ सका। स्लेट पर लिखे गये उन शब्दों को उसने पुन: आँखें गड़ाकर देखा। म मछली का और न नथ का। ओः म और न मन हुआ। मन! म और न, मन! उसने इस बात को मन ही मन अनेक बार दुहराया। उसे बड़ा सरल लगा। मन ही मन उसने अपने को कोसा भी कि इतनी-सी सरल बात उसकी समझ में नहीं आई। आगे देखा उसने। ल लड़के का और ग गणेश का, क कबूतर का और रथ का। ग गणेश का जो है उसके आगे एक खड़ा डंडा बना है। गा है। सब मिलाकर 'लगाकर' हुआ। 'मन लगाकर।' प पलंग का और ढ ढक्कन का। उसके आगे एक खड़ा डंडा है और उस डंडे के सिर पर भी एक तिरछा डंडा लगा है, जिसके सिरे पर एक गोला है। यह उसकी समझ में न आया। पढ़ो है यह! इतना तो समझ गया। प और ढ़! प....ढ़....तब तो यह जो इस तरह से ढ के आगे बना है वह ओ है। पढ़ ओ....वह अपनी इस खोज पर प्रसन्न हो उठा। कई बार उसने ध्यान से देखा और पढ़ा।

'आ' कैसा होता है वह समझ गया। टप्पू ने अपनी पेंसिल सँभाली और चट उसने उसके नीचे लिखा। थोड़ी ही देर में उसने 'मन लगाकर' की नकल ज्यों की त्यों नीचे उतार दी और उसके पढ़ 'पढ़' लिखकर उसके आगे एक खड़ा डंडा बना दिया। मन लगाकर पढ़ा। यह गौरा के

लिए उत्तर हो गया। इसे लिखकर टप्पू का मन उत्सुक हो गया कि गौरा को यह वह दिखा सके। इस स्लेट को उसके पास तक पहुँचा सके। लेकिन वह थम गया। गौरा के पास तक अपनी यह बात पहुँचा देने के लिए उसके पास कोई साधन न था। जाते वक्त वह ताँगे में बैठी हुई गौरा को स्लेट दे नहीं सकता। हाँ, घर जाकर उसे अवश्य दिखला सकता है जब कि वह उसके सामने आ सके और पण्डितजी न हों।

इन्हीं उलझनों में उसने अपना काफी वक्त वहीं खड़े-खड़े गँवा दिया। हठात् उसे होश आया कि उसे किसी स्कूल में भरती हो जाना चाहिये। अब उसे कमी ही किस बात की है! अब उसे रोक ही क्या है! उसके पास किताब है और अब स्लेट पेंसिल भी हो गई। अब उसे क्या चाहिये है!

टप्पू ने अपने पाँव बढ़ा दिये।

उसे स्मरण आया कि इसी स्थान से कुछ दूर पर एक स्कूल है। इस स्कूल की छुट्टी होने पर वह उन लड़कों को देखा करता था, जो झुंड के झुंड बाहर निकलते थे और हँसते-खेलते, दौड़ते-भागते, उधम मचाते स्कूल से घर की ओर जाया करते थे। स्कूल से ही थोड़ी दूर पर वह झाड़ू लगाया करता था।

वह बढ़ता गया। स्कूल के पास पहुँचकर ही उसने दम ली। माथे पर का पसीना पोंछा उसने और प्रसन्नता की एक मुस्कुराहट लेकर वह स्कूल में घुस गया: पर उसके पग कुछ डग जाकर ही ठिठक गये। स्कूल के लड़के पंक्तिबद्ध हो खड़े थे और अध्यापक गण ऊँचे बरामदे में खड़े थे। सब लड़के हाथ जोड़कर खड़े थे। दो लड़के सीढ़ियों पर हाथ जोड़े खड़े थे। वह एक साथ एक पंक्ति कहते और दूसरे लड़के उसके बाद दुहराते थे।

"जन-मन-गन अधिनायक जय हे भारत भाग्य विधाता...."

"........"

"तव नामे जागे, तव शुभ आशिष माँगे, गाहे तव गौरव गाथा...."

"........"

"जन-मन-गन अधिनायक जय हे भारत भाग्य विधाता....जय हे... जय हे....जय हे....जय जय..."

टप्पू समझ गया। यह प्रार्थना हो रही है। भक्ति-भाव से वह भी वहीं हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और सब लड़कों के साथ पंक्तियाँ दुहराने लगा। वह इतना गद्‌गद हो गया कि उसकी आँखें बन्द हो गईं और पलकों के भीतर उनमें प्रेमाश्रु भी उमड़ आये।

प्रार्थना समाप्त होते ही लड़कों की एक-एक पंक्तियाँ ऊपर सीढ़ियों से चढ़ गईं और स्कूल के अलग-अलग कमरों में समा गईं। सब लड़के चले गये। अध्यापकगण भी चले गये। मैदान खाली हो गया। केवल टप्पू रह गया आश्चर्य से चारों ओर देखता हुआ। क्या उसकी ओर किसी का ध्यान नहीं गया? क्या किसी ने उसको नहीं देखा...? वहबड़े असमंजस में पड़ गया कि वह किस कक्ष में घुसे? किसके पास जाकर वह अनुरोध करे कि वह पढ़ना चाहता है? स्कूल में भरती होना चाहता है?

इसी द्विविधा में टप्पू खड़ा हुआ था कि एक व्यक्ति, कुछ देहाती-सा बाहर आया और एक खंभे से, जो घंटा झूल रहा था, उस पर दो हथौड़े की चोटें मारीं।

"टन्न! टन्न!"

हथौड़ा रखकर वह जाने ही वाला था कि टप्पू दौड़ गया। उसके सामने खड़े होकर उसका रास्ता रोक लिया।

"मैं भरती होने आया हूँ!"

"भरती....?"

"हाँ!"

"तो बड़े पण्डितजी के पास जाओ!"

"कहाँ....?"

"इका सामने आफिस है !"—उसने एक कमरे की ओर अँगुली से इशारा किया।

टप्पू ने देखा। एक बड़ा कमरा था। दीवारों पर तस्वीरें थीं। बीचोंबीच बिजली का पंखा घूम रहा था। एक बड़ी टेबिल पर एक अधेड़ आदमी चश्मा लगाये बैठा था। उसके ही पास सटी हुई दो टेबिलें थीं। एक कोने में एक और बाबू बैठा था। किसी मशीन पर वह अँगुलियाँ चलाता हुआ 'फटाफट-फटाफट' कर रहा था। मशीन के ऊपर कागज भी झूल रहे थे।

सहमता हुआ टप्पू अपनी स्लेट और किताब बगल में दबाये हुए भीतर गया। दरवाजे के कुछ ही अन्दर जा सका वह। उसके पाँव काँप रहे थे। एक ने उसकी ओर देखा।

"बड़े पण्डतजी...."

"हाँ, क्या बात है ?"

"मैं पढ़ने आया हूँ !"

"पढ़ने....?"

"हाँ !"

"नाम लिखाने !"

"हाँ !"

"क्या नाम है ?"

"टप्पू..."

"कौन जात हो ?"

"मेहतर...."

"मेहतर...."—प्रधानाध्यापक सिटपिटा गये। कुछ क्षण टप्पू के मुख की ओर ताकते रह गये। इतनी सुन्दर मुखाकृतिवाला, मैले-कुचैले कपड़ों में लिपटा हुआ बालक मेहतर है। उन्हें विश्वास न हुआ।

"मेहतर हो ?"

"हाँ !"

वह बड़े ही असमंजस में पड़ गये। मेहतर के लड़के को वह स्कूल में भरती करने से इन्कार नहीं कर सकते हैं ? अगर किसी ने यह मामला उच्चाधिकारियों के पास तक पहुँचा दिया तो, उनकी नौकरी पर बन आ सकती है। आज की सरकार ने कानून बना दिया है। मन्दिरों में हरिजन प्रवेश कर सकते हैं। नायितों को उनके केशकर्तन का भार लेना ही पड़ता है। भोजनालयवालों को उन्हें स्थान देना ही होगा। यदि इसका उल्लंघन होता है, तो उल्लंघनकर्ता को इसका दण्ड भोगना पड़ता है। कानून में इसके लिये दण्ड की व्यवस्था कर दी गई है।

"और कोई आया है, तुम्हारे साथ ?"

"जी नहीं ?"

"घर में और कोई है ?"

"हाँ !"

"कौन....?"

"माँ है !"

"उसे साथ लेकर आओ तब नाम लिखा जावेगा !"—उन्हें राहत का रास्ता मिल गया। टप्पू यह सुनकर मौन रह गया। जितनी खुशी से वह आया था उतने ही दुगुने दुःख से उसका मन भर गया। एक बार बड़ी करुणा-भरी दृष्टि से उसने बड़े पण्डितजी की ओर इस आशा से देखा कि उस पर कुछ दया हो जावे, पर पत्थर पिघल सकते हैं लेकिन पत्थर के भगवान भगवान और समाज के तथाकथित प्रतिष्ठित कभी नहीं पिघलते हैं। पत्थर पर फूल खिल सकते हैं पर इनकी मनोवृत्तियाँ तब भी बदल नहीं सकती हैं।

टप्पू बाहर आया।

हताश हो वह घर की तरफ चल पड़ा। हर बात में माँ उसे कह तक सहयोग देगी ! इस बात से वह रुष्ट है। यही इसके लिये एक

वरदान मिल गया है कि उसे पढ़ने की छूट दे दी गई है, अन्यथा वह आज जाने कहाँ चक्कर काटता होता ! जाने कहाँ ठोकरें खाता रहता ! भारी मन लिए टप्पू चला आया। माँ से कैसे कहे वह ? कैसे अपने साथ ले जाकर उसे स्कूल में भरती करा आने की प्रार्थना करे ? उसकी समझ में न आ रहा था, पर जैसे भी हो इसे पूरा करना होगा। रोकर, गिड़गिड़ाकर, हठकर, येनकेन प्रकारेण कराना ही होगा। वह अपने मनमें इसकी ही भूमिका बाँध रहा था।

स्लेट और किताब एक बगल रख वह दालान में लेट गया। सोच रहा था वह। शाम को माँ के आने पर वह बड़े ही प्यार से उससे कल स्कूल तक साथ चलने के लिए प्रार्थना करेगा। माँ का स्वभाव उग्र है पर भीतर से वह उतनी ही कोमल भी है। विचारमग्न टप्पू को अपने आस-पास का कुछ भी ध्यान न रहा।

बाहर से खेलता हुआ खनमन उसके पास आया। टप्पू को इसका पता ही न चला। खनमन का ध्यान स्लेट और किताब की ओर गया। काली-काली स्लेट उसके लिए नयी वस्तु थी। ऐसी चीज उसने पहली बार देखी थी। उस नटखट बालक ने वह उठा ली पर उठाने पर सम्हाल न सका। खिसक गई छोटी-छोटी अँगुलियों से।

"तड़ाक !"

गिरी वह स्लेट और उसके दो टुकड़े हो गये। टप्पू उछलकर खड़ा हो गया। घबड़ा गया वह। यह क्या हुआ ? क्या चीज उसके ही पास फूटी ? देखा....और देखा...स्थिति कुछ दूसरी ही....देखा उसने अपने आँखों से....आँखें मलकर देखा....उसकी जिंदगी से भी अधिक कीमती स्लेट उसके सामने टूटकर दो टुकड़े हो पड़ी हुई थी। यह कैसे हुआ ? क्यों हुआ ? पास ही खनमन को देखा। सब समझ गया। पर वह चीख न सका, न चिल्ला सका। बुत की तरह आँखें फाड़कर रह गया। काठ मार गया उसे। बड़ा गहरा धक्का लगा।

और माई का यह रूप देखते ही खनमन भाग गया। भय से घबरा कर वह भाग गया।

टप्पू को होश आया।

उसकी आँखें बरस उठीं। वह रो पड़ा। बच्चों की तरह! बिलकुल बच्चों की तरह जैसे उसका कोई निकट का आत्मीय चल बसा हो। ठीक उसी तरह रो पड़ा जैसे वह अपने पिता की मौत पर रोया था। जैसे उसका सब कुछ लूट गया हो। आठ-दस आने की उस स्लेट के लिये टप्पू सिसक-सिसक कर रोने लगा। हिचकियाँ फूट पड़ीं। स्लेट के दो टुकड़े उसके दिल के दो टुकड़ों की तरह थे।

रोता रहा टप्पू!

आँसू समाप्त हुये तो वह चुप हो गया, पर मन कसकता ही रहा। गौरा ने उसे स्लेट दी उसकी एक स्मृति और साथ ही साथ उसकी जिंदगी के विकास का पहला-पहला साधन टूट गया। अब क्या होगा? कहाँ से स्लेट आवेगा? उसके पास तो अभी पैसे नहीं हैं। तनख्वाह के बाकी पैसे पहली तारीख को ही मिलेंगे। इस बीच तक वह क्या करे? गौरा से किस मुँह से वह दुबारा स्लेट माँग सकता है!

खनमन!

बड़ा क्रोध आया उस पर! अगर वह सामने होता तो खींचकर एक तमाचा वह उसके मुँह पर ऐसा मारता कि खून छलक पड़ता, पर वह भाग गया था। नाग की तरह फुफकारता हुआ उत्तेजित टप्पू बाहर आया। मैदान में दूर-दूर तक उसने देखा। खनमन का कहीं पता न था! शायद किसी के घर जाकर छुप गया है। क्रोध से अपनी मुट्ठियाँ मींचकर रह गया वह!

क्रोध क्रमशः हलका हो चला।

टूटी स्लेट के दोनों टुकड़े वह कलेजे से लगाये रहा और दुःख भरी सूखी आँखों से वह देखता रहा। उन्हें अपने हाथों से धीरे-धीरे सहलाता

रहा। क्रमशः क्रोध शान्त हो गया। गलती यह महसूस की उसने। खनमन को पीटने से उसे क्या मिल जावेगा? उसके मारने से स्लेट नहीं जुड़ सकती है। अबोध बालक! उसने जानबूझकर तो फोड़ा नहीं। कौतुहलवश उठाई। नन्हीं अँगुलियों से न सम्भली। गिर गई। बेचारे का क्या दोष....?

दोष तो उसका है, जो वह बेखबर था। इतना अपने आप में खो गया कि खनमन के आने का उसे पता तक न लग सका। यदि वह सतर्क रहता तो खनमन उस स्लेट को उठाने की कोशिश करते वक्त डाँट दिया जाता। ओः कितना लापरवाह है वह! उसकी ही लापरवाही से यह हुआ है।

टप्पू अपना मन मसोस कर रह गया।

वह डर रहा था कि माँ उसकी फूटी स्लेट को देखेगी, तो उनका पारा और चढ़ जावेगा।

"खनमन ने फोड़ दी!"—वह कहेगा।

"तू कहाँ मर गया था?"

इसका वह क्या जवाब दे सकेगा....?

कुछ नहीं।

टप्पू सशङ्कित हो उठा। पण्डितजी ने उसे पढ़ने के खिलाफ भड़काया होगा। दूसरे कल स्कूल में जाकर नाम लिखाने के लिये राजी करना और बीच में यह कांड....जाने उसकी माँ का इन स्थितियों के मध्य क्या रूप न हो....!

टप्पू सोच रहा था।

सोच-सोचकर दुःखी हो रहा था।

दोपहर की छोटी परछाइयाँ बड़ी होती जा रही थीं। उसकी माँ के लौटने का समय हो रहा था। दो-ढाई बजे लौट आती और दो-तीन घंटे पुनः साफ-सफाई करने चली जाती! यह क्रम प्रारम्भ से था। सबका

यही क्रम था। बस्ती की औरतें जल्दी लौट आती थीं पर पुरुष देर से ही लौटते....प्रायः काफी रात गये इसलिए कि ताड़ीखानों और मादक-खानों के वह उजियारे थे।

टप्पू पल-पल माँ के आने की आहट ले रहा था।

जसोदा की आहट मिली। टप्पू चुपचाप उठकर खड़ा हो गया। फूटी हुई स्लेट उसके पास पड़ी हुई थी। वह सहम रहा था। पंडितजी ने उसके कान भरे होंगे। स्लेट फूट गई। काम भी उसने छोड़ दिया और यह सब हो जाने के बाद उससे स्कूल में जाकर नाम लिखाने के लिये कहने का मतलब है, आसमान अपने सर पर पटक लेना। सहमा-सहमा-सा टप्पू खड़ा था।

जसुदिया ने उसकी ओर देखा। आँखें तरेरीं। टप्पू घबड़ा गया।

"खनमन कहाँ है! तेरा पढ़ने में मन नहीं लग रहा है! खड़ा क्यों है?"

जसोदा की नजर स्लेट पर गई। देखा उसके दो टुकड़े हो गये थे। टप्पू के चेहरे का रङ्ग उड़ गया! अब नहीं तो अब माँ बरसने ही वाली हैं, पर जसोदा उसकी ओर एक बार देखकर गुर्राकर रह गई, जैसे क्रोधित होने पर जङ्गली जानवर गुर्राता है। जसोदा गुर्राकर रह गई। आगे उसने कुछ नहीं कहा और चुपचाप भीतर जाकर वह माँगकर लाई हुई रोटियाँ मिट्टी की हँड़िया में डालने लगी। खनमन के लिए और उसके लिये। जिसे भूख लगे इस हँड़िया में रोटियाँ पड़ी रहती थीं और निकालकर खा ली जातीं। विशेष रूप से वह खनमन के लिये थी। रोटी के सूखे-बासे टुकड़े पड़े रहते थे। खेलते-खेलते जब उसे भूख लगती तो वह इसी में से निकालकर ले जाता था।

जसोदा को इस तरह से खामोश देखकर टप्पू का मन और भयभीत हो उठा। वह समझ गया कि माँ के हृदय में क्रोध का भीषण ज्वाला-मुखी फूट रहा है और वह बाहर अपने प्रचण्ड तेज से उछलने ही वाला

है। मनुष्य जब अत्यधिक क्रोधित हो उठता है, तो वह चीखता चिल्लाता नहीं और न शब्द बाण छोड़ता है, बल्कि कुछ कर गुजरता है। टप्पू थर-थर काँप उठा कि माँ उसके हाथ पैर ही तोड़ देने के इरादे में है। मन में आ रहा था कि धीरे से उसे खिसक जाना चाहिये। इसी में टप्पू ने अपना हित देखा। माँ की निगाह बचा वह खिसकने लगा कि जसोदा चीख पड़ी—

"कहाँ जाता है ?"

शेरिनी-सी जसुदिया की दहाड़ सुनकर टप्पू के प्राण छूट गये। उसे काटो तो खून नहीं। पत्थर-सा खड़ा रह गया। रहे-सहे उसके होश उड़ गये। अब डंडे से उसकी मरम्मत होने ही वाली है। अपना अँचरा खाली कर जसुदिया ने कमर सीधी की।

कमर पर दोनों हाथ रखकर उसने कहा—"अरे ओ पढ़ैया की दुम ! तूने स्कूल में अपना नाम लिखाया कि नहीं या ऐसे ही एक सिलेट और एक किताब लेकर तू घूमता रहेगा और पढ़कर लाट साहब हो जावेगा !"

टप्पू कचकचा गया। जसुदिया की कही हुई यह बात समझकर भी वह न समझ सका। आँखें फाड़कर वह रह गया कि सच जसुदिया ने, उसकी माँ ने ही यह कहा है ! वह स्वप्न तो नहीं देखता है।

"तेरी समझ में आया...कि कान में शीशा जम गया है।"

"आँ....हाँ, मैं स्कूल गया था माँ ! बड़े पंडितजी बोले कि मेरा नाम वह नहीं लिखेंगे। तुम्हें चलना पड़ेगा।"

"तो ऐसे क्यों नहीं बकरता ! कल चली चलूँगी। दस बजे खुलता है स्कूल....?"

"हाँ, माँ !"

"तो मुझे ख्याल दिला देना। स्कूल में चलकर मैं तेरा नाम लिखा दूँगी !"

"माँ...."

टप्पू को विश्वास ही न हो रहा था कि वह अपनी माँ से बातें कर रहा है या किसी और से, अथवा स्वप्न देख रहा है! जो भी हो वह आशय समझ गया था और उसकी आँखों में आँसू थे। प्रेम के आँसू। खुशी के आँसू और हठात् आँखों से बहती अँसुवन की धार के बीच वह मुस्कुरा पड़ा।

टूटी स्लेट के ही टुकड़े पर सन्तोष कर टप्पू स्कूल गया। माँ भी उसके साथ थी और उसकी प्रसन्नता की सीमा न थी। खुशी-खुशी वह आगे-आगे स्कूल में गया और प्रधानाध्यापक के कक्ष में माँ को ले गया। जसुदिया उसके पीछे-पीछे उस कमरे में हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। बड़े पण्डितजी ने इस बार टप्पू को देखा तो चिहुँक पड़े! आश्चर्य से और कुछ क्रोध से उसकी ओर देखा। उसके साथ में एक अधेड़ स्त्री देखकर वह समझ गये कि कल टाल देने पर भी वह आज अपनी माँ को लेकर भरती होने आया है। वह विवश हो गये। इस बार उसे टाल देना असम्भव था।

"क्या है...."—बनते हुए पूछा उन्होंने।

"भरती होने आया हूँ!"—टप्पू बोला खुशी-खुशी—"कल आपने कहा था कि माँ को ले आऊँ तब भरती होगी। मैं माँ को ले आया हूँ। यह हैं मेरे साथ में। मुझे भरती कर लीजिए।"

"हुँ!"—आँखों पर चश्मा चढ़ाए कलम सँभाली—"चार आने पैसे लाये हो?"

"........"

टप्पू ने जसुदिया की ओर देखा। वह सकपका गया कि यदि माँ

पैसे न लाई हो अथवा पास में रखकर भी न दिये उसने तो कल पुनः आना पड़ेगा। आज वह भरती ही न हो सकेगा।

"लाई हूँ !"—बोली जसुदिया और उसने अपनी टेंट से चवन्नी निकालकर टप्पू के हाथ पर रख दी। टप्पू खिल उठा। वह चवन्नी उसने दूर से टेबिल पर गिरा दी।

"नाम, पता, बाप का नाम, उमर....?"

सारे प्रश्न एक साथ उठे और जसुदिया ने प्रत्येक का उत्तर दिया पर बाप का नाम बताते समय वह क्षण भर को हिचक गई पर तत्काल अपने को संयत कर बोली वह नाम बताकर—"बाप मर गया है।"

"हुँ !"

रजिस्टर की खाना पूरी हो जाने के पश्चात्। बड़े पण्डितजी ने चपरासी को बुलवाया। कहा—"इसे पहली में बिठा आओ। पण्डितजी को बता देना मेहतर है। एक कोने में बैठा दें !"

"मेहतर...!"—टप्पू के पास आता हुआ चपरासी चिहुँककर उसके पास से उछल कर हट गया। घृणा से नाक-भौं सिकोड़कर उसने कहा—"आ...."

टप्पू चपरासी के पीछे-पीछे चला गया और जसुदिया स्कूल के बाहर हो गई। अब टप्पू दिन भर स्कूल में रहा करेगा। अपनी टूटी स्लेट के टुकड़े और किताब दबाये हुये वह चपरासी के पीछे-पीछे चलता गया। एक कमरे में छोटे बड़े लड़के पढ़ रहे थे। चपरासी उसी कमरे में गया। एक पंडितजी हाथ में बेंत हिलाते हुए कुछ बता रहे थे। चपरासी को आया देख रुक गये।

"पंडितजी यह लड़का भरती भया है। मेहतर है !"

पंडितजी ने घूरकर टप्पू को देखा, जैसे वह आदमी नहीं, कोई जन्तु विशेष हो ! मन ही मन क्रोध से भर भी गये, पर चुप रह गये, जैसे कोई बात उन्हें याद आ गई हो और उस बात ने उन्हें विवश कर दिया हो।

"मेहतर है....?"

"हाँ !"

कक्षा के सारे लड़के अपनी कक्षा में एक मेहतर के लड़के को आया देख चिहुँक पड़े। उनमें कुछ खलबली-सी मच गई। टप्पू आश्चर्य से सबकी ओर देख रहा था। कुछ और लड़के उसे भी आश्चर्य से देख रहे थे। पण्डितजी ने अपने बेंत से टप्पू को कक्षा के एक कोने में बैठ जाने के लिए कहा जब कि दूसरे लड़के टाट की पट्टियों पर बैठे थे। टप्पू उस कोने में धरती पर बैठ गया। अपनी अवस्था के अनुसार तो वह उस कक्षा में सबसे बड़ा दीख रहा था पर एक कोने में धरती पर उसका स्थान था। विद्या के मन्दिर में भी यह भेद-भाव बरता जाता है। टप्पू ने अपने मन के उमड़ते हुए दुःख को सम्भाल लिया।

चपरासी चला गया।

पण्डितजी पढ़ाने लगे। टप्पू बड़े ही ध्यान से उनकी प्रत्येक बात का मनन करने लगा। उसे उन लड़कों की अपेक्षा अधिक कड़ी मेहनत करना है। यह उसने निश्चय कर लिया था! पण्डितजी अपना बेंत झलकाते हुए पढ़ा रहे थे और बीच-बीच में टप्पू की ओर क्रोध से देख भी उठते थे।

"तुम्हारा नाम क्या है?"

"टप्पू..."—टप्पू ने खड़े होकर बताया।

"टपुआ! अच्छा बैठ जा!"

पंडितजी ने इसलिए उसका नाम शीघ्र ही जान लेना आवश्यक समझा कि कक्षा में किताबों स्लेटों और पैन्सिलों के चोरी जाने की सभावना अधिक हो गई थी। पढ़ाते-पढ़ाते दोपहर की छुट्टी हुई। पंडितजी चले गये और तमाम लड़के होहल्ला करते हुए बाहर निकल गये। जिनके घर पास थे, वह खाना खाने दौड़ गये। जिनके घर दूर थे और उनमें से जो भोजन लाये थे, वह जहाँ जगह मिली बैठकर खाने लगे। शेष जो

पैसे लाये थे, बाहर सड़क पर दोना लेने लगे। कुछ स्कूल के मैदान में खेल-कूद में रम गए।

टप्पू....

वह बारामदे में आकर खड़ा हो गया। कभी यहाँ देखता। कभी वहाँ! मैदान में लड़के नाना प्रकार के खेल खेल रहे थे। ललचाई निगाहों से वह सब देख उठा। उसका कोई साथी न था। उसे बुलाने वाला भी कोई न था। टप्पू का मन भारी हो गया। अपनी टूटी स्लेट और किताब दबाकर वह मैदान से एक ओर एकान्त में जाने लगा। उसे निकलते देख लड़के चिल्ला पड़े।

"मेहतर है!"

"......."

"मेहतर है! अरे हट...."

"ऐ श्यमललवा हट बे...."

"......."

टप्पू स्वयं अपने को बचाता हुआ निकल गया। छोटे-छोटे बच्चों में उसने इस भावना को देखा कि वह सब उससे दूर ही भागते हैं। इन नन्हें-नन्हें बच्चों के मस्तिष्क में भी यह बात भरी हुई है कि उन्हें इससे दूर ही रहना चाहिये। उसका आदमी का रूप स्वीकार करते हुए भी वह उससे गन्दगी की तरह दूर ही रहना चाहते हैं। टप्पू शनैः-शनैः अभ्यस्त होता जा रहा था। इन सब घटनाओं को निरन्तर सहन करते हुए भी वह कभी-कभी कसक उठता था, पर अपनी कसक को वह दबाने का आदी भी पड़ गया था।

एक कोने में जाकर वह बैठ गया और पंडितजी की बताई हुई बातें याद करने लगा।

दुहरा चला।

उसे खूब पढ़ना है।

मन लगाकर पढ़ना है ।

गौरा ने कहा है ।

उसकी बात मानना है ।

टप्पू के मन में दृढ़ निश्चय जाग उठा ।

वह जुट गया ।

दुहरा चला । खूब कंठ कर चला पूरा पाठ । उसे अपनी कक्षा में सबसे मेधावी छात्र बनना है । इतनी बड़ी अवस्था में पहली में पढ़ना उसके लिए शोभनीय नहीं है ।

टप्पू खेल-कूद से दूर एकान्त में बैठा अपना पाठ दुहराता रहा । शिक्षक ने उसे जो कुछ समझाया था, उसे वह अच्छी तरह रट लेना चाहता था । उसे एक कोने में कक्षा में स्थान मिला है, तो क्या हुआ ? स्कूल की परीक्षा में उसका नाम एक कोने में नहीं रहना चाहिये । उसका नाम सबसे ऊपर रहना चाहिये । यही उसकी सबसे बड़ी विजय है । सफलता है । कक्षा में उसका मान नहीं है तो क्या हुआ ? परीक्षा के अवसर पर तो वह उन सबको दिखा देगा कि जिसका मान नहीं है, वही वास्तव में शिक्षा पाने का अधिकारी है ।

टप्पू के सामने अब कोई बाधा न थी । उसका मार्ग अवरुद्ध नहीं है । रास्ता खुल गया है और इस रास्ते पर बढ़कर उसे अपनी मंजिल को पा लेना है ।

सब कुछ जानते हुये और अपने मन के विरोध को समझते हुये भी जसुदिया ने टप्पू को स्कूल में भरती करा गया । वह कड़े मिजाज की स्त्री थी इस पर भी टप्पू के प्रति वह कड़ाई बरतते हुये भी अधिक देर तक कायम नहीं रह सकती थी । टप्पू उसके लाड़ला बेटा था । खनमन उसकी पीठ का होते हुये भी जसुदिया का उतना ममत्व न पा सका था, जितना कि टप्पू के पल्ले पड़ा था ।

उसे अपने उद्देश्य पर दृढ़ देख और घर से निकाल दिये जाने के बाद

भी उसे सड़क की पुलिया पर अपनी जिन्दगी बिताने के लिये कटिबद्ध देख जसुदिया का ममत्व और छलक पड़ा था। यह सत्य था और वह इस बात को भली-भाँति जानती भी थी कि आज तक उसके खानदान में अँगूठा ही चलता आया है। किसी में भी इतनी लियाकत न थी कि दो अक्षर भी वह लिख समझ सके। अपना जन्म-जात पेशा छोड़कर उसके परिवार में किसी लड़के का नाम स्कूल में लिखे जाना पहिली घटना थी, जो टप्पू के साथ हुई।

टप्पू के पिता के देहावसान से उसके मन को गहरी ठेस लगी। तभी से उसके जीवन का राग-रङ्ग उसके साथ चला गया। अब उसकी जिंदगी में रह ही क्या गया है? जब तक वह जिंदा है, तब तक उसके खाने कमाने का सिलसिला उसके पास है ही। यदि टप्पू इस पेशे को छोड़कर और दूसरी ओर जाना चाहता है, जहाँ कि उसके लिये परम्परा नहीं है तो जैसा वह करेगा वह वैसा पावेगा। उसे क्या? आज मरे कल दूसरा दिन! यही सोचकर उसने टप्पू का नाम स्कूल में लिखवा दिया।

टप्पू उसके प्यार की जीती-जागती स्मृति भी थी। मुहल्ले के अधिकांश लोग इस रहस्य को जानते थे, पर खुले आम कहने का साहस किसी में भी न था इसलिये कि उसके नाम के साथ एक ऐसे व्यक्ति का भी नाम जुड़ा हुआ था, जिसको प्रकट कर देने में सारी बात झूठी पड़ जाती। उस नाम को सुनकर लोग स्वप्न में भी विश्वास करने को तैयार नहीं हो सकते थे कि वह व्यक्ति टप्पू का पिता हो सकता है। असंभव! एक उच्च कुलीन विद्वान ब्राह्मण जिसकी समाज में इतनी प्रतिष्ठा है, टप्पू का पिता हो सकता है?

जसुदिया को जब कभी इस बात का ख्याल आता तो वह मन ही मन या अकेले होने पर प्रकट हँस पड़ती थी। भले ही लोग विश्वास न करें पर वह माँ होने के नाते जानती है कि टप्पू का पिता कौन है? उसके पहले-पहले प्यार का प्रतीक और शादी से पहले का पाप जो टप्पू

के बाप और उसके सामाजिक पति के सिर पर आया। उसकी अँधेरी रातों का पाप जब वह पिछले दरवाजे से उस महल से निवास में घुस जाया करती थी और भोर से पहले निकल जाती थी।

परोक्ष रूप से यह जसुदिया की एक सामाजिक विजय भी तो थी। वह लोग जो अपने आपको धर्म का ठेकेदार और शास्त्र की आज्ञा को पालन करने के लिये आदेशक मानते हैं और जो दिन के उजाले में उसकी परछाईं से भी दूर भागते हैं, उनके पतन का प्रत्यक्ष प्रमाण उसके पास है। जाति-पाँति के बंधनों की दुहाई देनेवाले खुद रात के अँधियारे में इन सब बंधनों को किस प्रकार से ताक में रख देते हैं, यह वह जानती है और उसने देखा भी है।

जब उमर ढल गई तो क्या हुआ, पर अपनी जवानी के दिन उसे आज भी इस तरह से याद है कि जैसे वह सब बातें। वह सब घटनायें कल की ही बात हों और एक आश्चर्य-जनक तरीके से केवल एक रात में ही उसकी जवानी खोकर ढल गई है।

कमर पर टोकरी और झाड़ू रखकर जब वह चलती तो गजब हो जाता था। जाने कितने उसे ठगे से देखा करते थे। और यह जानकर किन्तु हरिजन है, सब आह भरकर रह जाते थे। सूरज के उठने के पहिले ही जब वह सुबह ही सड़कों पर झाड़ू देने जाती, तो दूकान खोलनेवाले जाने कितने सेठ, पापवाले और कपड़ेवाले उसे रिझाने की कोशिशें किया करते थे। चुपके-चुपके भेंट में उसे नाना प्रकार की वस्तुयें देकर और भोर में आने का आमंत्रण देते थे। जसुदिया भी कम चंचल और चालाक न थी। उपहार की वस्तुयें वह स्वीकारकर सुबह जाना स्वीकार कर लेती थी। पर उस दिन वह जान-बूझकर और देर करके आती थी। लोगों को उसे जलाने में मजा आता था।

बात यहीं तक सीमित न थी। एक कदम और आगे थी। हेड जमादार उसपर विशेष रूप से मेहरबान था और जब यह तनख्वाह लेने

पहली की पहली म्युनिसिपिल दफ्तर में जाती तो 'पे क्लर्क' उसे तनख्वाह के साथ-साथ रुपये आठ आना ज्यादा ही दे देता था।

जसुदिया इन सब बातों को समझती थी। जानती थी। उसे अपने सौन्दर्य का भान था। वह जान-बूझकर हमेशा सज-धजकर रहती थी, बनी-ठनी रहती थी। जलनेवालों को और जलाया करती थी। जसुदिया किसी के हाथ अठारह बरस की हो जाने पर भी न आई। माता-पिता ने उसका विवाह ठीक कर दिया और विवाह के ठीक दो महीने पूर्व उसके जीवन में वह घटना घट गई, जिससे टप्पू का जन्म हुआ! उसकी उत्पत्ति एक उच्चकुलवंशीय के रक्त से सम्बन्धित होने के कारण टप्पू हरिजनों की बस्ती से मेल न रखता था। उसका संस्कार उसका रूप-रङ्ग भिन्न था और वह बड़े घर का लड़का जैसा लगता था।

दूसरे मुहल्ले में बदली हुई उसकी, जो उसकी बस्ती से कुछ ही दूरी पर था। उस मुहल्ले में एक बड़े प्रतिष्ठित ब्राह्मण शास्त्री महोदय रहते थे! त्रिपुंडधारी! उठते-बैठते सभी समय उनके मुँह से धर्म के वाक्य और ईश्वर के नाम निकला करते थे। सोने की जरी का पीत-शाल गले में रुद्राक्ष की माला और पैरों में खड़ाऊँ, उनके साथ सदा रहती थी।

जसुदिया इनके भी घर जाती थी। अपना काम करके चली जाती थी और कभी-कभी रोटी माँग लाने के लिये जाती थी। पंडितजी भरे-पूरे जवान थे। कर्मकांडी कट्टर ब्राह्मणों के पूर्ण लक्षणों से परिपूर्ण प्रतीत होते थे वह।

जसुदिया पर उनकी दृष्टि पड़ी।

धर्म-वाक्य और ईश्वर के नाम रुक गये। आश्चर्य से उसकी ओर देखकर पूछा—"तुम हरिजन हो?"

"जी हाँ!"

"शिव-शिव! यह तो महाअन्याय है!"—पर शास्त्रानुसार प्रायश्चित करने से मनुष्य शुद्ध भी हो जाता है!"

अठहत्तर

"क्या पंडितजी ?"

"कुछ नहीं ! तुम नितदिन आती हो ?"

"जी हाँ !"

"तुम्हें बराबर त्योहारी वगैरह तो मिल जाती ? न मिलती हो तो बताओ, मैं हिदायत कर दूँ !"

"मिलती है पण्डितजी !"

"तुम शूद्र हो । तुम्हारी सेवाओं को पुरस्कृत करना हमलोगों का कर्तव्य है !"

जसुदिया मुस्कुराकर चली आई । वह पण्डितजी के मन की हवा का रुख समझ गई थी कि वह किस ओर उड़े चले आ रहे हैं !

वह मन ही मन मुस्कुरा भी रही थी । साथ ही सहसा उसके मन को विश्वास भी न हो रहा था कि पण्डितजी भी उसकी ओर झुक सकते हैं ? कहाँ वह एक कट्टर-कर्मकांडी प्रतिष्ठित पण्डित और कहाँ वह शूद्र युवती ! लाख 'इन्दर की परी' है तो क्या हुआ । भला कोई अपना धर्म छोड़ सकता है !

मन में विश्वास न जम रहा था । विश्वास न होते हुये भी उसने इस बात को परख लेना ही ठीक समझा । इसका परिणाम यह हुआ कि रोज बनाव शृङ्गार करके वह सबसे पहिले पंडितजी के यहाँ ही काम करने के लिये जाने लगी । ठीक उस समय वह पहुँचती जब पण्डितजी भोर में आँगन के तुलसी के पौधे पास खड़े होकर पूजा किया करते थे ।

उसकी आहट पाते ही पण्डितजी का ध्यान भंग हो जाता थे और सब कुछ भूलकर वह उसकी ही ओर देखते वह जाते थे । अपनी ओर से उससे खुद उन्होंने बोलना शुरू कर दिया था ।

एक दिन बोले "तू तीज का व्रत नहीं रहेगी ?"

"रहूँगी पंडितजी ।"

"देख, जैसे मैं बताता हूँ, उस तरह से तू यह व्रत रह ! भगवान चाहेगा तो मुझे बड़ा भाग्यवान पति मिलेगा।"

"बताइये पण्डितजी।"

"भोर में तीन बजे के करीब तू मेरे पास आ और मेरे बताये मुताबिक तू इस तुलसी की पूजाकर। भगवान चाहेगा तो तेरी मनोकामना पूर्ण होगी।"

"आऊँगी ! जरूर आऊँगी।"—जसुदिया ने नयन थोड़े से तिरछेकर कहा।

जसुदिया के मन में शंका पक्की हो गई कि पंडितजी का मन डोल गया है पर उसे विश्वास न हो रहा था। विश्वास की दृष्टि के उद्देश्य से ही उसने भोर में तीन बजे आना स्वीकार कर दिया।

"दरवाजा खुला रहेगा। तू ठेलकर आ जाना। मैं यहीं रहूँगी पर शोर न करना !"

"........।"

जसुदिया ने स्वीकार कर लिया।

तीज के दूसरे दिन भोर में उसने सचमुच अपना शृंगारकर पंडितजी के घर की ओर कदम बढ़ा दिये। द्वार तो खुला ही था। ठेलकर भीतर घुस गई। सुबह का धुँधलका गाढ़ा था, पर वह देख सकती थी। उसने कि तुलसी के पास पण्डितजी खड़े थे। जसुदिया थोड़ा सहम गई।

"आ गई ?"

"हाँ।"

"बैठ जा।"

जसुदिया धरती पर बैठ गई। पंडितजी उसके पास और सरक आये। तुलसी के पत्ते और दो-चार फूल उसके हाथ में रख दिये—"ले, हाथ में रख हाथ जोड़ा प्रार्थना कर।"

"पंडितजी, आपने मुझे छू लिया ?"

पंडितजी मुस्कुराये मुस्कुराकर बोले—"तो क्या हुआ ?"

"आपका धरम भरस्ट हो गया पण्डितजी।"

"धर्म-कर्म की बातें तू छोड़ दे।"—पंडितजी उसके पास और सरक गये। जसुदिया एक कट्टर कर्मकांडी ब्राह्मण शास्त्रों की दुहाई देनेवाले का यह पतित रूप देखकर अपने औसान भूलगई। उसे कुछ विवेक रहा ही नहीं और पंडितजी ने उसकी इस स्थिति का लाभ उठाकर अपनी मनोकामना पूर्ण कर ली।

और जसुदिया को जब होश आया तो उसने अपने को लुटा पाया। उसका सर्वस्व लुट गया पर इस लूट का उसे विशेष दुःख न था। कम से कम इतना मूल्य चुकाकर वह पंडितों, शास्त्रियों और उनके शास्त्र की असलियत तो जान चुकी है। त्रिपुण्डधारियों के इस धर्म-कर्म में कितनी गहराई है, वह तो जान चुकी है।

पंडितजी का कथन अंशतः सत्य निकला। व्रत समाप्त होते ही वह प्रत्यक्ष पति पा गई। केवल एक ही आपत्ति यह रहा कि उसने पति अवैधानिक पाया। जसुदिया वे समाज का दुरंगा पहलू देखा। दिन में उसकी छाया से भी बिचकनेवाले को उसने रात की कालिख में अपने तलुवे सहलाते देखा।

वह प्रसन्न थी। खुश थी। अपने किये पर उसे दुःख न था। पश्चाताप न था।

इस सम्बन्ध का परिणाम टप्पू हुआ। टप्पू सुन्दर और फूल-सा था। बेटा पाकर जसुदिया की छाती फूल गई। खुशी से हरी हो गई यह रहस्य बहुतों पर विदित भी था। बड़े भोर में ही जसुदिया का देर तक पण्डितजी के घर में घुसे रहना आस-पास के लोगों का निगाहों से छुप न सका। फुसफुसाहट शुरू हो गई। आग फैलने में देर हो सकती है, पर ऐसी बातें फैल्ने में पल की भी देर नहीं लगती है। विदित तो सब पर हो गया, पर पण्डितजी की कर्मनिष्ठा के आगे ऐसी बात कहने का

साहस खुलेआम किसे हो सकता था ! बात दबे-दबे ही चलती रही। पुरानी हो जाने पर आज भी दबे-दबे ही चलती है। जसुदिया के सामने भी कोई इस बात को मुँह पर लाने का साहस न करता था।

टप्पू उसका प्यारा बेटा था। उसकी उत्पत्ति के रहस्य से परिचित होने के कारण, उसके भिन्न संस्कारों से उसको आश्चर्य न था। टप्पू यदि आदमी बनने के लिए, पढ़ने के लिए छटपटा रहा था, तो इससे उसे न आश्चर्य था, न दु:ख। कड़ाई से काम लेने के बाद भी जब उसने उसके विचारों में परिवर्तन न देखा तो उसने उसकी राह में रोड़ा न बनना ही उचित समझा।

टप्पू को उसने अपनी इच्छानुसार काम करने के लिए आजादी दे दी।

पण्डित हरिहरनाथ शास्त्री से अभी भी उसका व्यवहार है। टप्पू का यह रहस्य केवल उन दोनों तक ही विदित है। पंडितजी भी प्रौढ़ हो गये और जसुदिया भी वैसी न रही। शारीरिक-भूख द नों में से किसी एक के भी मन में न थी।

हरिहरनाथ शास्त्री से जब वह मिली तो उन्होंने उसकी ही बात छेड़ी।

"सुनने में आया है कि टप्पू ने अपना काम छोड़ दिया है और वह पढ़ना चाहता है ?"

"हाँ !"

"आज मुझसे वह बड़ी-बड़ी बातें कर रहा था। कह रहा था कि वह पढ़-लिखकर नौकरी करेगा। लेकिन उस मूर्ख को यह नहीं मालूम कि लोग उसको स्पर्श करना भी पाप समझते हैं। मैंने उसे बहुत ही समझाया है। तुम भी समझा देना जसोदा..."

जसोदा हँस पड़ी। बोली—"आखिर बेटा तो तुम्हारा ही है। पंडिताई का असर कहाँ जावेगा....!"

जसुदिया की इस बात पर पण्डितजी खिलखिलाकर हँस पड़े—

"वह तो है लेकिन तुम्हारे पेट से पैदा होने के कारण उसके माथे पर हरिजन की मुहर लग ही गई है। परम्परा का तो पालन करना ही होगा। भीतर ही भीतर आदमी जो चाहे वह कर सकता है, पर समाज के आगे तो परम्परा का पालन करना ही पड़ेगा!"

जसुदिया पर इसका कुछ भी प्रभाव न पड़ा। मुस्कुराते हुए वह बोली—"क्या हुआ पंडितजी! उसे कोई पूछे या न पूछे पर उसके मन की हबिस तो पूरी हो जावेगी। मैंने उसे बहुत समझाया, पर उसने मेरी एक न मानी। लिखने-पढ़ने के पीछे वह घर भी छोड़ने के लिए तैयार हो गया! यह सब आपका ही तो परभाव है। आखिर उसके बाप आप ही तो हैं!"

जसुदिया के मुँह से यह सुनते ही पण्डित हरिहरनाथ शास्त्री सकपका गये। जसुदिया का अब इतना मुँह खुल गया है! यह तो अच्छा नहीं है। उसे डाँट देना ही उन्होंने उचित समझा—"जसुदिया, ज्यादा बातें करना ठीक नहीं है। कुछ मान-मर्यादा का भी तुझे ख्याल है या नहीं..."

जसुदिया बेशरमी से खिलखिलाकर हँस पड़ी।

"क्या मैंने गलत कहा है?"

शास्त्रीजी कट कर बोले—"बात तो तू सही कह रही है, पर कहीं दो चार आदमियों के सामने यदि तू ऐसे ही कह देगी तब....तब का तुझे ख्याल है।"

"आप अपनी इज्जत के लिए डरते हैं और मैं नीच कौम हूँ मेरी इज्जत आपने ले ली है! है ना पण्डितजी! लेकिन दो-चार लोगों को मालूम हो जाने पर भी इसमें हर्ज क्या है?"

"जसुदिया...."

"पण्डितजी मेरी समझ में नहीं आता!"—वह बोली—"जब आप अपनी इज्जत के लिए इतना डरते हैं, तो आपने ऐसा क्यों किया....?"

हरिहरनाथ शास्त्री से इसके आगे कुछ कहते न बना। वह सकपका गये। निरुत्तर हो गये।

"यह कौन से शास्तर में लिखा है कि आप ऐसा करें। यह आपकी कौन-सी परम्परा है पण्डितजी? यदि आप मेरी जात होते और मैं पंडिताइन होती, उस समय ऐसा होता तब....तब...?"

"......"

"बाप रे! तब तो सारे शहर में बावेला मच जाता!"

"चुप भी रह! जा अपना काम कर। भाड़ में जा तू और तेरा टपुआ!"

पण्डितजी झल्लाकर अपनी खड़ाऊँ 'खट-खट' करते हुए चले गये। जाते-जाते जसुदिया ने कहा—"मेरी बात का बुरा मान गए! मैं तो मजाक कर रही थी पण्डितजी! हम लोग बुढ़ा चले तो क्या हुआ! दिल तो हमलोगों का बूढ़ा नहीं हुआ है!"

पण्डित हरिहरनाथ शास्त्री ने जसुदिया की यह बात सुनी-अनसुनी कर दी। वह चले गये। हँसती हुई वह भी लौट आई। पण्डितजी की बातों का उसके मन पर कोई भी प्रभाव न पड़ा। टप्पू की पढ़ने की ओर अटूट लगन देखकर वह उसे कठोरता से मोड़ना नहीं चाहती थी। एक बार कठोरता का प्रयोग कर वह देख चुकी थी कि टप्पू का उस पर तनिक भी प्रभाव न पड़ा। पढ़ने-लिखने के पीछे उसने घर भी छोड़ दिया। अपने प्यारे बेटे को वह छोड़ नहीं सकती थी।

जसुदिया ने टप्पू की राह में बाधा न देना ही उचित समझा। पढ़-लिखकर वह बने या बिगड़े उसे क्या करना है! वह पढ़ने-लिखने का इच्छुक है। अपनी इस इच्छा को पूरा कर ले वह! इसी प्रेरणा से उसने टप्पू का नाम स्कूल में लिखा दिया।

टप्पू की पीठ का खनमन है ही। उसकी रुचियाँ टप्पू जैसी नहीं

हैं। टप्पू के हाथ से निकल जाने पर जब उसके हाथ पैर न चलेंगे, तो खनमन उसे दो रोटी दे ही देगा !

टप्पू की ओर से जसुदिया ने बिल्कुल लापरवाह हो जाना ही ठीक समझा।

अपने काम से लौटी वह तो शाम को सरवन भी उसके साथ था। उस समय वह ताड़ी के नशे में न था। ताड़ीखाने की ओर जा रहा था। बीच में ही जसुदिया से मुलाकात हो गई। उसे अपनी स्त्री की बात याद आ गई, जिसके लिए वह दो दिन से रोज उसे उलाहना दे रही थी। झगड़ा कर रही थी। उसने भी अपनी पत्नी की बात की गम्भीरता को महसूस किया। लच्छो जवान हो गई है। उसका विवाह अब हो ही जाना चाहिये।

सरवन टप्पू को ही अपने दामाद के रूप में सर्वथा उपयुक्त समझता था जबकि उसकी नई पत्नी इसके विपरीत थी। यह जानते हुए भी सरवन तनिक भी विचलित न था। सब मामलों में वह अपनी हुकूमत करना जानता था। वह जानता था कि इस विषय में नई पत्नी द्वारा अधिक विरोध होने पर उसे दो डण्डे लगाकर रास्ते पर लाया जा सकता है।

"टपुआ जवान हो गया है जसोदा !"—सरवन ने बात छेड़ी—"तुम्हें उसकी कुछ फिकिर है या नहीं ?"

"मुझे फिकिर नहीं है !"—जसुदिया ने लापरवाही से उत्तर दिया।

"लड़का जवान हो गया है !"

"तो मैं क्या करूँ ?"

सरवन ने आश्चर्य से कहा—"तुम्हें उसके शादी-ब्याह की कुछ भी फिकिर नहीं है क्या....?"

"लड़का हाथ से बेहाथ हो गया है, सरवन भैया !"

"भला ऐसा कहीं हो सकता है ! तुमने उसे खूब लाड़-प्यार किया है, इसलिए तुम्हारी बात नहीं मानता होगा। पर हाथ से बेहाथ कैसे हो सकता है ! टप्पू अच्छा लड़का है। मैं उसे जानता हूँ !"

"जानते हो, उसने काम छोड़ दिया है और आजकल स्कूल में पढ़ने के लिए भर्ती हो गया है !"

"बस इतनी-सी बात !"

"बात तो इतनी-सी ही है लेकिन आगे के लिए अच्छी बात नहीं है। आज जब उसका यह हाल है, तो आगे चलकर क्या हाल होगा, राम जाने !"

"खैर, ऐसा तो चलता ही रहता है। लड़का चाहे कितना भी बिगड़ क्यों न जावे ! माँ-बाप हमेशा उसकी भलाई ही चाहते हैं। मेरी बात अगर मानो तो उसके हाथ-पाँव में बेड़ियाँ डाल दो। जवान हो ही गया है। घर-गृहस्थी का भार सर पर पड़ते ही उसे अक्ल आ जावेगी और वह ठीक हो जावेगा। अपने रास्ते पर आकर खुद दो रोटियाँ कमाने के फेर में पड़ जावेगा !"

"बात तो ठीक कहते हो !"—फुसफुसाकर जसुदिया ने कमर पर रक्खी टोकरी को सँभालते हुए कहा—"कौन जाने ! इसमें उसकी मरजी क्या है ?"

"यह शादी-ब्याह का मामला है !"—बोला सरवन—"इसमें लड़के लड़की की इच्छा से नहीं, बल्कि माँ-बाप की मरजी से काम किया जाता है !"

"......"

"इधर लच्छो भी बड़ी हो गई है। उसका भार मेरे सर पर है। उसकी शादी की फिराक में हूँ !"

जसुदिया ने सरवन की ओर अर्थ भरी दृष्टि से देखा।

"लेकिन तुम्हारा ख्याल आ गया। इतने बरस से हमलोग इस

मुहल्ले में हैं। आज तक कोई नाता नहीं जुड़ा। मैं चाहता हूँ कि हम आपस में समधी-समधिन का नाता जोड़ लेवें।

सरवन की इस बात पर जसुदियो खिलखिलाकर हँस पड़ी—"रिस्ता तो बड़े मजे का जोड़ रहे हो, पर तुम्हीं उस टपुआ को समझाकर राजी कर लो। मैं राजी ही हूँ। अच्छा है। लच्छो मेरी बहू बनकर आये इससे बड़ी खुशी की बात मेरे लिये और क्या हो सकती है। मुझे मंजूर है। तुम टपुआ को राजी कर लो।"

"अच्छा।" सरवन बोला—"मैं देखूँगा। शादी ब्याह तो संजोग से ही होते हैं। टप्पू और लच्छो का संयोग होगा तो अपने ही सब ठीक हो जावेगा। दोनों एक दूसरे के जाने देखे भी हैं।"

"........."

ताड़ीखाने के लिये जाने का रास्ता आ गया। अपनी जेब टटोलता हुआ सरवन ताड़ीखाने की तरफ बढ़ गया। जसुदिया भी मुस्कुराकर उससे अलग हो, अपनी बस्ती के रास्ते पर बढ़ गई। उसका मन पुलक उठा। कुछ खुशी और आश्चर्य के सम्मिलित थे।

देखते-देखते उसकी जिन्दगी का कितना लम्बा समय बीत गया है। एक दिन वह जवान थी और आज वह सास होने जा रही है। टप्पू जवान हो गया है और उसकी दुलहिन आवेगी। जसुदिया का मन एक विचित्र खुशी से भर गया। और टप्पू की वह औरत उसकी बहू होगी! बहू! सचमुच में बहू के स्मरण मात्र से जसुदिया का मन बहू का मुँह देखने के लिए ललच उठा।

अगर टप्पू विवाह के लिए तैयार हो जाता है, तो इसकी इस आकांक्षा के साकार होने में देर न लगेगी और यदि टप्पू न तैयार हुआ तो शायद ही वह बहू का मुँह देख सके। किसी औरत को बहू के रूप में सम्बोधित कर सके!

जसुदिया ने एक लम्बी साँस लेकर अपनी टपरिया में प्रवेश किया।

झाड़ू और टोकरी एक तरफ डाल, वह भीतर गई। मैला पुराना शीशा उसने पोंछकर अपना मुँह देखा।

कलतक जो चेहरा गजब का खूबसूरत था, जिसकी लाली निराली थी, जो आँखें कल तक बड़ी कटीली थीं, जिन पर कि हरिहरनाथ शास्त्री जैसे कर्मकांडी कट्टर ब्राह्मण का संयम डोल उठता था, अब भीतर धँस गई हैं। चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गई हैं। पोपला मुँह हो गया है! जसुदिया आश्चर्य से अपने इस परिवर्तन को देखती रही कुछ देरतक और जब मन दुःख से भर गया, तो एक लम्बी दर्द भरी साँस लेकर, उसने शीशा यथा-स्थान रख दिया।

समय भागता जाता है!

मनुष्य में उसके साथ-साथ परिवर्तन होता जाता है।

समय के साथ-साथ सब कुछ बदलता जाता है। जो कल जवान थे, आज बूढ़े हैं और जो कल बच्चे थे, आज जवान हैं। जो आज बूढ़े हैं, वह कल मर जावेंगे।

मनुष्य समय के साथ-साथ बदलता रहता है। दुनिया बदलती रहती है और उसके साथ-साथ मनुष्य का समाज उसके यम-नियम बद-लते रहते हैं।

स्कूल की छुट्टी होने पर टप्पू घर आया। वह कुछ सहमा-सा था; डरा हुआ-सा था। उसे आया देख जसुदिया ने प्यार से उसके बालों को सहलाकर बड़े ही मृदुस्वर में कहा—"जा बेटा! पण्डितजी के यहाँ से रोटी माँग ला। दिन भर स्कूल में टँगा रहा है तू। भूख लगी होगी! जा बेटा! ले आ! खा ले...."

माँ का प्यार पाकर टप्पू का चेहरा खिल गया। वह स्लेट किताब रखकर पण्डित हरिहरनाथ शास्त्री के घर की ओर भाग गया!

उसके मन में अपार खुशी थी। माँ का पूरा स्नेह उसे मिल गया है और अब वह पूर्ण स्वतन्त्र है। माँ का वरदहस्त उसके माथे है। अब

सफलता को बाँध लेने में उसे कोई दिक्कत न होगी। वह उसे कसकर बाँध लेगा।

पण्डितजी के घर के पास पहुँचते ही उसका मन उत्सुकता से और भर गया। शाम हो गई है और अबतक गौरा भी स्कूल से आ गई होगी! गौरा....पण्डितजी के व्यवधान से वह उससे मिल नहीं सका है! यदि इस समय पंडितजी घर में न हों, तो अच्छा हो। पण्डितजी के घर में न होने की उसे पूरी उम्मीद थी। सायंकाल प्रायः वह घूमने अथवा अपने जजमानों से मिलने चले जाया करते थे।

टप्पू जल्दी-जल्दी आया। बारामदे में आकर उसने आवाज दी। वह किसी के आने की साँस रोककर प्रतीक्षा करने लगा। उसका हृदय धड़क रहा था। मन भी आशङ्का से भरा हुआ था। कहीं पण्डितजी की खड़ाऊँ की 'खट-खट' आवाज उसे सुनाई न पड़ जावे....टप्पू की साँस रुक गई।

उसकी यह आशा निर्मूल निकली। पण्डितजी की खड़ाउओं की खट-खट की आवाज के बदले में उसने मीठी-सी हलकी पदचाप सुनी। आँखें उठाकर देखा, तो उसका सारा चेहरा मुस्कुरा पड़ा। उसके सामने उसकी चिरप्रतीक्षित गौरा ही खड़ी थी।

हर्षावेग से टप्पू इतना भर गया कि वह कुछ कह न सका।

गौरा ने ही शुरुआत की—"मन लगाकर पढ़ रहे हो?"

"जी हाँ!"—टप्पू ने साहस बटोरकर कहा—"खूब मन लगाकर पढ़ रहा हूँ। मैंने स्कूल में अपना नाम भी लिखा लिया है।"

"स्कूल में....स्कूल जाने लगे हो टप्पू...?"

"हाँ, आज से ही शुरू किया है। माँ ने मेरा नाम स्कूल में लिखा दिया है। मैं रोज स्कूल जाऊँगा। खूब मन लगाकर पढ़ूँगा। सिलेट पर जो लिखा था, वह मैंने पढ़वा लिया था!"

"वाह...."

नवासी

"पर...."—टप्पू उदास हो गया। आगे वह कुछ न कह सका। वह रुक गया।

"क्या हुआ ?"

"......"

"बताओ टप्पू क्या बात है....?"

"वह सिलेट....सिलेट..."

"हाँ, हाँ, स्लेट...जो मैंने दी थी। क्या हुआ ? फूट गई....?"

"जी हाँ!"—टप्पू सहमकर बोला—"खनमन ने पटककर फोड़ दी। उसके दो टुकड़े हो गये....लेकिन अभी काम चलता है। मैं उसमें लिख लेता हूँ...काम चलता है...."

"कोई बात नहीं!"—गौरा मुस्कुराई—"फूट गई तो फूट जाने दो। तुम उसके लिए इतना डरते क्यों हो ? मैं भी आठ-दस स्लेट फोड़ चुकी हूँ, पर हमेशा सावधानी से काम लेना चाहिये, टप्पू...."

"जी हाँ! गलती मेरी थी। सिलेट मैंने नीचे रख दी थी। खनमन खेलते-खेलते आया और उसे उठाने लगा। वह, जरा-सा बच्चा। उठा तो ली, पर भार सँभाल न सका। उसके हाथ से छूटकर गिर गई। दो टुकड़े हो गये!"

"कोई बात नहीं! मैं तुम्हें दूसरी दे दूँगी। मुझे बहुत खुशी है कि तुमने स्कूल में अपना नाम लिखवा लिया है। पढ़ो! खूब मन लगा कर पढ़ो!"

"........"

"मैं तुम्हारी हर समय मदद करूँगी....लेकिन टप्पू, यह तो बताओ तुम्हारी माँ, क्या तुम्हारे ऊपर बिल्कुल नाराज नहीं है ? मुझे ताज्जुब होता है कि उसने तुम्हें स्कूल में कैसे भरती करवा दिया ?"

"मैंने हठ किया था!"—बताया टप्पू ने—"पढ़ने-लिखने के पीछे मैं घर भी छोड़ने को तैयार हो गया था। रात में चला भी आया

था और सड़क की पुलिया पर लेट भी गया था। माँ आई और मुझे मनाकर ले गईं!"

"शाबास! यह तुमने बहुत अच्छा किया। इस बात की गाँठ बाँध लो टप्पू। चाहे कुछ भी क्यों न हो, तुम पढ़ना-लिखना बीच में न छोड़ना। इस कठिन रास्ते को तुम पार कर लोगे, तो आगे सब कुछ तुम्हारे लिए आसान हो जावेगा!"

"मैं ऐसा ही करूँगा!"

"......"

गौरा ऊपर गई। टप्पू उसे ऊपर जाते हुए एकटक देखता रहा। गौरा की हर चाल, हर अदा, हर बात उसे बड़ी ही लुभावनी लगती। उसका चेहरा, उसका नाक-नक्शा सब कुछ उसे बड़ा प्यारा लगता और वह लगातार उसे जाने कब तक एकटक देखते रहने के लिए ललच उठता, उस समय तक, जब तक कि वह बेहोश होकर न गिर जावे, वह उसे एकटक देखते ही रहना चाहता था।

अपनी इस आराध्य-देवी को वह सदा अपनी निगाहों के सामने देखने के लिये उत्सुक था, पर वह बड़ा विवश था। भला कहीं ऐसा हो सकता है! एक उच्चकुलीय ब्राह्मण के परिवार में एक मेहतर अधिक देर तक ठहर सकता है!

गौरा ऊपर से आई। एक पत्तल में वह टप्पू के लिए दाल-भात-रोटी ले आई थी।

"लो! यहीं बैठकर खा लो!"

"घर ले जाऊँगा!"

"अरे, यहीं बैठकर खा ले ना...."

"........"

टप्पू सिर झुकाकर रह गया।

गौरा ने दिल को छेद जानेवाली सुकुमार हँसी हँसकर कहा—"मालूम पड़ता है, तुझे शर्म लगती है !"

"हाँ...."—टप्पू ने बहुत ही धीरे से कहा। कौन जाने गौरा उसे सुन पाई या नहीं !

"घर लेजा..."—बोली गौरा—"अब तू स्कूल जाने लगा है। शाम के शाम इस तरफ आ जाया कर ! मैंने महाराजिन को कह दिया है। वह रोज तुझे खाना दे जाया करेगी !"

"........"

गौरा के असीम अहसानों से टप्पू दबता जा रहा था। उसके अहसान देखकर टप्पू यह निर्णय नहीं कर पा रहा था कि गौरा वास्तव में है क्या ? क्या वह देवी है, जो केवल उसका कल्याण करने के लिए अवतरित हुई है, अथवा वह एक मानवी मात्र है, जिसके हृदय में उसके लिए स्नेह का अगाध लहराता हुआ दरिया है ?

सावधानी से, पत्तल दोनों हाथों पर उठाकर टप्पू चल पड़ा। लौट-लौटकर वह कुछ दूर गौरा को देखता गया और बारामदे में खड़ी गौरा भी उसकी ओर उस समय तक देखती रही, जब तक कि वह आँखों के आगे से ओझल नहीं हो गया।

ताड़ी के नशे में चूर सरवन अँधेरा होने पर बस्ती में लौटकर आया। नशे में चूर रहने पर भी उसे जसुदिया के साथ हुई अपनी वार्ता का पूरा ध्यान था। वह अपने घर न गया और न उसने अपनी नई अधेड़ पत्नी को गालियाँ ही दीं। न ही लच्छो को पुकारा, बल्कि सीधा जसुदिया के घर में आया।

बानवे

परछी में ही डिबरी के उजाले में टप्पू अपनी किताब खोले और उसके पन्ने में ही सिर गड़ाये पढ़ रहा था। उसे देखते ही सरवन की आँखें प्रसन्नता से खिल उठीं। नशे की हकलाती आवाज में उसने टप्पू को पुकारा।

टप्पू ने चौंककर नशे में झूमते सरवन को देखा।

किताब बंदकर वह उठ खड़ा हुआ।

"क्या है, चाचा?"

"तुमसे एक काम है, बेटा..."

"......."

सरवन की आवाज सुनकर जसुदिया भी निकल आई। सरवन को दरवाजे पर देख उसने मुस्कराकर कहा—"सबेरे आये होते तो अच्छा रहता...ऐसे में बात करना क्या ठीक है?"

सरवन हँसा! खिलखिलाकर हँसा। ताली बजाकर हँसा—"तो तुम मुझे नशे में समझती हो। हः हः हः हः हअः अः अः! अरे टप्पू की माँ, दुनियाँ के सब बड़े-बड़े काम नशा पीकर ही किये जाते हैं! तुम तो अखबार सुनती ही नहीं हो। अपने महल्ले की चाय की दूकान में एक मास्टर साहब को कहते मैंने सुना था कि दुनिया के सबसे बड़े आदमी चरचल और नेहरूजी भी नशा करके काम करते हैं। फ़रक इतना ही है कि वह लोग अंग्रेजी नशा करते हैं और हम लोग देसी!"

"......."

जसुदिया चुप हो गई।

"बेटा टप्पू! तू मेरे साथ चल। एक काम है!"

"क्या काम है, चाचा?"

"तू चल तो सही...."

सरवन टप्पू को खींचकर ले गया। टप्पू ने भी विरोध न किया और सरवन के साथ खिंचा चला गया। उसने कोई विरोध न किया।

तिरानवे

सरवन उसे अपने साथ घसीटकर मैदान में ले गया! अँधेरे में पाँव से टटोला उसने और जब भरोसा हो गया कि वह जगह बैठने लायक है तो वह वहाँ बैठ गया। टप्पू का भी हाथ पकड़कर उसे बैठा लिया।

"जानता है, मेरा तेरा रिश्ता क्या है?"

"तुम मेरे चाचा हो?"—टप्पू ने सरलता से कहा।

"नहीं!"—सरवन ने हँसते हुए कहा—"यह तो मुँह-बोला रिश्ता है! इसे रिश्ता नहीं कहा जा सकता है और चाचा का रिश्ता तो बहुत से लोग मजाक में भी जोड़ लेते हैं। नहीं! नहीं! यह सब नहीं!! हमारे तुम्हारे बीच में कोई ऐसा रिश्ता बनना चाहिए, जो मजबूत हो और सचमुच का रिश्ता हो!"

सरवन की इस लम्बी-चौड़ी बात का टप्पू कोई भी मतलब न निकाल सका। समझने का प्रयास करता हुआ, वह उसके मुँह की ओर ताकने लगा।

"मेरा कहना ठीक है या गलत....? तुम्हीं बताओ? देखो, यह मत समझ लेना कि मैं नशे में हूँ। राम जानता है मैं होश-हवास में हूँ और फिर कहीं छँटाक-आध पाव से हम लोगों को नशा चढ़ता है। दो बोतल यों ही हजमकर जानेवाले लोगों में से हैं, हमलोग। तेरे से भी कम उमर के थे हम, तब से पीना शुरू किया है। हमलोग घुटे हुए खिलाड़ी हैं। बता मेरी बात तुझे जँची या नहीं!"

"बात तो ठीक कहते हो, चाचा!"

"हूँ आँ!"—सरवन प्रसन्नता से खिल उठा—"अब आये रस्ते पर। देख, अब मैं मतलब की बात बताता हूँ। तू आदमी है। आदमी जब जवान हो जाता है, तो उसे औरत की लगाम से बाँध देना चाहिए। बिना लगाम का जवान आदमी, बिना लगाम के घोड़े की तरह खतरनाक होता है। समझा! तुझे भी इसी लगाम से बाँध देने की बात है यह...."

"शादी-ब्याह !"—अब टप्पू की समझ में आया।

"हाँ ! तेरे लिए एक लड़की है। तेरी जानी-पहिचानी है !"

"पर...."

"मैं जानता हूँ। शुरू शुरू में सब लड़के शादी की बात चलने पर इसी तरह से इन्कार कर दिया करते हैं, पर भीतर ही भीतर उनका मन तरसता है...."—सरवन खिलखिलाकर हँस पड़ा—"मैं समझता हूँ ये सब ! एक दिन मैं भी जवान था। अच्छा ! बात रही पक्की...."

"ऐसा न कहो चाचा...."—टप्पू ने गम्भीर होकर कहा—"मैं दिल से इन्कार कर रहा हूँ। कोई बात तो तुमसे छिपी नहीं है। मैं स्कूल में पढ़ रहा हूँ। अभी कैसे ब्याह कर लूँ। पढ़-लिखकर जब मैं नौकरी करने लगूँगा तब खुद ही घर बसा लूँगा।"

सरवन की सारी खुशियाँ उड़ गईं। उसके चेहरे का रङ्ग उड़ गया।

"मैं लच्छो की बात कह रहा था !"—सरवन ने साहसकर आखिरी तीर छोड़ा।

"लच्छो....?"

"हाँ !"

टप्पू खामोश रह गया।

"......."

"......"

दोनों कुछ क्षण खामोश हो, एक दूसरे के भाव समझने का प्रयास करने लगे। टप्पू के हृदय की धड़कनें बढ़ गई थीं। उसे यह आशा न थी कि लच्छो की शादी का प्रस्ताव उसके ही पास आवेगा।

सरवन ने साहस बटोरा—"बेटा, मेरी इज्जत तुम्हारे हाथों है। चाहे राखो या मिटाओ ! अब मैंने साफ-साफ तुमसे बता दिया। तुम्हारे सिवाय और कोई लड़का मुझे नज़र नहीं आता है, जिसके हाथ मैं विश्वास

से अपनी बिटिया को सौंप सकूँ। तुम जानते हो टप्पू! सब जानते हो। तुमसे कुछ छुपा ही क्या है! उसकी माँ मर गई। मेरे बड़े दुःख की एक ही लड़की है यह!"

सरवन दुःख से इतना भर आया कि आगे वह कुछ कह न सका। उसके नयनकोर भर आये।

"........"

"तुम्हारी बात भी ठीक है टप्पू! पर काम ऐसा करो, जिससे कि न मेरा दिल टूटे और तुम्हें भी तकलीफ न हो...."—सरवन ने दूर की बात सोचकर कहा—"फलदान ले लो। लड़की छेंक लो। ब्याह तुम चार बरस बाद भी करो, तो कोई बात नहीं। पक्की हो जावे। कम से कम मैं लड़की की चिन्ता से तो छुट्टी पा सकूँ। मैं तुम्हारे हाथ जोड़ता हूँ टप्पू! मेरी इस एक ही लड़की को और कहीं नरक में न गिरने दो...."

"........"

"बोलो टप्पू...."

"........"

"कहो...?"

"मेरे इतने दिन के स्नेह का क्या मुझे यही मूल्य मिलेगा कि मैं तुम्हारे सामने हाथ पसारूँ और खाली ही जाऊँ!"

"टप्पू...."

"........"

टप्पू के हृदय पर उसकी एक-एक बात का प्रभाव पड़ रहा था। सरवन का करुण चेहरा, उसके रुँधे हुए गले से निकले शब्द-शब्द, उसकी दीन वाणी, टप्पू के हृदय पर चोट कर गई। वह अपने को संयत न कर सका। डोल गया वह। उसकी पढ़ाई में कोई व्यवधान नहीं पड़ता है। आज नहीं, आज से चार बरस बाद ही सही....लेकिन टप्पू का मन पुनः बदला...नहीं, नहीं, उसे इस बन्धन में नहीं पड़ना चाहिए। लेकिन

लच्छो....लच्छो और उसकी जिन्दगी....लच्छो की जिन्दगी का सवाल है यह....और सरवन उसके आगे हाथ पसारकर भीख माँग रहा है !

उसका यह अनुरोध !

उसकी यह प्रार्थना....

उसकी यह भिक्षा...

क्या वह ठुकरा दे...? नहीं ! उसका हृदय इतना कठोर नहीं है। वह पत्थर नहीं है। आदमी है और आदमी का कर्तव्य है कि वह आदमी के काम आवे...

"बोलो टप्पू...?

"चाचा, तुम कहते हो तो...."

"मान लो बेटा..."

"अच्छा चाचा ! पर मैं उस समय ही ब्याह करूँगा, जब कि मैं अपने रास्ते को पा लूँगा...."

"हाँ, हाँ बेटा ! लड़की छेंक लो। ब्याह चाहे जब करना..."

"........"

"मंजूर है ना...."—सरवन की आँखों में खुशी की चमक थी।

"हाँ !"

"वाह ! मुझे तुमसे यही उम्मीद थी।"—टप्पू को अपने कलेजे से लगा लिया सरवन ने। खुशी के आँसू उसकी आँखों में आ गये।

"........"

"रही तय..."—वह खुशी से उछलकर खड़ा हो गया—"मैं अभी इन्तजाम करता हूँ। छिरिया साला ढफला बजा देगा।"

"........"

टप्पू ठगा-सा रह गया। पल भर में ही....क्या सरवन को तनिक भी धीरज नहीं है, पर नशे की धुन में सरवन को ध्यान ही क्या था और

हरिजनों में इस तरह की घटनाओं का घट जाना स्वाभाविक ही माना जाता है।

"मैं जसुदिया से सब कह देता हूँ! तू मेरे घर चल! अभी बस्ती के लोगों को इकट्ठाकर नारियल बताशा और गैस लिये आता हूँ...."

सरबन टप्पू के पास से आगे बढ़ गया। अंधकार में उसकी आकृति छिप गई। उसके जाने के पश्चात ही टप्पू का शरीर सिहर उठा। उसके तार-तार हिल गये। गौरा की मूर्ति ने उसकी आँखों के आगे उभर कर उसको हिला दिया।

गौरा....गौरा से पूछा नहीं है उसने। बिना उसकी राय के उसने स्वीकृति दे दी है। उसे मालूम होगा तो उसके मन पर ठेस न लगेगी....? उसके हृदय पर इसकी क्या प्रतिक्रिया न होगी? गौरा....टप्पू काँप उठा। यह उसने अच्छा नहीं किया है। उसे ऐसा नहीं करना चाहिए था....? ....लेकिन अब हो ही क्या सकता है? उसने स्वीकृति दे दी है। दी हुई स्वीकृति अब वापिस नहीं हो सकती है। ऐसा करने का अर्थ है, किसी की जिन्दगी के साथ खिलवाड़ करना....? शादी-ब्याह के मामले में बात एक ही बार होती है। हाँ या नहीं। हाँ कहकर नहीं, नहीं किया जा सकता है?

टप्पू का मन पश्चाताप से भर गया था। अपने किए पर अफसोस करता हुआ टप्पू लौटकर आया। उसे देखते ही जसुदिया दौड़ी और अपनी बाहों में उसने टप्पू को समेट लिया। उसके मस्तक पर प्रसन्नता से चुम्बन अंकित कर वह बोली—"बेटा तूने मंजूर कर लिया। मेरी बहुत दिनों की साध पूरी कर दी....वाह....आज सचमुच मैं तेरे ऊपर बहुत खुश हूँ तू मेरा बड़ा समझदार बेटा है!"

"........"

"चल! नये कपड़े पहन ले। आज तू अपने हाथ से मेरा मुँह मीठा करना!"

टप्पू को माँ की भी बात माननी ही पड़ी। नया कुरता, नई धोती पहिनना पड़ी। पहिनकर खड़ा हुआ तो खिल गया। माँ ने बेटे को नजर न लग जाय, इस उद्देश्य से मस्तक के बायें छोर पर काजल का टीका लगा दिया। स्वतः अपना शृङ्गार कर वह बेटे को लेकर सरवन के घर गई।

टप्पू ने वहाँ जाकर आश्चर्य से देखा कि गैस जगमगा रहा है और बूढ़ा हिरिया खुशी से कुप्पा होकर डफली झूम-झूमकर बजा रहा है।

ढप ढप ढप ढप ढब ढब ढब ढब ढब....ढप...

बस्ती के छोटे बच्चे, औरतें, बूढ़े और जवान सभी सरवन के आँगन में थे। टप्पू को आँगन में चौक पूरकर रखे हुये पीढ़े पर बैठाया गया। एक पीढ़ा और उसके पास था। उस पर जसुदिया गर्व से बैठ गई।

"अरे, जल्दी करो ! लड़की को लाओ"—सुना टप्पू ने सरवन चीख रहा था।

देखते-देखते लच्छो अपनी माँ और मुहल्ले की लड़कियों के साथ आई। उसके दोनों हाथ बाहर थे। शेष सारा शरीर ढँका हुआ था। उसके दोनों हाथों में एक नारियल, बताशे और चाँदी के रुपये रखे हुए थे। लच्छो, जिसे वह सदा खुले मुँह देखता था, अब उसके सामने सिर से पैर तक साड़ी में लिपटी हुई एक गुड़िया-सी थी।

लच्छो पास आई।

पण्डित भी वहीं था। वह मंत्र पढ़ चला। लच्छो ने दोनों हाथ बढ़ाकर अपने हाथों की सामग्री टप्पू के हाथों पर रख दी और पण्डित के आदेशानुसार टप्पू ने उन सामग्रियों को आँचल में डाल दिया।

"फलदान समारोह" हो गया।

बताशे बँटे। मिठाइयाँ बँटी। डफला खूब जोर-जोर से बजा और सरवन ने जसुदिया के साथ छेड़खानी कर समधिन का नाता जोड़ा। ताड़ी भी

बटी। पी और पिलाई गई। सब के जाने के बाद टप्पू के लिए देशी शराब की एक बोतल खोलकर सरवन ने आगे रखी।

"नहीं! मैं नहीं पीता।"

"पर आज के दिन पिया जाता है। यह देवी का परसाद है। इसे ग्रहण करना ही पड़ेगा!"

"मैं माथे से लगाय लेता हूँ, पर पियूँगा नहीं।"

टप्पू के दृढ़ निश्चय के आगे सरबन की एक न चली। टप्पू ने शराब नहीं पियी। उसे माँस-मदिरा से बचपन से ही सख्त घृणा थी, जब कि उस वस्ती के बच्चे बच्चियाँ होश सम्भालते ही इसके आदी हो जाते थे।

"आओ हम तुम पियें समधिन...."

सरबन के निमन्त्रण को जसुदिया ने मुस्कुराकर स्वीकार कर लिया। दोनों ने मिलकर शराब की वह बोतल खाली कर दी। टप्पू को माँ के इस रूप पर कोई घृणा नहीं हुई। माँ की इस आदत से वह अपने होश सम्भालने के अवसर से ही परिचित था। माँ का यह रूप देखने का वह आदी पड़ गया था। किसी के मरने पर, शादी ब्याह के अवसर पर अथवा पञ्चायत जुटने पर शराब का प्रचलन मामूली होते हुए भी सबके लिये अनिवार्य था। त्योहारों के अवसर पर भी, देवी-देवताओं की मानता के अवसर पर भी बकरे काटे जाते और बकरे के माँस के साथ-साथ शराब का वितरण होता था, जो 'महाप्रसाद' के रूप में प्रत्येक को ग्रहण करना अनिवार्य रहता था।

टप्पू को बचपन से ही शराब की गन्ध से नफ़रत थी। उसकी सड़ाँध बदबू से वह दूर भागता था। उसे ऐसे वातावरण में अपना दम घुटता हुआ प्रतीत होता था। टप्पू ऐसे अवसर पर एक पल भी न रुक पाता था।

टप्पू उठकर बाहर आ गया। मैदान में अन्धेरा जहाँ घना था वहाँ वह बैठ गया। उस अंधकार में वहाँ फिर वही आत्मचिन्तन में लीन हो गया।

कल तक वह जिस लच्छो से दूर भागता था। जिसे दुतकारता था, वही आज उसके कितने समीप आ गई है! आज उससे जीवन भर का नाता जुड़ गया है! वही लच्छो जो कल तक उसके सामने खुले रूप में थी, इसी मैदान में, इसी वातावरण में उसके समीप निःसंकोच होकर बैठ जाया करती थी, आज ऊपर से नीचे तक साड़ी में लिपटी हुई आई। केवल उसके दो हाथ बाहर निकले थे। उसने उसे नारियल, बताशे और रुपयों के रूप में फलदान देकर उसे अपना भावी-पति स्वीकार किया। वह नारियल, वह बताशे और वह चंद चाँदी के टुकड़े उसके जीवन के प्रतीक थे, जो उसने उसे सौंप दिये थे। आज लच्छो ने अपने दोनों हाथों से उसे अपना जीवन सौंप दिया है। उसने उसका जीवन स्वीकार कर लिया है। जिसकी जिन्दगी का रथ, जो अभी तक केवल एक ही पहिये से भाग रहा था अब एक पहिया और ले बैठा है।

टप्पू के मुँह से अनजाने एक दीर्घ निःश्वास निकल गई।

आज नहीं तो कल उसे लच्छो की जिन्दगी को ढोना ही होगा। यह समय जो उसे बीच में मिल रहा है, इसका उसे उपयोग कर लेना है।

टप्पू के मन से क्रमशः पश्चाताप की भावना मिटती जा रही थी। उसने जो किया ठीक ही किया। केवल एक बात का उसने दृढ़ निश्चय कर लिया कि जब तक वह अपने उद्देश्य की प्राप्ति न कर लेगा तब तक वह लच्छो से विवाह ही न करेगा। उसे अपनी पत्नी के रूप में, अपने पास कभी भी स्वीकार न करेगा—

और इस बात को वह लच्छो पर भी प्रकट कर देगा।

लच्छो....

टप्पू का मन एक मीठी सिहरन से भर गया। कल क्या लच्छो उसके सामने आ सकेगी? कल क्या वह पहले की तरह निर्भीकता से बातें कर

सकेगी ? उससे झगड़ा कर सकेगी ? क्या वह सदा की तरह सिर उठा कर उससे बात कल भी करेगी ?

नहीं ! नहीं !! नहीं !!!

शायद ही नहीं ! बल्कि कभी नहीं !!

कल तो वह उसे देखते ही लजाकर भाग जावेगी । शायद कुछ दिन तक वह उसके सामने आ ही न सके । उसे देखते ही लजाकर भाग जावे....

टप्पू के फीके अधरों पर एक मुस्कुराहट दौड़ गई ।

नया जीवन, नयी शक्ति, नयी प्रेरणा और अदम्य उत्साह अपने अन्तर में भर वह उठ खड़ा हुआ । उसके पग हौले-हौले घर की ओर बढ़ गये ।

लच्छो का मन एक मीठी गुदगुदी से तरबतर था । थम थमकर लाज से उनका चेहरा लाल हो उठता था । रहरहकर उसके ओठों पर एक मुस्कुराहट खेल जाती थी । उसकी वर्षों की तपस्या का का फल उसे मिल गया था । जाने कब से हृदय में बनते-बिगड़ते स्वप्न को उसने साकार होते पा लिया था ।

टप्पू अब उसका है ।

वह टप्पू की है ।

अब टप्पू उसे छोड़कर कहीं भी नहीं जा सकता है ! जाने किस पुण्य का यह प्रताप उसे मिला है, कि टप्पू को अपने पति के रूप में पा सकी है । वह सचमुच में भाग्यवान है । बड़ी भाग्यवान है । सारा शरीर उस मीठी गुदगुदी से रह-रहकर सिहर उठता था ।

आज नहीं तो कल वह टप्पू की होगी और टप्पू उसका होगा । यह

निश्चित हो गया है। ढपले का मीठा स्वर अभी भी उसके कानों से टकरा रहा था। सब सो गये थे। धरती पर रात का सन्नाटा खिंचा हुआ था, पर लच्छो जाग रही थी।

जाग रही थी वह और स्वप्न-जाल बुन रही थी।

मीठी कल्पनाओं की गोद में वह अपने स्वप्निल संसार की सैर कर रही थी।

सरवन जब घर में दौड़ा-दौड़ा आया और उसने पुकार दी कि उसका फलदान टप्पू से होना तय हो गया है, जल्दी सब इन्तजाम करो तो उसे विश्वास ही न हुआ था। सुनते ही वह जहाँ की तहाँ ठगी-सी खड़ी रह गई थी?

उसकी आँखें विस्मय से फट गयीं।

वह अपने को रोक सकी न और जब सरवन आया तो उसने स्वतः चीखकर पूछा—"क्या सच....?"

"हाँ, हाँ, अभी इसी वक्त! पर तू क्या पूछती है? कुछ लाज-शरम भी है!"—सरवन बिगड़ पड़ा था।

उसकी नई माँ के कान में भनक पड़ी।

"आँय! क्या कहते हो?"

"टपुआ से मैंने लच्छो का रिश्ता तय कर दिया है..."

"अरे उस दुष्ट से...."

"ऐ लच्छो की माई!"—सरवन ने गम्भीरता से कहा—"तुमने जरा भी चिल्ल-पों की तो मारे डण्डों के तुमको ठीक कर दूँगा। तुम्हारी हड्डियाँ ढीली कर दूँगा। टपुआ के खिलाफ एक शब्द भी न कहना! तू क्या जाने? लड़की मेरी है। तेरे पेट की नहीं है। मैंने उसे पैदा किया है। समझी। चुप रह!"

सरवन के आगे उसकी एक न चली। टप्पू के साथ लच्छो का विवाह कभी नहीं देखना चाहती थी। वह कट्टर विरोधी थी, पर सरवन

के आगे उसकी न चली। सरवन की मार से वह परिचित थी। वह ढोर-सा पीटता था। जब-जब सरवन ने उसे पीटा, तब-तब दो-चार दिन उसे बिस्तर से लगना पड़ा। मार के भय से वह चुप रह गई। कुछ न बोली। विवाह हो जाने दिया। ऊपरी मन से दिखाने के लिये वह भी उस समारोह में सम्मिलित हुई, पर उसके अन्तःकरण में लपटें उठ रही थीं। टप्पू उसे फूटी आँखों न सुहाता था। उसके जन्म के रहस्य से वह परिचित थी। वह अपने धर्म और अपने संस्कारों का कट्टर अनुगामिनी थी। नीच कुल की है, तो क्या हुआ? पर उस कुल की मर्यादा को भी भङ्ग होते वह नहीं देख सकती थी। जसुदिया से उसे सख्त घृणा थी।

वह मन ही मन फड़फड़ाकर रह गई।

लच्छो से उसे न मोह था, न माया, न ममता। वह उसके पेट की न थी, पर उसके पति का रक्त तो उसमें था और अपने रक्त का वह एक दूषित रक्त से मिलते देख सकना, वह सहन न कर सकती थी।

माँ की इन सब भावनाओं को लच्छो ने समझ लिया था। यह भी वह समझ गई थी कि अब उसे पहले से भी अधिक कठोर यातनाएँ भोगना पड़ेंगी। जल-भुनकर खाक हुई माँ अब उसे नाना प्रकार के कारणों को खोजकर पहिले से भी अधिक यातनाएँ देगी। लच्छो यह सब जानकर तनिक भी विचलित न हुई। टप्पू के लिए वह बड़ी से बड़ी मुसीबतें उठाने के लिए प्रस्तुत है, पर उसे नहीं छोड़ सकती है। अपने टप्पू के लिए वह सब कुछ कर सकने को तैयार है—

—और अब टप्पू उसका हो ही गया है।

लच्छो को इतनी खुशी थी कि मारे खुशी के उसका दम ही निकल जावेगा। बार-बार खुशी से उछलते हुए अपने दिल को वह दबा-दबाकर रह जाती थी। टप्पू के ख्याल के साथ-साथ उसे बड़ी शरम भी लगती

थी। अपने आप वह शरमा भी जाती थी, जैसे कि टप्पू उसके ही सामने खड़ा हो और पूछ रहा हो—"कहो, कैसी रही !"

"हाय राम !"

मारे लाज के लच्छो पानी-पानी हो जा रही थी।

बाहर रात का अँधियारा पाँव पसारकर सो रहा था। रात्रि के खामोश वातावरण में लच्छो अतीत के साथ टप्पू की स्मृतियों को लेकर मगन थी। एक फटी-पुरानी मैली कथरी पर वह अपना शरीर सिकोड़े हुए पड़ी थी और नींद....वह तो उड़ गई थी। आने का नाम ही नहीं ले रही थी। लच्छो की आँखों की यह दशा थी कि जैसे वह सोना ही नहीं जानती थीं। मानो उसकी आँखों ने आज तक नींद का आस्वादन ही नहीं किया है।

थोड़ी-थोड़ी देर में लच्छो करवटें बदल रही थी। उससे ही जरा हटकर उसकी नई माँ लेटी थी। उसका मन क्रोध से फुफकार रहा था। उसे भी नींद न आ रही थी। वह भी थोड़ी-थोड़ी देर में करवट बदलती हुई लच्छो का तमाशा देख रही थी। उसको वह बुरा लग रहा था। रह-रहकर वह मन ही मन झुँझला-झुँझला भी पड़ती थी, पर अपनी इस झुँझलाहट को वह बाहर प्रकट कर सकने में असमर्थ थी।

लच्छो मधुर स्वप्नों में उड़ी जा रही थी। आँखें बन्द किये रहती और सोचती जाती, तो उसे सब कुछ बड़ा अच्छा लगता था। वह मनके सपनों में उड़ती जा रही थी। एक नये और अनोखे देश में।

लच्छो की नई माँ उसे देख रही थी। देख रही थी वह कि लच्छो रह-रहकर कभी आँख बन्द करती है, तो कभी आँख खोलती है। वह समझ गई कि लच्छो आज मनपसन्द दूलहा पा जाने के कारण फूली नहीं समा रही है। उसकी खुशी का पारावार नहीं है।

न रहा गया उससे।

झल्ला पड़ी वह।

एकसौ पाँच

"ओ री लच्छो, सो रही है, या नखरे दिखलाती है !"

"........"

लच्छो ने चिहुँकर आँखें खोलीं और चट से बन्द कर लीं। वह ऐसा बहाना करके पड़ रही जैसे उसे कुछ सुनाई ही नहीं पड़ा। सिकुड़-सिमट गई वह। अपनी साँस भी रोक ली उसने। इस डर से कि यदि उसकी साँस की आवाज भी उठी तो हो सकता है कि नई माँ पुनः उसपर बिगड़ उठे। इसी भय से उसने अपनी साँस भी रोक ली।

लच्छो की नई माँ का पारा भी तो आसमान पर था। उसकी अग्नि में और घी पड़ गया था, जैसे कि वह ज्वालामुखी हो। जिस बात को वह भूलकर भी नहीं चाहती थी, वही हो गई थी। टप्पू उसे फूटी आँखों भी न सुहाता था।

सरवन पर भी वह मन ही मन कुपित थी। पीटे जाने के भय से वह चुप थी, अन्यथा उसने क्या से क्या नहीं कर दिया होता ! किसी तरह से वह अपने मन के उद्वेग को दबाये हुये थी।

सरवन भी उसी रंग में रंग गया, जिस रङ्ग में लच्छो रङ्ग चुकी है। इस पर उसे बड़ा ही आश्चर्य था।

लच्छो ने अपने मन को मसोसा। अपने मन की भावनाओं को दबाया। अपने दौड़ते हुये विचारों को रोका। किसी तरह से उसे नींद आ जावे....पर नींद तो अँखियों के लिए बैरन बन गई थी। लाख कोशिश करने पर भी आँखों में नींद न आ रही थी।

आज उसे जाने क्या हो गया है !

अपने मन को ऐसा बेकाबू कर उठी है वह !

बहुत कोशिश की, बहुत प्रयास किया, लाख-लाख चेष्टायें कीं, पर उसकी आँखों में नींद न आई।

साँस रोके-रोके उसका दम घुटने लगा तो उसने धीरे-धीरे अपनी साँस छोड़ी। पैर पसारे। शरीर सीधा किया।

लच्छो की नई माँ जलती-भुनती किसी प्रकार गहरी नींद में सो गई। उसकी नाक बजने लगी। खर्राटा भरने लगी वह तब लच्छो की जान में जान आई और जैसे उस पर से एक बड़ा बोझ हट गया। आजादी की साँस ली उसने।

अब तो उसका और राज्य हो गया।

रहा-सही नींद आने की भावना दूर हो गई।

टप्पू को अपने सपनों की गोद में बैठाकर वह खेल खेलने लगी। राजा और रानी के किस्सों की तरह वह भी कल्पनायें करने लगी।

इसमें शक नहीं कि टप्पू उसकी तपस्या का फल था। प्रतीक्षा के पश्चात् प्राप्त हुई वस्तु प्रत्येक को बड़ी ही प्रिय होती ही है।

लच्छो खोई रही। खोई रही।

सपनों में खोई रही।

डूबी रही वह !

दूर-दूर तक के विचारों में बहती रही।

हठात् उसकी पलकें झँप गईं। सपने नाच उठे। उसने देखा।

सन्ध्या समय वह अपनी पुष्पवाटिका में टहल रही है। विषाद की गहरी छाया उसके मुखमण्डल पर तिरती सी प्रतीत होती है। शायद वह मन्दिर में अपने आराध्यदेव की अर्चना का विचार कर रही थी। न जाने उसके मस्तिष्क में कैसी कल्पना की तरङ्गें हिलोरें ले रहीं थीं, परन्तु स्पष्ट था, कि उसका कोई दृढ़ विचार नहीं। अधखिली कलियाँ माला में धीरे-धीरे पिरोने लगी। अंक में सुमन रख सिर झुकाये वह माला गूँथ रही है। उसके एकान्त हृदय के भीतर आज इस निस्तब्ध-सन्ध्या में न जाने किस मर्त्य-देवता की आरती हो रही है। उसकी उदासीन दृष्टि किसी एक अत्यन्त दूरवर्ती चिन्ता-राज्य में परिभ्रमण कर रही है। चञ्चल कौतूहल वहाँ प्रवेश नहीं पा सका है।

एक दीर्घ निश्वास पूजा के धूप के सुरभित धुएँ की तरह हवा में

विलीन हो गया। आँसू की दो बूँदे कुसुम-कोरक के समान अज्ञात देवता के चरणों पर झर पड़ीं। सुन्दरी के क्षीण-जीवन-तन्तुओं पर आनन्दमयी कल्पना की प्रत्येक उँगली मानों स्पर्श करने लगी, उसके अन्तःकरण के भीतर एक अनजान वेदना थिरकने लगी। उसे वह पूरी तरह समझ ही न सकी। आकाश का विरह मिलन जिस प्रकार दूर क्षितिज पर अपना एक अस्तित्व रखता है, उसी प्रकार उसके मानस क्षतिज पर विस्मृति के अवशेष, कल्पना के ताने-बाने में उलझ रहे थे। अन्तरव्यथा से आर्द्र माला गूँथी जा चुकी थी।

यह पुष्पहार जितना कोमल है, इसमें पवित्रता का अंश उससे भी अधिक है। उपवन की मुक्त वायु में पले, पल्लवों की पवित्र छाया में अधखिले इन पुष्पों का चयन आराध्य के चरणों पर अर्पित करने की पवित्र भावना से हुआ है। इसके अतिरिक्त वह उस हृदय की उन्मुक्त प्रेरणा से गूँथे गये हैं, जिनमें प्रेम का महासागर ऊँची-ऊँची लहर मार रहा है! आनन्द की उन्मुक्त प्रेरणा फूलों की पंखुड़ियों को गद्गद् कर रही है। सुरभि का शीतल झोंका आलिङ्गन से विह्वल हो रहा है। आवेशपूर्ण यौवन की मदिरा ज्योत्स्ना ढाल रही है।

कुछ स्वप्न हैं, जो उसके जीवन के अतीत-चित्रों के साथ लिपटे रहे। जब कभी ये स्वप्न उसके मानस पर उभरे हैं, तब उसकी अवस्था कैसी विक्षिप्त, दिनचर्य्या कैसी अस्त-व्यस्त और चेष्टा कैसी क्लान्त हो गई है; क्या कभी उसे भूल सकती है! वे स्वप्न जो तन्द्रिल मन के घाट पर उतरते हैं, नश्वर होते हैं, जागरूक प्राणियों के लिए। उसका कदाचित कोई महत्त्व नहीं होता; किन्तु जीवन के स्वप्न कभी मरते नहीं; वे तो अक्षय होते हैं, उनमें ऐसा अमरत्व रहता है कि युग-युग तक वे चिरन्तन बने रहते हैं। मानव-काया विनष्ट हो सकती है, पर मानवात्मा के स्वप्न जीवित ही बने रहते हैं। उसके स्वप्न भी कुछ इसी प्रकार के हैं।

टप....टप....टप....लच्छो की आँखों से बराबर आँसू टपकने लगे।

उसका कुसुम-शोभन मुख विद्रूप हो उठा। वह अपने अन्तःस्थित भाव गुञ्जन को अन्तरिक्ष पर टकटकी लगा खोजने लगी। अन्तर्व्यथा का रोमाञ्चक विस्फोट आँखों के सामने छा गया। 'रोने से क्या होता है; मानों कोई कह उठा—अदृष्ट के किस खेल को रुदन रोकने में समर्थ हुआ है, नियति भी किस वृत्ति को इस रुदन के द्वारा समवेदना को स्पर्श कर पायी है, काल के किस दृष्टि निक्षेप को, क्षणभर के लिए ही इन अश्रु-विगलित उच्छ्वासों ने ध्यान भङ्ग कर पाया है।

तो क्या बिहँसती हुई बसन्त की रजनी में, चाँदनी की स्निग्ध शीतल छाया में हृदय का प्रतिदान नहीं कर सकूँगी जिसे प्रेमी उन रातों में करते हैं, जिन्हें विधाता ने हो आवेशपूर्ण उन्नत यौवन की बेसुध नींद के लिये बनाया है।'

लच्छो का नारी हृदय सदैव अतृप्त रहनेवाली भावना नींव में दबकर जीवन-यन्त्रणा के प्रति विद्रोह कर उठा। अधरों पर क्रन्दन की नीरव गहरी रेखा खिंच गयी। उसके चेहरे पर विषाद की रेखाएँ करुणा की मूर्ति गढ़ने लगीं।

....टप....टप....टप...मुग्धा प्रकृति रूप की चाँदनी सी सुगन्धि को अपने में भरने की व्याकुल पिपासा में डोल उठी। वाताश का हलका झोंका नये लय का सन्देसा लाया। नन्हें फूलों से सजे प्रकृति की प्रत्येक हिलोर चाँदनी का दीपक थामने के लिये आगे बढ़ उठी। वह सिहर गई। एक मधुर कम्पन से उसका रोम-रोम भर गया।

यदि लच्छो के जीवन में एक भी ऐसी दीपावली होती, एक भी ऐसी प्रमोदमयी बेला आती, तो वह अपने पतझड़ के सूखे पत्तों से अरमानों को, उसी स्मृति में विभोर कर देती; पर उसके जीवन में सर्वदा सन्ध्या का ही साम्राज्य रहा। प्रकाश का लोप हो जाता है। घनघोर अँधियारी रहती है, सर्वदा यह शङ्का बनी रहती है कि रात का आना अभी बाकी है। जीवन के सुनहले स्वप्नों की सुखद छाया में इस प्रकार के सूखे पौधों

का कोई महत्व नहीं होता, क्योंकि न मधुवात ही पुलकित करती है, न उमँग भरी तितलियाँ ही नाचती हैं, न चाँदनी की स्निग्ध शीतल छाया ही पड़ती है। इसका कारण यह है कि जिन-जिनको लेकर हम अपना जीवन प्रारम्भ करते हैं, अन्त में आते-आते उनमें से बहुत से एकदम व्यर्थ सिद्ध हो जाते हैं। स्मृत्तियों को उधेड़ देने पर जो चिह्न रह जाते हैं, वे तो है स्मृत्ति के अवशेष और जो यत्र-तत्र वेदना के धागे में पिरोये होते हैं वे हैं; इसी जीवन के तुल्य जो कहीं भी अटके रहते हैं।

अन्तर्व्यथा का उफान आँखों की राह बह उठा। क्योंकि जब कभी मनुष्य के हृदय में वेदना का प्रबल उफान आता है, तब ऐसा ही होता है। व्यक्ति जीवन के कठिन तट पर अपने को जोर-जोर से पछाड़ कर मूर्छित कर देना चाहता है। वेदना की सीमा पर अपने को मिटा देना चाहता है। इसमें उसको जीवन का अमूल्य किन्तु एक लम्बा समय केवल नींद की खुमारी दूर करने में काट देना पड़ता है। व्यक्ति को विवशता की ताल पर नृत्य करना पड़ता है। वह चलता है, भटक जाता है, राह मिलती है, फिर भी खो जाता है। इसका कोई क्रम या विधान नहीं। यह प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में होता है। यह अकस्मात हो जाता है, इसके लिए किसी की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। जीवन की यवनिकाएँ इसी प्रकार उठती-गिरती रहती हैं।

लच्छो अपने हृदय के स्वप्न-चित्रों को मिटाकर अपने धुँधले भविष्य की ओर देखने की असफल चेष्टा द्वारा उसमें नवीन रङ्ग भरने का प्रयास कर रही थी; परन्तु उसके छलकते हुए आँसू उसका समर्थन न कर सके। उसके अतीत-जीवन में किसी दिन प्रणय का वसन्त अपनी समस्त मनोहरता, यौवन की मस्ती और वैभव से इठला उठा। उसके शिथिल हृदय में प्यार की कोकिल बोल उठी, मस्ती से कू....उ....उ....और उस मस्ती में सब कुछ भूलकर अपने को प्रेम बन्धन में कसकर, अपनी एक छोटी सी खिलौनों की दुनियाँ भी बसानी चाही थी।

कुछ सोचकर उसके आँसू छलक पड़े। वे अमूल्य मोती नीचे क्यारी में लहलहाते हुए नर्गिस के फूलों पर जा गिरे। फूलों ने उन्हें अपने शिर आँखों पर बैठा लिया। मासूम, जमाने की सताई हुई सुन्दरी के आँसूओं के भार से फूलों की नाजुक सी डण्ठियाँ काँप कर रह गईं।

आज लच्छो की आराधना की थाल में कुम्हलाये हुए पुष्प थे, मसली हुई कलियाँ थीं और थे सूखे हार। उसके अर्चना के दीप आँसू से भरे, उसके वेदना के गीत में अधूरी अभिलाषा की धू-धू करती हुई चिता की हाहाकार, जल की खोज में मृग-मरीचिका में दम तोड़ते हुए बेकल उर की अन्तिम हिचकी, और पल-पल पर समाप्त होते हुए जीवन की सिसकी।

जीवन प्रसून खिलते हैं। नारी के अधरों पर कण-कण में बिखरी मूक मुस्कान नाच उठती है। हृदय में प्रेम और आकांक्षा की अनुभूति प्रत्यक्ष होने लगती है, उसका हृदय मृदुल आनन्द में आत्मविभार हो उठता है। सहसा नियति का झकोरा आता है। वेदनाओं का भीषण तूफान उठता है और जीवन के सञ्चित अरमानों को दफना जाता है। आकांक्षा की प्रबल चाह को छिन्न-भिन्न कर देता है, तब नारी जीवन का सारा सौन्दर्य समाप्त हो जाता है। जब बहार विदा हो जाती है, बुलबुल सङ्गीत-मग्न नहीं होती। जब चाँद डूब जाता है, चकोरी व्यग्र होकर फड़फड़ाती नहीं, जब प्रसून मुरझा जाते हैं, तब रङ्ग-बिरङ्गी तितलियाँ अपने रसीले मधुर पङ्खों से उपवन को हरा-भरा नहीं करतीं।

रात के आँचल में भरे स्वप्न समय-समय पर उसके सोते ससार को आकर जगाने लगते। वह उसे जीवन की जटिल पहेली कहकर भुला देती जिससे अन्य मन की सजग स्मृत्तियां नीरस और फीकी पड़ जातीं। भूत-भविष्य के कितने चित्र बुद्बुदों की भाँति उठते, पर क्षण-क्षण में एक-एक करके लुप्त हो जाते। उसके नेत्रों की पुतली में छिपी आहें आँसू बन कर छलक पड़तीं और वह चित्रलिखिता सी कोमल

किसलयों को देख उठी। शायद यह नारी जीवन के लिए सबसे बड़ा अभिशाप है, कि उसकी सारी जिन्दगी अपने भाग्य की चिन्ता में ही बीत जाती है।

उपवन से थोड़ी दूर पर जान्हवी कल-कलनिनाद करती अविरल गति में बहती चली जा रही थी। लच्छो उपवन के मुक्त वायु में पले हुए पुष्पों की माला लिये द्रुतगति से उसी ओर बढ़ चली। वह सरिता के तट पर पहुँची। एक निश्चित स्थान पर दीपक जला कर बैठ गयी। वह चाहती थी कि दीपक को हथेली पर लिये ज़ान्हवी के अविरल प्रवाह में तन्मय होकर अपने जीवन के शेष दुःखों को भूल जाय। जिस स्थान पर दीपक जल रहा था, उसमें किसी की समाधि थी, जिसके जीवन के इतिहास के अध्याय पर लच्छो की आँखें रो रही थी।

वह सोचने लगी—निश्चय ही मृत्यु की दुनिया विश्राम भरी होगी, जब बोझिल पलकें धीरे-धीरे बन्द होती होगीं उस समय शरीर को कैसा चैन मिलता होगा, जैसे किसी ने काँटा निकाल दिया हो। धधकते हुए अङ्गारों पर शीतल-जल के छींटे डाले गये हों। आत्मा शारीरिक कष्टों से मुक्ति पाकर शून्य की ओर उड़ी चली जाती होगी। ऊँचे, इतने ऊँचे, जहाँ पावन-प्रकाश, अपूर्व-आनन्द के अतिरिक्त कुछ नहीं होगा।

सहसा विचारों ने करवट बदली। जीवन की समस्त सुषुप्त स्मृतियाँ जाग्रत होकर चलचित्र की भाँति दृगों के सम्मुख घूमने लगीं।

एक समय था, जब, यौवन लाल-लाल गुलाब की कोमल पँखुड़ियों की तरह खिल उठा था। संसार ने उसे विस्मय की आँखों से देखा, उसके यौवन में आकर्षण था, उन्माद था, उस उन्माद में मस्ती थी, उस मस्ती में उत्सर्ग था। नारी हृदय की कोमल अनुभूति थी। उसका यौवन अन्तहीन सागर की तरह लहरें ले रहा था और वह बही जा रही थी, उन्हीं लहरों में अपना सब कुछ भूलकर।

उसके पिता उसे ऐसे वर के हाथ में सौंपना चाहते हैं, जो इस अनुपम

रत्न को संजो कर रख सके। उसका छोटा सा संसार था, उस छोटी सी दुनियाँ में कुल दो प्राणी थे। अपने नन्हें से संसार में सब सुखी थे। कौन जानता था कि माता तीन ही दिन के अन्दर बिलखती हुई उसको छोड़कर, नियति के हाथों में सौंपकर, सदैव के लिये अदृश्य के अङ्क में सो जायेगी।

वह चिल्लायी, तड़पी, पर सब व्यर्थ। उसकी माता चली गयी दूर, बहुत दूर, अनन्त की छोर पर जहाँ बेचारी ने अपना सर्वस्व खो दिया, पर पहुँच न सकी। इसके बदले में उसे मिला क्या? राख की दो बुझी हुई ढेरियाँ?

झरे हुए पीले पत्ते की तरह उसके जीवन की सरसता नष्ट हो गई। खिलनेवाली कली वेदना के तप्त झकोरों से असमय में ही कुम्हला गई। वेदना के आवरण ने उसके दृगों को ढँक लिया, गुलाब की कली, कब खिली, कब सुखी, कब बिखर गयी?

उस दिन से नियति ने अपनी तूलिका से उसके जीवन क्षितिज को घनीभूत किन्तु धूमिल उच्छ्वासों के रङ्ग से रँगना आरम्भ कर दिया।

जब कभी उसका बोझिल हृदय कराह उठता। उसे हलका करने उसी जाह्नवी-तट की ओर चली जाता। दीपक जलाकर बैठ जाती। समस्त सुषुप्त स्मृतियाँ, वेदना की चिनगारियाँ उसके समस्त शरीर में बिखर उठतीं, उसका हृदय पिघलकर दृगों से बहने लगता। उसके हृदय के सन्नाटे में एक धुँधला चित्र झाँकने लगता।

"जीवन कितनी बड़ी समस्या है, कितना अगम्य रहस्य है। जीवन को सुखी बनाना, अपनी दुनियाँ को हँसती, खेलती रखना कितना विकट पहेली है। कोई नहीं जानता कि इस नीले पर्दे के पीछे क्या है, जीवन का आदि क्या है और क्या है अन्त। उस समय उसे प्रकृति की समस्त विभूतियाँ एक बन्द पुस्तक से अधिक कुछ अर्थ नहीं रखती। इस बन्द पुस्तक का बोझ, जीवन का बोझ, भीतर के एक नारी हृदय

का बोझ कितने समय से ढोता चला आ रहा था, उसमें इतनी हिम्मत नहीं कि वह अपने को पटक दे, एक छलाङ्ग में सारी परेशानियों को लाँघ जाय।

कल्पना अभाव पर बनती है, हृदय का अभाव जब भाव से भरकर पूर्ण होना चाहता है, तब कल्पना रङ्गीन चित्र बनाने लगती है। लच्छो ने अपने हृदय में एक अभाव का अनुभव किया, पर अभाव कल्पना नहीं वेदना बन गया। वेदना के कारण उसके हृदय का वह अंश, जहाँ अभाव जाग रहा था, धीरे से हिल गया। अनुभूति में स्पन्दन होने पर मनुष्य वहीं रुक जाता है। लच्छो भी हृदय का अतृप्त अंश भर लेने के लिये अपने चारों ओर एक सीमा बाँधने लगी, जिसे पार करने में उसकी वेदना मिश्रित कल्पना असमर्थ थी।

लगता था मानों वह किसी रङ्गीन शीश-महल में खामोशी का आलम लिये बैठी थी, उसके चारों ओर वेदना के बादल उमड़ रहे हैं। मस्तिष्क के पर्दे पर भिन्न-भिन्न आकार में और रङ्गों में बीते दिन के चलचित्र उतर रहे हैं। जब आकर्षक और मनोहर दृश्य आते हैं तो बरबस उसके अधरों पर मुस्कान थिरक उठती, जब भयानक चलचित्र अभिनय-आतुर हो उठते, तब उसकी आँख आँसुओं से धुँधली पड़ जातीं। हर घड़ी, हर समय, कल्पना की लहरों में डूबना और उतराना, यही उसके सपनों में शेष रह गया है।

कभी जिन्दगी उसे उस नदी की भाँति लगती, जो ऊँची-ऊँची काली चोटियों से सिर पटकाती, घाटियों से टकराती, बिलखती हुई चली आ रही है। जिस प्रकार पानी में पत्थर फेंकने से एक भँवर बन जाती है, जो दूर तक झिलमिलाती हुई एक-एक करके लहरों में लुप्त हो जाता है, उसी प्रकार उसकी कल्पना में भावों के नन्हे-नन्हे घरौंदे बनते, फिर थोड़ी देर बाद, बिगड़ जाते। उसकी जिन्दगी इन्हीं टेढ़ी-मेढ़ी पगडण्डियों से होती हुई चली आ रही थी।

दीप-शिखा के आगे उसकी भावनाएँ इस प्रकार बढ़ गयी कि वह

व्याकुल हो उठी। दुनिया उसे घूमती सी नजर आने लगी। उसके सपने के मन्दिर की नींव बर्फ के टुकड़ों पर अवलम्बित थी, जो एकाएक सूर्य की तीव्र उष्णता में पिघलने लगी और उसकी दुनिया टुकड़ों में उजड़ गया। वह खामोशी का आलम लिये बैठी रही। उसने कितनी बार निश्चय किया अपने इस दिल को निकाल करके अपने अरमानों को कुचल डालूँ, प्रथम यौवन के मधुर कम्पन की स्मृति को जला डालूँ, पर मन और मस्तिष्क के द्वन्द्व में विजय मन की ही रही। इस कोलाहलमय संसार से उसे घृणा हो रही थी। निराशा और खामोशी की दुनिया में ही उसे विश्राम मिलता, ऐसा विश्राम जो सागर की अथाह गहराइयों, और हिमालय की ऊँची चोटियों पर मिलता है।

वह अपनी उठती हुई उमङ्गों पर करवट लेती हुई उद्भावनाओं को तोड़ देना चाहती थी, किन्तु नारी हृदय की कोमल अनुभूतियाँ रह-रहकर तड़फड़ा उठतीं। उसे बेकल बना देती थीं। उसकी अवस्थाओं के साथ उसके जीवन के सुख की अवस्थाएँ भी बदल रही थीं।...उसे लगा—सम्भवतः, किसी ने सही लिखा है, "जब किसी के जीवन का सङ्गीत विलीन होने लगता है, तब वह मृदुल स्पन्दन बनकर स्मृति में काँप उठता है, जब गुलाब मुरझाने लगता है, तब उसकी पीली पत्तियां अपनी छायामयी पँखुड़ियों के लिये विकल हो उठती हैं, जब पुष्प लुंठित होने लगता है, उसकी सुगन्धि भावों में सहम उठती है, उसी प्रकार, जब मनुष्य अपने से बिदा होने लगता है, उसके अरमानों की होली जलने लगती है, तब उसके अतीत के चलाचित्र प्यार की दुनियां में ऊंघने लगते हैं। व्यक्ति अपने आपमें विकल हो उठता है।

आकाश नील से धोये भीगे वसन की भाँति स्वच्छ था। नभ में टँके सितारों की तरह तारे जगमगा रहे थे। उसमें न कोई क्रम था, न शैली, न कोई छन्द विधान, न व्यञ्जन। उस अव्यवस्था में भी कितना सौन्दर्य था!

एक सौ पन्द्रह

क्षितिज के उस पार ऐश्वर्य अँगड़ाइयाँ ले रहा था। अन्धकार की आड़ में रङ्गरेलियों ने अपने आपको चित्रित कर रखा था। छलछल करती लहरियाँ उससे कुछ कहना चाहती थीं, किन्तु उन्हें जो कुछ कहना था, उसकी असीम वेदना से मानों उनके कण्ठ द्वार रुद्ध हो रहे थे। कौन था, वहाँ, पीड़ा का मर्मज्ञ ? विडम्बना का महाकाव्य लिखने वाला आदि कवि ? जो अभावमयी उच्छ्वासों पर वेदना का घिरौंदा बनाता।

धरती को आकाश में बाँध रखने वाले इस लोक में, जिसे स्वर्ग कहते हैं, कोई पीड़ा का मर्मज्ञ है या नहीं उसको पता नहीं। बादलों की अनचाही भीड़ में मुक्ति पाकर एक नवागन्तुक तारा कभी झपक कर और कभी एकटक लच्छो को ओर देख रहा था। लच्छो भी धरती के छोटे-छोटे ज्योति पुञ्जों के बीच खड़ी उसे एकटक निहार रही थी। उसके हृदय में वेदना की आरती सज रही थी।

इस नवागन्तुक तारे को उसने कभी पहले नहीं देखा था। उसने क्यों जन्म लिया, उसे मालूम नहीं। उसे कतूहल हुआ। कौन उसकी ओर एकटकी बाँधकर देख रहा है ? सम्भवतः यह उसके भाग्य का तारा था, जो अदृश्य के ऊबड़-खाबड़ प्रान्तों में प्रकाश और अन्धकार से टकरा रहा था।

हठात् नींद खुल गई लच्छो की।

हड़बड़ा कर उठ बैठी वह। देखा उसने। भोर की सफेदी आसमान पर छा रही थी।

टप्पू की आँखों में भी रात भर नींद न रही। अपने विचारों में दूर-दूर तक बहता रहा। कभी उसके मानस पटल पर गौरा आती तो कभी लच्छो ! इन दोनों के बीच वह बहता रहा। नदी के

दो किनारों की तरह यह दो लड़कियाँ उसके समक्ष थीं और वह बीच नदी में उस बहते हुये व्यक्ति की तरह था, जिसे कोई किनारा न मिल रहा था।

लच्छो उसकी भावी पत्नी घोषित हो चुकी थी। टप्पू के मन में इस लिये हलकी-सी पीड़ा थी और सबसे अधिक खेद उसे इस बात का था कि यह सम्बन्ध स्वीकार करने से पहले उसने गौरा से कुछ भी न कहा था। कम से कम उसे गौरा से पूछ तो लेना चाहिये था।

रात बीत गई। टप्पू यह जान ही न सका कि वह कुछ सोया भी या नहीं अथवा वह सपनों में ही उलझा रहा।

सूरज के उठते ही वह उठ बैठा। बाहर आकर उसने देखा। उसकी माँ परछी में अस्त-व्यस्त पड़ी थी, एकदम बदहवास सी। रात उसने अधिक पी ली थी। खुमारी में उसे होश ही न था। टप्पू ने सोचा कि माँ को उठा दे वह, पर उसके हाथ रुक गये। वह समझ गया कि खनमन नींद टूटने पर खुद ही माँ को उठा देगा। वह बाहर आ गया। उसके अधिकांश साथी बाहर आ चुके थे और अपने काम पर जा रहे थे। एक लड़की को देखकर टप्पू को लच्छो की याद आ गई। ओह ! अब क्या वह उसके सामने आ सकेगी। लच्छो अब उसके सामने चंचल रूप में न आ सकेगी। अब तो वह उसे देखते ही लजाकर भाग जावेगी।

टप्पू के होटों पर एक मलिन मुस्कान खेल गई।

मैदान पारकर वह सड़क पर आ गया, जैसे वह अभी से गौरा से मिलने का इन्तजार करनेवाला हो। गौरा से वह मिल ही कैसे सकता है ? वह तो ताँगे में जा रही होगी....कैसे बात कर सकता है वह...?

टप्पू अनमना सा पुलिया पर बैठ गया।

महत्त्वाकांक्षाओं के बीच पलनेवाला वह अधपका युवक समझ न पा रहा था कि उसे क्या करना चाहिये ? दुनिया में बहुत से युवक ऐसे

होते हैं, जिनके मन में महत्वाकांक्षाएं होती हैं। कुछ कर गुजरने की बड़ी-बड़ी भावनाएँ होती हैं। यह सब होते हुये भी उचित प्रकाश के अभाव में वह जहाँ के तहाँ ही पड़े रह जाते हैं। स्थितियों से संघर्ष यदि सही दिशा में नहीं किया जाता है, तो मनुष्य का उठ सकना असम्भव ही है। असम्भव मनुष्य को तभी महसूस होता है जब कि स्थितियों से वह गलत ढङ्ग से लड़ने लगता है।

जन्म से शूद्र बालक टप्पू अपने जीवन के अधिकांश वर्ष अपने जन्मजात कर्म में ही खो चुका था। एक लम्बी अवधि के पश्चात् उसके मन में चेतना आई। एक बड़ी भूल पर बहुत दिनों तक परदा डाल रखने के पश्चात् उसका परिमार्जन करना जिस प्रकार सनकीपन कहा जाता है, उसी प्रकार का प्रयास टप्पू का था।

समाज में तो वह सर्वत्र देख चुका था कि उसका कहीं आदर नहीं है। कहीं सम्मान नहीं है। हरिजन होने के नाते समाज के सवर्ण लोग उसकी छ या से भी दूर भागते हैं। ऐसे ही समाज में वह प्रतिष्ठा प्राप्त कर पनपने की उच्च आकांक्षाएँ मन में लिये हुये था।

संस्कार का मनुष्य पर अटूट प्रभाव होता है। टप्पू जन्म से भले ही शूद्र था, पर उसके संस्कार एक उच्च कुल के थे और इस संस्कार का रहस्य उसका माँ को ही विदित था। टप्पू के संस्कार ही उसे ऊपर उठने के लिये प्रेरित कर रहे थे। टप्पू के संस्कार ने ही उसे अपने कर्म से विरत कर दिया था और स्वभावतः लिखने-पढ़ने की सोई हुई प्रबल आकांक्षा उसके मन में जाग उठी। गौरा से उसे प्रेरणा मिली। इस प्रेरणा ने ही उसकी जिन्दगी में एक नया परिवर्तन ला दिया। वह उठता गया और अब इस स्थिति तक आ पहुँचा है।

सदा की तरह इस बार भी टप्पू के मन में प्रश्न उठा कि क्या वह अपनी मंजिल को कभी पा सकेगा। जो महत्वाकांक्षा उसके मन में पल

रही है। क्या वह उसके जीवन काल में साकार हो सकेगी। सम्भवतः नहीं।

टप्पू उद्विग्नावस्था में उस पुलिया पर बड़ी देर तक बैठा रहा। सूरज की किरणें जब और तेज हुईं तो वह पंडितजी के घर की ओर चल पड़ा। वह गौरा को अपने इस नये सम्बन्ध से परिचित करा देना चाहता था। वह तो उससे भूल हुई है जो उसने कुछ पहले ही गौरा को इस विषय में कुछ भी आभास नहीं दिया है।

टप्पू हरिहरनाथ शास्त्री के द्वार पर पहुँचा।

सदा की तरह उसने आवाज दी।

मन में एक शङ्का थी कि गौरा से बात करने का अवसर न मिला तो....

आवाज देते ही उसने पायलों की झङ्कार से उत्तर मिला। देखते-देखते गौरा देव कन्या सी गौरा उसके सामने आ खड़ी हुई।

"क्या है टप्पू....?"

"आप....आपसे हाँ"—टप्पू ने अपने को सम्भाला—"मिलने के लिये...."

"क्या हुआ....?"

टप्पू शरमा गया जैसे कोई लड़की अपने विवाह की चर्चा करने से पहले शरमा जाती है।

"क्या बात है....?"

"बात यह है....बात यह है....लच्छो है न ?"

"कौन लच्छो....मैं उसे नहीं जानती...."

"लच्छो सरवन की लड़की है !"

"होगी ? पर तुम्हें इससे मतलब क्या है ?"

"मतलब कि वह....कि वह...."

"मर गई ?"

एक सौ उन्नीस

"अरे नहीं ...वह मेरी दुलहिन होने ..."

"टप्पू ..."—गौरा के पतले-पतले गुलाबी होठों से एक चीख निकल गई। उसका कमल सा चेहरा अनायास सफेद पड़ गया। लगा कि गौरा के हृदय पर बहुत बड़ा आघात लगा हो ...गौरा किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गई ठगी-सी। एकटक आँखें फाड़कर वह टप्पू की ही ओर देखती रह गई....और टप्पू....अपनी बात अधूरी ही छोड़ पर मूलतः पूरी कहकर सिर झुकाए ही रह गया। अब उसमें इतना साहस और न था कि वह गौरा की ओर आँखें उठा कर देख सके।

बड़ी देर तक दोनों में से एक भी कुछ न कह सका।

अन्ततः गौरा ने ही निस्तब्धता भङ्ग की। उसकी मुद्रा ऐसी हुई कि मानों वह अपने आँसुओं को घोंट गई है। उसके नयनकोरों पर गीली-गीली परत बन गई।

"अच्छा !"—उसने कहा—"बड़ी खुशी की बात है। भगवान करे तुम खुशी रहो !"—गौरा की आवाज बिलकुल बदली हुई थी। बहुत भारी थी। गला रुँधा हुआ प्रतीत हो रहा था।

टप्पू आश्चर्य से आँखें फाड़कर गौरा की ओर देख उठा। वह यह समझने का प्रयास कर रहा था कि उसकी इस बात से गौरा खुश हुई है या नाराज ? पर टप्पू की समझ में कुछ भी न आ रहा था। न खुशी के भाव थे गौरा के चेहरे पर और न ही नाराजगी के। गौरा का चेहरा उसे उदास और दुःखित-सा लग रहा था। यह उसकी समझ मे न आ रहा था कि उसको दुःखित रहने की क्या आवश्यकता है ? उसे या तो नाराज होना चाहिए अथवा खुश !

"पर अभी बात रुक गई है ! मैंने रुकवा दी है !"—टप्पू ने मुस्कुरा कर कहा—"लिख-पढ़ लूँ उसके बाद....

"बात तो तय हो गई है ?"

"हाँ !"

एक सौ बीस

गौरा की बड़ी-बड़ी आँखें उदास थीं। कहा उसने धीरे से—"पर मैंने उसे कभी देखा नहीं है। मेरे पास भेजना, जरा उसे मैं भी देखूँ!"

"अच्छा!"

"मन लगाकर पढ़ो! भगवान करे तुम खुशी रहो और तरक्की करो!"

गौरा और न रुक सकी। मुँह फेर लिया उसने और छलकते हुए आँसुओं को छुपाकर वह भाग गई। टप्पू उसके मन की व्यथा को तनिक भी न जान सका। इतना अवश्य जान गया कि वह दुःखित है, पर क्यों? यह वह न जान सका था।

गौरा के इस व्यवहार पर आश्चर्य करता हुआ टप्पू लौट आया। ख्याल आया कि गौरा लच्छो को देखना चाहती है। उसे जानना चाहती है।

टप्पू लौटकर आ रहा था कि पुलिया के पास ही उसे लच्छो दिखलाई पड़ी। लच्छो ने भी उसे देखा। दोनों की निगाहें चार हुईं। लच्छो ने सदा खुला रहनेवाला सिर ढाँक लिया और उल्टे पैर लौटने ही वाली थी कि टप्पू ने आवाज दी।

"रुक जा लच्छो!"

लच्छो ठिठक गई।

टप्पू को उसके इस व्यवहार पर गुदगुदी हो रही थी। पास आकर वह खिलखिलाकर हँस पड़ा।

"क्या बात है, लच्छो! इतनी लजीली कब से हो गई हो?"

"......"

लच्छो चुप थी।

"पहले तो तुम मुझे...."

"चुप भी रहो!"—लच्छो ने धीमी आवाज में उसे झिड़की दी—"कोई देख लेगा तो क्या कहेगा?"

"इससे क्या हुआ? पहले तो तुम्हें इतनी लाज-शरम नहीं लगती

थी। अब कब से तुम इतनी लजीली बन गई हो। आखिर इसीलिए तो तुम मेरे पीछे पड़ी रहती हो..."

"धुत्त !"

"अच्छा सुनो ! पण्डितजी का घर देखा है। शास्त्रीजी का ?"

"हाँ, जानती हूँ !"

"उन.ी लड़का है, गौरा !"

"उससे तुम्हारा क्या मतलब ?"—लच्छो ने चिहुँककर यकायक पूछा और वह टप्पू की ओर घूम गई। उसकी लाज-शरम हवा हो गई।

"वह मेरी बड़ी भलाई चाहती है। पढ़ती भी है। उसने तुम्हें देखने के लिए बुलाया है। जरा खड़े-खड़े थोड़ी देर के लिए चली जाना !"

"अभी...."

"जब तुम्हें टेम मिले।"

"अच्छा, जाऊँगी !"

"चला जाना। मैं चलूँ ! तुम्हें रोकना ठीक नहीं है।"

टप्पू आगे बढ़ गया। लच्छो कुछ देर तक थमी रह गई। उसके मस्तिष्क में जाने क्या-क्या विचार घूमते रहे। वह ठगी-सी, मूर्तिवत् खड़ी रह गई। हठात् उसका चेहरा लाल हो उठा। वह घूम पड़ी और घूमकर पण्डित हरिहरनाथजी के घर की ओर चल पड़ी। उसकी गति स्वाभाविक गति से अधिक थी।

पण्डितजी के घर के आँगन में वह धड़धड़ाती हुई घुस गई।

आवाज दी उसने—"पण्डितजी...."

उसकी आवाज गौरा के कानों में पड़ी। उसने झाँका। झाँककर देखा लच्छो को।

मैले कुचैले कपड़ों में लिपटे हुये सौन्दर्य को उसने देखा। कमर पर टोकरी और झाड़ू देखते ही वह समझ गई कि वह वही है, जिसके साथ

टप्पू का विवाह होने जा रहा है। बड़ी देर तक गौरा उसकी ओर देखती रही। उसे महसूस हो रहा था और उसका मन उससे कह रहा था कि वह अवश्य ही उसकी अपेक्षा कहीं अधिक रूपवती है। वह महलों में रहती है तो क्या? लेकिन घूरे में रहने वाले सौन्दर्य की वह समता नहीं कर सकती है।

लच्छो ने अनुमान लगाया। यही गौरा है। उसने गौर से उसकी ओर देखा। उसका गौर वर्ण, उसके शरीर की बनावट, उसका आकर्षक मुखड़ा और उस पर थिरकते हुए सहज आकर्षण की ओर उसने देखा। उसके मन में हठात् ईर्ष्या उत्पन्न हुई। उसका मन जल-भुन गया। यही है वह लड़की, जो उसके टप्पू के मन पर छाई हुई है। टप्पू जिसकी सदा प्रशंसा करता रहता है। टप्पू को इसके परिचय की आवश्यकता क्यों....? परिवार के बड़े-बूढ़ों की कृपा-दृष्टि के बदले में इस लड़की की कृपा दृष्टि टप्पू पर क्योंकर है? लच्छो के मन में यह बात बैठ गई कि दाल में कुछ न कुछ काला अवश्य है।

"मुझे बुलाया है....?"—कर्कश स्वर में पूछा लच्छो ने।

"हाँ!"—गौरा ने अपनी भंग विचारधारा से जाग कर कहा।

"......."

"रुको! मैं अभी आई।"—गौरा ने कहा और वह हट गई।

लच्छो जस की तस खड़ी रही। वह गौरा और टप्पू की समानता के बीच इस कदर खो गई कि उसे तनमन की सुध ही न रही। हठात् उसके होंठों पर मुस्कुराहट खेल गई। यह समाज है। एक विचित्र समाज है, जिसमें केवल पोंगापन्थी को ही स्थान है। इस समाज में एक ब्राह्मण शूद्रा से सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। समाज में वह कुकृत्य नहीं है लेकिन एक शूद्र और ब्राह्मणी....गजब....यह तो कल्पना से परे की बात है....ऐसा कभी नहीं हुआ है। आजतक नहीं हुआ है। ऐसा हो जावे तो

गजब ही है ! होना भी असंभव ही है। गंगा पहाड़ से समुद्र में मिली है। समुद्र से आकर पहाड़ में नहीं मिली है।

लच्छो के मनका सारा मैल धुल गया। उसे अपनी ही गलती महसूस हुई। ऐसी गलती पर उसे मन ही मन हँसी आ गई। क्रोध और ईर्ष्या से भरा हुआ उसका चेहरा खिल उठा।

"मैंने सुना है, तुम्हारी शादी टप्पू से तय हो गई है !"—उसने गौरा के बोल सुने—"यह सुन कर मुझे बड़ी खुशी हुई। टप्पू एक सीधा सादा अच्छा लड़का है। पढ़ाई-लिखाई की तरफ उसका ध्यान है। पढ़-लिख कर आदमी बहुत कुछ करता है। उसे पढ़ने-लिखने देना। यही कहने के लिये मैंने तुम्हें बुलाया था। लो इस खुशी में मैं तुम्हें यह इनाम देती हूँ।"

गौरा ने अपने हाथों पर रखी हुई साड़ी उसके हाथों पर उछाल दी। लच्छो का मन गौरा के प्रति अगाध श्रद्धा और प्रेम लेकर आया। उसके नयन सजल हो उठे।

"मेरी बड़ी तपस्या का फल है।"—लच्छो ने बड़े ही रुंधे गले से कहा।

"भगवान तुम दोनों को सुखी रक्खे।"—गौरा ने रुँधे गले से कहा—"उम्मीद है, तुम मेरी कही हुई बात का ख्याल रखोगी।"

"जरूर....छोटी मालकिन....आपका हुकुम सर आँखों पर है।"

लच्छो की पलक गौरा के प्रति श्रद्धा और आदर से झुक गई थीं। अतएव वह न देख सकी कि उसकी भी आँखें भर आई हैं। एक अज्ञात मार्मिक वेदना से उसका भी हृदय कसकर, पिघलकर आँखों की राह बाहर बह जाने के लिये उमड़ पड़ा।

गौरा उल्टे पाँव लौट गई।

लच्छो भी साड़ी सम्भाल पुलकित मन से आँगन से निकल कर अपने काम पर अपनी राह आगे बढ़ गई।

एक सौ चौबीस

ऊपर जाकर गौरा अपने कमरे में बैठ गई। सामने खुली पड़ी हुई पुस्तक पर पुनः उसने निगाह डाली। पढ़ने में मन लगाने की कोशिश की, पर फिर भी मन न लगा। सुबह से टप्पू के जाने के बाद उसके मन में हलचल मची हुई है। बार-बार वह अपने मन की भावनाओं को, अपने मन के उमड़ते हुये भावों को सम्भालने की रोकने की चेष्टा करती पर मन पर वह काबू ही न पा रही थी। उसे जाने क्या हो गया था ?

टप्पू के मुँह से यह सुनकर कि उसका विवाह हो चुका है, वह इतनी विचलित हो उठी कि उसे अपने आप पर भी आश्चर्य हुआ। टप्पू की इस बात से उसके मन में एक अज्ञात पीड़ा की लहर दौड़ पड़ी। उसका मन कसक उठा, वह नहीं चाहती थी कि टप्पू का इतने शीघ्र विवाह हो ? पर क्यों ? इसका कोई उत्तर उसके पास न था। हाँ, उसके मन में इससे पीड़ा अवश्य थी।

टप्पू की होनेवाली पत्नी को देखा।

अब उसके और अपने बीच उसका अन्तर्मन तुलना कर उठा। एक प्रकार से मन ही मन वह अपने को लच्छो से कम ही समझ रही थी। उसके मन में यह कल्पना जोर पकड़ गई कि लच्छो उससे कहीं अधिक सुन्दर है। उससे कहीं अधिक सौभाग्यशाली है। वह शूद्र है, हरिजन है, तो क्या हुआ, पर फिर भी उससे आगे ही है।

रहरहकर टप्पू का चेहरा गौरा की आँखों के आगे झूल उठता था। जिस दिन से उसने टप्पू को देखा है, उसी दिन से ही जाने क्यों उसके मन में टप्पू के प्रति एक अटूट आकर्षण की भावना उत्पन्न हो गई और वह सहज ही उसका अधिक से अधिक ध्यान रखने लगी। जाने अनजाने उसके मन में पीड़ा उठती कि टप्पू शूद्र के घर क्यों हुआ ? अतः वह सोचा करती कि टप्पू को उसके ही परिवार में होना चाहिये।

सचमुच यदि टप्पू उसके ही परिवार में होता तो वह क्या करती ? यह प्रश्न जब अनजाने ही उसके मन में उठता, तो वह अपने आप ही

लजा कर रह जाती थी और एक मीठी सी गुदगुदी उसके सारे शरीर में दौड़ जाती थी। एक अवर्णनीय आनन्द से उसका शरीर पुलक उठता था।

अब उसका सारा आनन्द जाता रहा। गौरा को महसूस हो रहा था कि जैसे किसी ने उसकी कोई अनमोल प्रिय वस्तु छीन ली है। जैसे उसके जीवन में एक अदृश्य दुःखद घटना घट गई है।

पुस्तक में गौरा का तनिक भी मन न लगा। वह बैठी ही रह गई।

टप्पू और उसका जीवन कब तक सामने रहेगा? टप्पू ने अपने समाज से ऊपर उठ कर एक रास्ता नया अवश्य अपनाया है, पर कितनी दूर तक चल पावेगा? क्या यह सब वह देख सकती है? नारी का भाग्य सदा अनिर्णीत रहता है। कब कहाँ और किसके साथ उसे कौन से पराये देश चले जाना पड़े? यह विधाता के अतिरिक्त या जन्म कुण्डलियाँ मिलाने वालों के अतिरिक्त और कोई भी नहीं जान सकता है। क्या टप्पू की इस सफलता को वह अपनी आँखों से देख सकेगी? शायद नहीं। गौरा के गुलाबी होठों से एक दीर्घ निःश्वास निकल गई। जाने वह एक या दो बरसों में कहाँ होगी?

टन्-टन्-टन्-टन्-टन् टन्....

घड़ी ने गौरा को चौंका दिया।

चौंक कर गौरा ने देखा—दस बज गया। हड़बड़ाकर वह उठ खड़ी हुई। स्कूल का वक्त हो गया। उसे स्कूल जाना है और अभी तक उसने खाना भी नहीं खाया....लेकिन अब खाना खाने का वक्त ही कहाँ रह गया है? अब समय नहीं है, अन्यथा उसे देर हो जावेगी।

"बिटिया तैयार हो गई?"—दरवाजे पर उसने बूढ़े ताँगेवान की आवाज सुनी।

"हाँ दादा!" —गौरा ने कहा और जल्दी-जल्दी वह अपनी पुस्तकें संभाल कर बाहर आ गई। बूढ़ा ताँगेवान उसकी प्रतीक्षा कर रहा था।

जब गौरा नन्हीं-मुन्नी-सी थी तभी से वह ताँगेवान उसे रोज स्कूल ले जाता और छुट्टी होने पर वापस ले आता था। बूढ़ा ताँगेवान उसे बड़ा प्रिय था। उसके देखते ही देखते वह कितना बूढ़ा हो गया है और वह उसके देखते ही देखते कितनी बड़ी हो गई है।

गौरा नीचे आई।

ताँगे पर बैठी।

ताँगा सड़क पर आ स्कूल की ओर खुदुर खुदुर दौड़ पड़ा। हिच-कोले खाती हुई गौरा की आँखें सर्वत्र देख रही जा रहा थीं। जैसे वह टप्पू की तलाश कर रही हो। हरिजन बस्ती की सड़क पर जब गौरा का ताँगा आया तो गौरा ने देखा—पुलिया पर बैठा हुआ टप्पू लिखने में तल्लीन था।

ताँगा बिलकुल उसके पास आया, तो गौरा का रोम-रोम धड़क उठा। उसकी पलकें झुक गईं। उसका चेहरा लाल हो गया, जैसे शरम से लड़कियों का चेहरा लाल हो जाता है। कनखियों की ओट से वह टप्पू को देख रही थी। उसे आश्चर्य हुआ। बहुत बड़ा आश्चर्य हुआ जब ताँगा टप्पू के पास से निकल कर काफी आगे बढ़ गया और टप्पू ने तनिक भी सिर उठाकर न देखा।

दूर जब ताँगा मुड़ने को हुआ तो उसने देखा टप्पू उसकी ओर देख रहा था। इससे पूर्व कि वह पूरी नजर उसे देख सके, ताँगा मुड़ गया था और स्कूल के निकट बढ़ता जा रहा था।

दृढ़ इच्छा शक्ति के साथ कार्य-क्षेत्र में उतरने वालों के चरण सफलता चूमती ही है। मुश्किल से भी मुश्किल काम उनके लिये आसान हो जाता है जो मन में लगन की जोत जलाकर चलते हैं।

एक सौ सत्ताइस

स्कूल की कक्षा में एक ओर सबसे अलग बैठने वाला टप्पू जिसके स्पर्श का कौन कहे, छाया से भी उसके साथी दूर भागते थे। वह अन्त्यज था। इतना सब होते हुये भी वह अपनी कक्षा में सबसे तेज विद्यार्थी था। शिक्षक जब कभी भी कोई भी प्रश्न करते तो, सटीक और सही उत्तर देने वाला केवल एक टप्पू ही होता। उससे उत्तर पा शिक्षक का मन भर आता। कभी-कभी वह उसकी ओर एकटक देखा करते। उनका भी दिल भर आता, आँखें भर आतीं। संभवतः उनका मन इसलिये दुःखी हो उठता कि टप्पू का जन्म एक अच्छे कुल में न होकर नीच कुल में हुआ है। टप्पू का रूप-रंग, उसके स्वभाव, उसकी बातचीत, उसका व्यवहार सब कुछ बड़ा ही सुशील था लेकिन वह गटर का कीड़ा था गटर का कीड़ा कितना भी सुन्दर क्यों न हो ? (एक तो वह सुंदर माना ही नहीं जाता है), उसे फूलों के साथ रहने का सौभाग्य कभी प्राप्त नहीं हो सकता है !

टप्पू किसी भी दृष्टिकोण से परखने पर भी नीच कुलोत्पन्न न कहा जा सकता था, जबतक कि उसकी जाति की वास्तविकता प्रत्यक्ष न हो। शिक्षक कभी-कभी देखते और अफसोस करते कि विधि का यह कैसा विधान है ?

टप्पू मन लगाकर पढ़ता। गुरुजी जो कुछ भी कहते वह अपने मन में इस तरह से रख लेता कि कोई भी कभी भी जब उससे उस सम्बन्ध में पूछे तो वह तत्काल बता दे।

समय बीतते देर नहीं लगती है। सुख और दुःख के दिन साथ ही साथ चलते हैं। सुख के दो वर्ष दो दिन लगते हैं। दुःख के दो दिन दो वर्ष लगते हैं। समय बीतते देर नहीं लगता है। समय बीतता गया और टप्पू कुछ के लिये भय और कुछ के लिये गुप्त श्रद्धा का पात्र बनता गया। देखते-देखते उसकी परीक्षा का समय निकट आ गया।

इस बीच में लच्छो भी उससे मिली। गौरा से भी उसकी देखा-

देखी हुई, पर उसने अपना समय या अपना ध्यान किसी ओर विशेष रूप से नहीं लगाया। उसकी परीक्षा का समय निकट जो आ गया था।

जसुदिया की जिन्दगी में कोई परिवर्तन न हुआ। टप्पू को कभी वह प्यार करती, तो कभी दुतकारती! खनमन की भी जिन्दगी टप्पू से न मिल सकी। वह अपनी बस्ती के लड़कों के ही रास्ते पर था।

समय के साथ टप्पू और आकर्षक हो गया। यौवन के स्पर्श ने उसके पुरुषत्व को और आकर्षक बना दिया। टप्पू के पास नाम मात्र के ही कपड़े थे, पर वह उन्हें अपने हाथ से साफ करता और पहिनता! साफ-सुथरा रहने लगा वह। उसके स्वभाव में कोई चंचलता या उजड्डपन न आया। पहले जैसा शील स्वभाव उसका था।

टप्पू को पूरी आशा थी कि वह अच्छे नम्बरों से पास होगा। वह चाहता था कि वह एक साथ दो परीक्षाएँ देता कि उसके समय की बचत होती रहे। इसी इरादे को लेकर वह अच्छे-अच्छे आदमियों से मिला। उनकी सिफारिशें उसने लीं। शिक्षा अधिकारियों की अनुनय-विनय की उसने। गौरा ने उससे बताया कि यदि वह अच्छे नम्बरों से पास होगा, तो सरकार की ओर से सम्भवतः उसे छात्रवृत्ति भी मिल जावे और वह बिना किसी के सर का बोझ बने अपनी पढ़ाई जारी कर सकता है।

गौरा के इस उपदेश ने टप्पू को अपने ध्येय की ओर और दत्तचित्त कर दिया।

टप्पू दिन रात एक कर पढ़ाई में जुट गया।

गौरा से इस बीच उसकी बिलकुल भी मुलाकात न हुई। गौरा भी अपनी परीक्षा में लगी हुई थी। एक दो बार लच्छो ने टप्पू को छोड़ने की कोशिश अवश्य की पर टप्पू ने उसे फटकार दिया।

परीक्षा का दिन निकट आया।

जिस दिन परीक्षा होनेवाली थी, उसी दिन सुबह ही सुबह टप्पू

पंडितजी के आँगन में पहुँचा। वह गौरा से मिलना चाहता था और अपनी प्रेरणा की देवी का आशार्वाद प्राप्त करना चाहता था ताकि वह निश्चित रूप से उत्तीर्ण हो सके।

टप्पू की आवाज सुनकर गौरा नीचे आई।

टप्पू ने देखा। गौरा का चेहरा सूखा-सूखा उदास-उदास था। वह चेहरा, जो कल तक मुस्कान से भरा रहता था, एकदम गम्भीर लग रहा था।

"क्या है टप्पू ...?"

"आज से मेरी परीक्षा है !"

"भगवान करें तुम पास हो जाओ।"—गौरा ने फुसफुसाकर कहा—"मेरी भी परीक्षा है। अगर मैं पास हो जाऊँगी, तो तुम्हें मिठाई खिलाऊँगी।"

"........"

"तुम पास हो जाओगे तो मिठाई खिलाओगे टप्पू...?"

हठात् गौरा के इस प्रश्न ने टप्पू को चौंका दिया। चिहुँककर उसने आश्चर्य से गौरा की ओर देखा। उसका सुन्दर चेहरा, उसके शरीर की आकर्षक बनावट की चुम्बक से उसकी निगाहें चिपक गईं।

"आँ टप्पू....?"

टप्पू ने स्वप्न से जागते हुये कहा—"पास हो जाने पर मैं भी आपको मिठाई खिलाता लेकिन....लेकिन...."

"रुक क्यों गये टप्पू ? क्या बात है ?"

"लेकिन"—टप्पू ने साहस बटोरकर कहा—"मैं मेहतर हूँ और आप ब्राह्मण हैं। मेहतर के हाथ की...."

"अरे हाँ !"—घबड़ाकर गौरा के होठों से निकल गया। टप्पू ने देखा गौरा का चेहरा एकदम पीला पड़ गया। चेहरे का रंग उड़ गया।

उसके सुन्दर कजरारे नयन गीले हो आये और पहिली बार टप्पू ने गौरा को अपने कारण दुःखित होते देखा।

"हाँ, यह तो मैं भूल ही गई थी टप्पू!"—गौरा ने रुँधे गले से कहा—"मैं बिलकुल ही भूल गई थी। अच्छा, मैं ही तुमको खिला दूँगी!"

"........"

"जाओ! भगवान करे तुम सबसे अव्वल पास हो!"

टप्पू गौरा के पास से चला आया, पर आज उसका मन पहिली बार गौरा के साथ उलझ पड़ा था। पहिली बार उसे प्रत्यक्ष रूप से प्रतीत हुआ कि गौरा उसे कितना चाहती है। गौरा के मन में उसके प्रति कितना स्नेह है! कितनी दया है!! किस कदर वह उसे चाहती है! उसके पास होने पर गौरा ने मिठाई की इच्छा प्रकट की लेकिन वह यह भूल ही गई कि टप्पू एक ऐसी जाति का है, जिससे स्पर्श की वस्तु को ग्रहण करना तो दूर, उसकी छाया से भी दूर सवर्ण भागते हैं। टप्पू का भी मन दुःखित हो उठा! अपनी क़िस्मत पर अफ़सोस कर उठा वह कि उसकी प्रेरणा की देवी ने किसी वस्तु की इच्छा की और वह उसे न दे सका। देने योग्य रहने पर भी वह असमर्थ ही रहा। अपने बनानेवाले पर उसे मन ही मन क्रोध हुआ कि इससे तो अच्छी मौत थी। ऐसे कुल में उत्पन्न होने की अपेक्षा वह मृत्यु को अधिक पसन्द करता।

टप्पू के मन को बड़ी व्यथा हुई। सारे दिन उसका मन व्यथा से भरा रहा। गौरा की इच्छा हुई, पर इच्छा रहते हुये भी वह अपने सामाजिक बाँधनों के कारण विवश थी। मनुष्य-मनुष्य कहने के लिये आज के युग में एक है। मानवता का पाठ आज सर्वत्र पढ़ाया जा रहा है, लेकिन आज का मनुष्य इतना सब होने पर भी किस क़दर रूढ़ियों से जकड़ा हुआ है, यह वही जानते हैं जो अनुभव कर रहे हैं।

टप्पू अपने मन में एक कसक लिये हुये स्कूल आया।

एक सौ इकतीस

परीक्षा चलती रही।

टप्पू ने खूब ध्यान से परीक्षा में योग दिया। दिन रात उसने एक कर दिया। उसके मन में यह बात जम गई थी कि नीच कुलोत्पन्न है वह, तो क्या हुआ पर वह सबको मात देकर रहेगा। इसी दृढ़ धारणा के साथ वह अपने कार्य में रत था।

लगन से किया हुआ कार्य कभी व्यर्थ नहीं पाता है। लगन जहाँ है, वहाँ असफलता है ही नहीं। सफलता सदा उनके पाँव चूमती है, जो लगनशील होते हैं।

टप्पू की लगन ने चमत्कार दिखलाया और परिणाम यह हुआ कि परीक्षा-फल में टप्पू ही अपनी कक्षा में सर्वप्रथम आया। टप्पू लोगों के लिये आश्चर्य का विषय बन गया। हरिजन होने के नाते कक्षा के उसके साथी जितनी ही उससे नफरत करते थे, इस निर्णय से उतनी ही उनके मन में श्रद्धा उत्पन्न हो गई और इसका परिणाम ही उलट गया। भले ही साथियों की श्रद्धा प्रकट न हो, लेकिन चुपके-चुपके सब उसका लोहा मान ही गये थे।

शिक्षकों की दृष्टि में भी टप्पू का मान बढ़ गया था। प्रधानाध्यक जो पहले पहल टप्पू को स्कूल में भरती होने के लिये उत्सुक देख उसपर झल्लाया था, उसके मन के भाव बदल गये और उसने टप्पू के लिये छात्र-वृत्ति के लिये सरकार से सिफारिश कर दी।

टप्पू की भी खुशी का पारावार न था।

उसकी मिहनत का फल उसे मिल गया था। उसके मन में खुशी के साथ-साथ इस बात का सन्तोष भी था कि उसने गौरा को यह प्रमाण दे दिया है कि गौरा की कही हुई बात का वह कितना आदर करता है और उसकी प्रत्येक बात को वह करके दिखा सकता है।

अठारह-बीस दिन के पश्चात् टप्पू गौरा से मिलने के लिये उत्सुक हो उठा। इस बीच परीक्षा के कारण उसे किसी से बात करने की भी

फुरसत न थी। अपनी मिहनत के अनुकूल उसका फल देखकर इस समाचार को वह गौरा तक पहुँचा देना चाहता था और साथ ही साथ वह यह भी जान लेना चाहता था कि गौरा की परीक्षा का भी क्या हुआ....?

आगे गौरा से वह निर्देशन लेने के लिये भी उत्सुक था। टप्पू यह समझ बैठा था कि वह एक यंत्र मात्र है, जिसका संचालन गौरा के हाथों है। जाने क्यों हर बात वह गौरा की आज्ञानुसार ही करने के लिये इच्छुक रहता था। ऐसा करने में वह अपनी आत्मा में सन्तोष महसूस करता था! ऐसा सन्तोष उसे क्यों होता है? इस प्रश्न का उत्तर स्वतः उसके पास न था, इस प्रश्न का उत्तर स्वतः उसने कई बार प्राप्त करने का प्रयत्न किया, पर इसके अतिरिक्त और कुछ भी उसे सुझाई न पड़ा कि वह गौरा को श्रद्धा से देखता है। गौरा न केवल उसके लिये श्रद्धा का ही प्रतीक है, बल्कि उसके लिये एक प्रेरणा की देवी का भी अवतार है, जो उसे इस गंदगी से, इस नरक से अपनी प्रेरणा का हाथ बढ़ाकर सहारा देकर ऊपर उठाये लिये जा रही है। अपनी अनजानी कल्पना की दुनिया में वह यही देखा करता कि दूर, बहुत दूर पर कोई एक तारिका टिमटिमा रही है, जिसमें बैठी हुई, मुस्कुराती हुई, गौरा उसे बुला रही है। उसे उसके इशारों पर चलना है।

अपनी इस कल्पना में ही टप्पू को आनन्द मिलता था।

स्कूल से लौटकर आने के बाद टप्पू की आँखों के आगे गौरा का ही चित्र नाच रहा था। उसका मन कह रहा था कि इसी तरह वह जीवन-भर गौरा की ही छाया में रहे, उसकी ही प्रेरणा प्राप्त करता रहे, उसके ही निर्देशन में चलता रहे, तो उसका वह जीवन कितना सुफल न हो जावे!

हठात टप्पू को ख्याल आया। मुस्कुराती हुई गौरा का चित्र उसकी आँखों के आगे आ बोल उठा—

एक सौ तैंतीस

"पास हो जाने पर मिठाई नहीं खिलाओगे, टप्पू...?"

"मिठाई !"

टप्पू अवाक्, मूर्तिवत् रह गया।

उफ़ ! गौरा उसे कितना चाहती है। कितनी ललक से उसने यह बात न कही होगी...लेकिन वह हरिजन है, शूद्र है, मेहतर है और गौरा ब्राह्मण है ! ब्राह्मण-पुत्री है वह ! भला वह मिठाई उसके हाथ से कैसे ग्रहण कर सकती है ! उसकी छू हुई मिठाई का स्पर्श भी वह नहीं कर सकती है। मिठाई की बात तो दूर है, देवता का प्रासाद भी वह टप्पू के हरिजन होने के कारण उसके हाथ से ग्रहण नहीं कर सकती है।

टप्पू का मन तिलमिला उठा। पहली बार उसे अपने मन पर घृणा हुई। अपनी जाति पर घृणा हुई। उसे दुःख हुआ कि भगवान ने उसे कहाँ ला टपका।

टप्पू की आँखों में आँसू आ गये। उसकी आँखों से अनजाने ही नीर बह पड़ा। काश ! वह गौरा की इस इच्छा की पूर्ति कर सकता ! आज वह गौरा को अपने हाथ से ले जाकर मिठाई दे सकता और गौरा हँस कर मिठाई को खा सकती ! उफ़ ! दोनों इन्सान हैं। गौरा भी इन्सान है और वह भी इन्सान है। इसके बावजूद भी दोनों के बीच कितनी बड़ी दीवार खड़ी हुई है कि दोनों एक दूसरे का स्पर्श भी नहीं कर सकते हैं।

मनुष्य मनुष्य के बीच यह कितनी बड़ी विडम्बना है।

यह कैसे मनुष्य के नियम है ?

यह कैसा मनुष्य का धर्म-कर्म है ?

यह कैसी उसकी प्रेरणा है ? यह कैसे उसके कृत्य हैं ? किसने यह नियम बनाये ? किसने मनुष्य मनुष्य के बीच ऐसी दीवार खड़ी कर दी है ? टप्पू को याद आया कि यह दीवार आज से ही नहीं अनादिकाल से ही दोनों के बीच खड़ी हुई है। ब्राह्मण और शूद्र दोनो मनुष्य होने

के बावजूद भी सैकड़ों बरसों से एक दूसरे से दूर-दूर भाग रहे हैं। एक दूसरे की छाया से अलग ही है। इस नियम को तोड़ा नहीं जा सका है। यह नियम हिमालय की तरह अब भी दोनों के बीच अटल खड़ा हुआ है। इस दीवार को मनुष्य आज तक नहीं तोड़ पाया है।

टप्पू के मन में यही सब सोच-सोचकर बड़ी व्यथा उठती रही। इस व्यथा से उसका मन कसकता रहा, पर इस पर भी जाने क्यों उसके मन में एक अज्ञात-सी प्रेरणा उठी और उसने अपने डिब्बे को टटोला। उसका एक टिन का डिब्बा था, जिसमें वह जसुदिया या अन्य किसी से कुछ भी पैसे पाता था, तो उसमें रख देता था।

उस डिब्बे को टटोला उसने और अपनी एकत्रित कुल पूँजी को उसने निकालकर गिना। कुल चार रुपये तेरह आने थे। इतने पैसे उसके लिये पर्याप्त थे। सब पैसे मुट्ठी में दबाकर वह शहर की ओर बढ़ गया और उसने दो रुपये की मिठाई ले ही ली।

यह जानते हुये भी कि उसकी स्पर्श की हुई किसी भी वस्तु को ब्राह्मण कुल का कोई भी सदस्य छू भी नहीं सकता है, वह उस मिठाई को लेकर गौरा के घर की ओर बढ़ गया। उसने तय कर लिया है। कि दूर से ही गौरा के चरणों पर वह उस मिठाई को रख देगा और गौरा का आशीर्वाद पाने के बाद उसे स्वतः उठा लेगा और इसके बाद उस मिठाई को वह अपनी ही बस्ती के तमाम लोगों में बाँट देगा।

इसी उद्देश्य से वह मिठाई को बड़े ही जतन से सम्भालकर लौट आया। दोपहर का समय था। टप्पू को पूरी आशा थी कि गौरा से उसकी मुलाकात अवश्य ही होगी, इसलिये कि दोपहर में अक्सर पडित जी घर में ही न रहते थे।

टप्पू पण्डितजी के घर में घुसा। आँगन में आकर वह ठिठक गया और उसने आवाज देने के लिये अपने अधर हिलाये ही थे कि सामने ही गौरा उसे नजर आ गई।

"क्या है...."—गौरा ने पूछा।

टप्पू की बाँछें खिल गईं।

बोला—"मैं अव्वल नम्बर पास हो गया हूँ।"

"शाबाश...."

"और मिठाई लाया हूँ।"

"मिठाई...."

गौरा ने टप्पू के हाथों में रखे हुये बड़े से दोने को देखा। वह एक कट उस दोने की ओर देखती रह गई। टप्पू के हाथ बढ़ गये आगे, पर वह उस मिठाई के दोने को नीचे जमीन पर न रख सका। उसके हाथ बढ़े ही रह गये। उसकी निगाहें गौरा की निगाहों से टकरा गईं। उस पर जादू-सा हो गया और वह भी अपलक गौरा की ही ओर निहारता ही रह गया।

गौरा भी एकटक उसकी ही ओर देखती रह गई।

दोनों की निगाहें टकरा रहीं थीं।

दोनों तन-बदन की सुधि भूल गये।

दोनों की निगाहें एक दूसरे के लिये चुम्बक बनीं हुई थीं।

गौरा के चेहरे के भाव बदले। वह एक बारगी ही ऊपर से नीचे तक काँप उठी। उसकी निगाहें टप्पू के आगे बढ़े हुये हाथों पर ही थी, जिनपर मिठाई का दोना रक्खा हुआ था।

टप्पू को इतना होश न रहा कि वह उस दोने को नीचे रख दे और उसके बाद उसे गौरा का ही प्रसाद समझ कर उठा ले। वह जिस भावना से आया था, जिस कल्पना से उसने मिठाई खरीदने का साहस किया था, उस कल्पना को, उस विचार को वह बिलकुल ही भूल गया। बुत बन गया था वह।

गौरा, वह अपनी सुधबुध भूल गई थी।

दूर पर से धीमी-धीमी ध्वनि टकरा उठी उन दोनों के बीच।

एक सौ छत्तीस

"मेरो तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई...."

संभवतः दूर पर किसी घर का रेडियो खूब जोर-जोर से बज रहा था।

गीत की धीमी धीमी लय ने दोनों की रही-सही सुध-बुध भी छीन ली और दोनों अपनी-अपनी मान-मर्यादा को भूल गये।

टप्पू देख रहा था और देखने के बाद भी उसे आश्चर्य न हो रहा था इसलिये कि वह अपना विवेक, अपनी बुद्धि, सब कुछ खो बैठा था.... उस समय बुद्धि का अस्तित्व उसमें था ही नहीं।

गौरा का एक कदम आगे बढ़ा। फिर दूसरा उठा। तीसरा पग उठा। वह टप्पू के बिलकुल समीप पहुँच गई। उसके इतने समीप वह आज तक न गई थी। कोई भी सवर्ण हरिजन के इतने समीप न गया होगा। गौरा समीप से भी समीप चलती गई। उस समय, उसपर, उसका बिलकुल भी नियंत्रण न था। वह उस लोहे के टुकड़े की तरह हो रही थी, जो बिलकुल बेजुबान, विवश होकर चुम्बक की ओर खिंच, उससे जा चिपकता है। वह अपने को रोक ही नहीं सकता है। उसे अपने-आप खिंच ही जाना पड़ता है।

ठीक इसी तरह गौरा भी खिंचती गई। टप्पू को इसका बिलकुल भी ध्यान न था कि गौरा उसके इतने समीप आ गई है। वह यह भी भूल गया कि वह अछूत है और इस नाते उसे हट जाना चहिये।

गौरा की आँखें खुली ही हुई थीं।

वह पलक तक न ले रही थी। एकटक टप्पू की आँखों से उसकी आँखें टकरा रहीं थीं और मंत्रमुग्ध की तरह वह खिंचती चली जा रही थी।

हठात् वह उसके एकदम समीप पहुँच गई।

उसके हाथ उठे और उसने दोने में से मिठाई निकाल ली। केवल एक ही पेड़ा उसके हाथ आया। उस पेड़े को उठाकर उसने मुँह में डाल लिया।

एक सौ सैंतीस

"तुम्हारे पास होने की खुशी में...."—गौरा के अधर फुसफुसा उठे शब्दों ने तीर का काम किया।

टप्पू सपने से जाग पड़ा।

चिहुँक पड़ा।

दोना उसके हाथ से गिर गया।

वह घबड़ाकर पीछे हट गया।

उसके मुँह से एक लम्बी चीख निकल गई। आँखें फाड़कर रह गया वह? अब उसे होश आया। उसकी स्मरण शक्ति, उसकी चेतना, उसका विवेक अब लौटा! अब उसे वस्तु-स्थिति का भान हुआ। उसने सब समझा। सब देखा। ओह! यह क्या हो गया? यह सब क्या हुआ? एकाएक टप्पू को इस दृश्य पर विश्वास नहीं हुआ।

जब उसने अपनी आँखें पलकों से मलीं और पुनः देखा तो उसे विश्वास हुआ। एक हलकी-सी चीख उसके मुँह से निकल गई और दोना उसके हाथ से छूट गिरा। सारी मिठाई बिखर गई। घबड़ाकर वह कुछ कदम पीछे हट गया। उसके मुँह से आश्चर्य की एक हलकी चीख निकल गई। इस बात की उसने स्वप्न में कल्पना भी न थी और न कोई मनुष्य ऐसी कल्पना कर ही सकता था।

आज तक न ऐसा देखा गया और न सुना गया।

यह अपने ढङ्ग की अनोखी बात थी।

टप्पू की आँखें फटी-फटी-सी रह गईं। एकटक पत्थर की मूर्ति-सा बन वह गौरा की ओर देखता रहा। उसे विश्वास ही न हो रहा था कि गौरा ने सचमुच उसके हाथ पर रखे हुये दोने से मिठाई लेकर खा ली है। क्या सचमुच? टप्पू की निगाहें चीख-चीखकर उसकी आत्मा से कह उठीं—नहीं। नहीं! ऐसी बात नहीं हुई है। उसकी आँखों को धोखा हुआ है। उसने यह स्वप्न देखा है। उसने अपनी कल्पना से ही ऐसा महसूस किया है। गौरा ने ऐसा नहीं किया है। भला! कभी ऐसा

हो सकता है....लेकिन यह दोना....उसकी यह दशा, गौरा का यह सामीप्य !

"प्रेम कुछ नहीं देखता है, टप्पू !"—गौरा ने फुसफुसाकर कहा—"बड़े प्रेम से तुम मेरे लिये मिठाई लाये। मैं इसे ठुकरा कैसे सकती हूँ ? प्रेम ही तो भगवान है। प्रेम से दी हुई शबरी की जूठी बेरें भी भगवान राम ने ग्रहण कर ली थीं। प्रेम में ही राम हैं, टप्पू ! मैं भ्रष्ट नहीं हुई हूँ !"

टप्पू की आँखों में आँसू छलछला आये। आँसुओं की धार गंगा यमुना सी उसकी आँखों से फूट पड़ी।

"लेकिन...लेकिन...मेरी वजह से...."—टप्पू का गला प्रेमावेग से रुँधा हुआ था—"आपका...आपका धर्म भ्रष्ट हो गया है !"

"धर्म...."—गौरा के होठों पर एक विद्रूप हँसी दौड़ गई—"धर्म ढकोसला है ! ढकोसला है ! तुम क्या जानो टप्पू ? मैं खुद देख रही हूँ और यह महसूस करती हूँ कि उच्चकुल की अपेक्षा किसी नीच कुल में मेरा जन्म हुआ होता, तो मैं अपना जीवन सुफल समझती !"

टप्पू आसमान से गिरा।

"आँ....आप यह सब क्या कह रही हैं !"

"हाँ, टप्पू ! धर्म पोंगापंथी के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है, जिसने मनुष्य को मनुष्य से अलग कर दिया है। धर्म ने ही मनुष्य-मनुष्य के बीच में ऊँच-नीच की भावना भर भेदभाव की दीवारें खड़ी कर दी हैं। मैं उच्च-कुल की हूँ तो क्या ? पर तुमसे भी गिरी हूँ !"

"........"

टप्पू की समझ में यह पहेली ही न आई। वह ठगा-सा खड़ा रह गया। यह उसके जीवन में सबसे अद्भुत, सबसे अधिक आश्चर्यजनक घटना थी।

गौरा बड़ी देर तक टप्पू के मुँह की ओर देखती रही। टप्पू के

चेहरे के मधुर-मधुर भीने-भीने आकर्षण से उसका मन मयूर भटक गया था। उसके नयन बड़ी देर तक उलझे रहे।

टप्पू भी बीच-बीच में रह-रहकर गौरा की ओर देख लेता था। वह समझने की कोशिश कर रहा था कि गौरा ने अभी जो कुछ कहा है, वह कहाँ तक ठीक है ?

क्या सचमुच में गौरा के मन की भावनाएँ यहीं हैं ? क्या सचमुच में उसे अपने वातावरण से घृणा हो गई है ? क्या सचमुच में जिस जीवन को वह स्वर्ग समझ रहा है, वह गौरा के लिये नर्क है ?

टप्पू कोई निष्कर्ष न निकाल सका।

अपने मन की कसक को दबाकर रह गया वह। उस समय उसके मन की भावनाएँ जाग्रतावस्था में उसे प्रतीत न हो रहीं थीं। उसे ऐसा आभास हो रहा था कि अब तक जो कुछ उसने प्रत्यक्ष देखा है, वह प्रत्यक्ष नहीं, बल्कि एक स्वप्न है ! वह जाग नहीं रहा है, बल्कि स्वप्न देख रहा है।

"किसी से कहना क्या ? मनकी व्यथा मन ही जानता है।"

गौरा ने फुसफुसाकर कहा और उसके पास से हट गई। टप्पू की निगाहें गौरा पर से हट गईं, पर उसकी आँखों का गीलापन अभी तक न गया था। उसके नयन सजल ही बने हुये थे। गौरा ने असंभव को संभव कर दिया था। उसने टप्पू का स्पर्श कर और उसके हाथ की मिठाई लेकर एक नयी परम्परा को जन्म दिया था। यह एक ऐसा कृत्य था, जिसकी आशा स्वप्न में भी कोई न कर सकता था कि एक ब्राह्मण-सुता एक हरिजन के हाथ की कोई वस्तु स्पर्शकर ग्रहण कर सकती है।

टप्पू चकित सा था।

गौरा ने एक लंबी निःश्वास ली और चुपचाप सिर झुकाये हुये चली गई।

टप्पू को लगभग दस पन्द्रह मिनिट बाद होश आया और तब जैसे

वह स्वप्न चौंका, उसने झुककर बिखरी हुई मिठाई को उठा लिया। बाहर आ गया वह।

अब उसे मिठाई किसी देवी या देवता को चढ़ाने की आवश्यकता न थी। उसकी आराध्य देवी ने स्वतः अपने ही हाथों से उस मिठाई को ग्रहण कर लिया था।

टप्पू गद्गद् था कि उसके अन्तर में भक्ति का अभाव नहीं है और गौरा के प्रति उसके मन में जो अटूट श्रद्धा है, भक्ति है वह साकार रूपमें फलवती हो, उसके सामने आ गई। जिस प्रकार शबरी की भक्ति और प्रेम से प्रभावित होकर भगवान राम ने उसके जूठे बेर ग्रहण कर लिये थे, उसी प्रकार टप्पू की मिठाई भी गौरा ने ग्रहण कर ली थी।

टप्पू ने अब महसूस किया कि सारे धर्म-कर्म मनुष्य के प्रेम के आगे निरीह हैं। मनुष्य के प्रेम की उद्दाम लहरों के आगे नियम और संस्कृति के बड़े-बड़े बाँध भी टूट जाते हैं, बड़े-बड़े पुल टूट जाते हैं!

मनुष्य मनुष्य ही है और इन सब शैतानी बन्धनों के बावजूद भी वह मनुष्य से प्रेम करने ही लगता है। उस प्रेम के पवित्र और पुरजोर झोंकों के आगे कोई भी बन्धन स्थायी नहीं रह पाते हैं।

टप्पू एक नई जिन्दगी के नये सबेरे को देख दुगुने उत्साह से भर गया।

गौरा के कदम काँप रहे थे। बड़ी मुश्किल से वह ऊपर जा सकी। उसकी सारी देह थरथरा रही थी। उसका मन मचला रहा था और आँखों के आगे उसे चिनगारियाँ उड़ती नजर आ रहीं थीं। काँपती हुई वह पलंग पर पड़ रही।

उसे सब कुछ याद आया। उसकी चेतना जागी और उसे होश

आया कि अभी अभी वह क्या कर गुजरी है ! उसने अभी-अभी क्या-क्या किया है ! उसने एक ऐसा कर्म किया है, जो अभी तक किसी ने भी न किया होगा ।

होश आया । चेतना ने बुद्धि को उकसाया और बुद्धि के जाग्रत होते ही गौरा की आँखों में भय झलक पड़ा ।

उफ़ ! उसने यह किया है !

क्या किया है उसने !!

छिः ! छिः !! छिः !!! भला उसे ऐसा करना चाहिए था । गौरा को अपने आप पर घृणा हुई । उसके मन में पश्चात्ताप हुआ कि उसने जो कुछ किया है, वह बड़ा ही अनुचित किया है । एक उच्च-कुल की कन्या होकर उसने यह कर्म किया है । अपने खानदान पर, अपने पिता की इज्जत पर उसने बट्टा लगा दिया है । उसे इस तरह से कभी नहीं करना चाहिए था ।

गौरा के मन में सन्तोष की एक हलकी-सी भावना का उदय हुआ कि उसके इस कृत्य को किसी और ने नहीं देखा है । अपनी इस किस्मत पर उसने अपने को मन ही मन सराहा । यदि किसी ने उसे देख लिया होता, तो गजब ही था ? गौरा काँप उठी कि उस समय क्या होता ? उफ़ ! बिजली की तरह यह बात सारे समाज में फैल जाती ! उसके पिता मुँह दिखलाने योग्य न रह जाते । उसका कुल, प्रतिष्ठा सब गटर में डूब जाती....आज समाज में गर्व से उठा हुआ उनका सिर झुक जाता....आज उसके पिता का हर घर में मान है । प्रत्येक अवसरों पर घर-घर जाकर वह अपने यजमानों का आदर प्राप्त करते हैं । इस शहर के वह प्रसिद्ध पण्डित हैं । लोग उनकी चरणरज ग्रहण करते हैं । आज सारा समाज उनके ही चरणों में सिर झुकाने पर गौरव का अनुभव करता है....जिस दिन इस समाज को मालूम होगा कि महामहोपाध्याय पण्डित हरिहरनाथ शास्त्री की पुत्री ने न केवल एक शूद्र का स्पर्श किया है बल्कि

एक सौ बयालीस

उसके हाथ से मिठाई भी खाई है, तो बम फूटने से जितना तहलका न मचेगा, बल्कि उससे कहीं ज्यादा तहलका यह सुनकर मच जावेगा।

उस क्षण की कल्पना कर गौरा सिहर उठी।

उसकी आँखों के सामने हलके से धुँधले-धुँधले चित्र नाच उठे। उसने देखा कि सैकड़ों आदमी उसके पिता के नाम पर थूँक रहे हैं। उसके पिता का सिर उस जनसमूह के सामने झुका हुआ है। अपराधी की तरह वह खड़े हुए हैं। उनकी सारी मानमर्यादा लुट गई है।

उफ़ !

गौरा ने घबराकर आँखें बन्द कर लीं। दोनों हाथों से उसने अपना मुँह ढाँप लिया। सारी देह थरथराती रही उसकी।

बड़ी देर बाद वह अपने आपको संयमित कर सकी। बड़ी देर बाद वह अपने को सँभाल सकी। उसने जब अपना चेहरा ऊपर उठाया, तो आँसुओं से उसका चेहरा भरा था। मन की पीड़ा और बढ़ गई थी।

गौरा ने सामने से पुस्तक उठाकर उसमें अपना मन लगाने की कोशिश की, आँसू पोंछे उसने और दुःख भरी हिचकियाँ सँभालकर अपना मन उलझाने की असफल चेष्टा की, पर उसका मन ही न लगा। उसका मन अपने में ही, अपने आस-पास के वातावरण में ही, अपनी परिस्थितियों में ही उलझा रह गया।

कहने को तो वह श्रेष्ठ-कुल की है पर आज वह अपने सम्मानित पिता के लिए भी एक भार बन गई है। उफ़ ! यह कैसा उसका समाज है ! कैसी उसके इस समाज की व्यवस्थायें हैं, जहाँ पर नारी को अर्पित करने के साथ-साथ धन भी देना पड़ता है !

उसके पिता ने उसका लालन-पालन कर उसे विवाह-योग्य बनाया। अपनी बेटी को पाल-पोसकर बड़ा किया, सदा के लिए किसी अनजाने को सौंप देने के लिए और यह कहाँ का नियम है ! यह कौन-सी परम्परा

है कि लड़की के जिन्दगी के साथ-साथ रकम भी दी जावे! यह तो पशुता है! गौरा के आँखों के आगे सब कुछ झूल गया।

बात पुरानी नहीं। तीन दिन हुए तब की ही है।

उसके पिता से मिलने के लिए एक व्यक्ति आया। उसके आने पर उसके पिता ने उसे बुलाया। वह गई और उस नवागन्तुक ने उसे ऊपर से नीचे तक घूर-घूर कर देखा। गौरा को यह सब बड़ा बुरा लगा, लेकिन अपने पिता के उपस्थित रहने के कारण वह कुछ न बोली। मौन ही रही आई। उस नवागन्तुक ने जब उसे अच्छी तरह से देख लिया, तो गौरा पिता का इशारा पाकर हट गई, पर वह अपने कमरे में नहीं गई। वहीं दरवाजे की आड़ में छुप गई।

उसने सुना।

"लड़की ठीक ही है, पंडितजी, लेकिन पन्द्रह हजार से कम न हो सकेगा....मेरा बेटा इस साल एम० ए० हो गया है। इतना तो मैं उसकी पढ़ाई में ही फूँक चुका हूँ! इतना बहुत ही कम है!"

"लेकिन पंडितजी...."

"मैंने आपसे कह दिया!"

गौरा ने सुना बड़ी रुखाई से उसके पिता को उत्तर मिला था।

वह ठगी-सी खड़ी रह गई।

उसे मालूम था। उसने सुना भी था कि इस देश में एक ऐसा भी वर्ग है, जो लड़कियाँ बेचता है। लड़कियों को दो-ढाई सौ रुपया में बेचा जाता है। लोग ऐसे व्यक्तियों को नीच समझते हैं, लेकिन यहाँ तो लड़की देने के साथ-साथ और भी मुँह-माँगा रुपया दिया जा रहा है। यह कहने को उच्चकुल है, लेकिन अधमों से भी गया बीता है!

उफ़! नारी की यह कदर है!!

गौरा तिलमिला उठी। उसकी आत्मा को गहरी ठेस लगी और वह मन ही मन विद्रोह कर उठा।

एक सौ चौंवालीस

इसी विद्रोह का वास्तविक रूप उस समय देखा गया, जब टप्पू हाथ में मिठाई का दोंना लेकर उसके सामने आया। टप्पू को देखा उसने और अपने कुल से समता की उसने, तो उसकी विद्रोही आत्मा ने उसे उकसाया कि वह उससे श्रेष्ठ है....प्रेम में भगवान हैं और बड़ी ही लालसा से टप्पू उसके पास आया है....किसी का प्रेम-भरा दिल तोड़ना इस सृष्टि का सबसे बड़ा पाप है !

टप्पू को देखा उसने और अपने आप उसके कदम बढ़ गये। हाथ बढ़ गये और उसने मिठाई ले ली। उसकी आत्मा ने विद्रोह को स्पष्ट रूप से प्रकट कर दिया था।

मनुष्य-मनुष्य एक है और इस मनुष्य की एकता को मनुष्य द्वारा ही बनाये हुए बन्धन नहीं तोड़ सकते हैं। ऊँच-नीच का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है !

गौरा बड़ी बेचैन रही। उसके मन में यही संघर्ष चलता रहा। कभी उसके मन में आता कि उसने जो कुछ किया है, वह ठीक ही किया और कभी उसे अपने आप पर पश्चाताप होता कि इस प्रकार के कर्म से वह अपने पिता का मुँह काला करने जा रही है ! दो धाराओं के बीच उसका चेहरा मलिन पड़ गया। न उसने ठीक से भोजन ही किया और न स्कूल में ही उसका मन पढ़ाई में लगा।

उसने टप्पू को बहुत भूल जाने की कोशिश की, पर वह भुला न सकी। वह स्वयं यह समझ सकने में असमर्थ थी कि उसे टप्पू क्यों याद आ रहा है ? उसे उसका क्या नाता-रिश्ता....? उसके मानस पटल पर इस तरह से उसके चित्र के अङ्कित होने का अर्थ क्या है ? पर वह समझ ही न सकी और टप्पू का मोहक चेहरा उसकी आँखों के आगे झूलता रहा।

सारे समय वह खोई-खोई-सी रही।

उसका मन किसी भी काम में न लग रहा था। वह केवल अपने

ही विचारों में डूबी हुई थी। उसे दुनिया या दुनिया की किसी बात से जैसे कोई मतलब न रह गया हो।

हठात् उसके मन में एक नई भावना का जन्म हुआ।

उसके मन में एक नया विचार आया।

टप्पू यदि किसी उच्च-कुल का होता और उससे गौरा की मुलाकात हुई होती तो....?

इस प्रश्न का जो उत्तर मिला वह गौरा को कंपित कर देने के लिये पर्याप्त था। वह सिहर उठी और इसके साथ ही साथ उसका मन भी एक अवर्णनीय आनन्द से भर गया। उसके रोम-रोम में सिहरन की एक मीठी-मीठी आनन्द की लहर दौड़ गई।

उस समय क्या होता?

गौरा का चेहरा लाल हो गया। उसकी पलकें अपने आप झुक गईं। उसका सिर झुक गया और हठात् होठों पर मुस्कान फूट पड़ी। लज्जा से वह और बोझिल हो गई।

उस समय क्या होता?

फिर उसके मन ने उसे कुरेदा?

"प्रेम...."—गौरा के होंठ अपने आप फुसफुसा उठे। उसके चेहरे पर लज्जा की उभरती रेखायें और प्रगाढ़ हो गईं। उसका अन्तर स्तब्ध रह गया।

सचमुच यदि वह उच्च-कुल का या उसकी समता का होता.... तो....उस समय गौरा उसके लिये कितनी बेचैन होती....उससे मिलने के लिये वह तरसती होती....और जब दोनों मिलते तो उस समय...प्रेम की मधुर-मधुर कल्पनाओं में गौरा बहती रही।

कल्पना के तार जब टूटे और उसे इस बात का ज्ञान हुआ कि यह सब कल्पना ही कल्पना है, तो उसके हृदय में ठेस लगी, उसका चेहरा उदास हो गया।

एक सौ छियालीस

बड़े ही उदास मन से वह स्कूल से वापस आई।

उसका सिर भारी हो रहा था। शरीर सुस्त पड़ गया था। आते ही वह अपने कमरे में लेट रही। महरी ने आकर उसे उठाया।

"तबियत कुछ भारी मालूम पड़ रही है। मैं कुछ खाऊँगी नहीं!"—गौरा ने कहा।

"माँजी पड़ोस में गई हैं। मुझसे कह गई थीं। खैर, आराम करो। मैं जाती हूँ। पण्डितजी आवें, तो कह देना कि पूजा का सामान ठीक कर दिया है। पूजा पाठकर वह भी भोजन कर लें। सब ठीक कर दिया है, मैंने।"

"अच्छा!"—कहकर गौरा ने करवट बदली। उसका मन सुस्त पड़ गया था। और अधिक कुछ सोच सकने का साहस उसमें न था। वह पलकें बन्द किये रही। उसके मस्तिष्क पर बड़ा बोझ पड़-सा गया था। वह पड़ी रही। उसे कुछ होश ही न आ रहा।

बड़ी देर बाद जब उसकी तन्द्रा टूटी, तो उसने अपना शरीर हलका महसूस किया। उसकी थकावट मिट चुकी थी और अपने शरीर में एक नई स्फूर्ति का अनुभव कर रही थी वह।

पलङ्ग से उठी वह। बाहर आई। देखा उसने। रात हो गई थी। घर में कहीं कोई आहट न थी। उसने समझा माताजी अभी नहीं आई हैं, शायद। पिताजी....सम्भवतः वह अपने कमरे में बैठे पूजा कर रहे हों। इसी उद्देश्य से वह पिताजी के पूजा-गृह में झाँकने गई।

—पर उसके आश्चर्य का ठिकाना उस समय न रहा जब कि उसने देखा कि पूजा की सारी सामग्री यथास्थान रक्खी हुई है और इस बात के भी चिह्न हैं कि पूजा हो रही थी, लेकिन पण्डितजी कमरे में न थे।

पूजा छोड़कर वह कहाँ चले गये?

पण्डितजी के लिये पूजा से बड़ा और कौन-सा काम आ गया?

एक सौ सैंतालीस

आज तक कभी ऐसा नहीं हुआ। पण्डितजी पूरी पूजा किये बिना उठते ही न थे चाहे कितना आवश्यक से भी आवश्यक कार्य क्यों न हों?

गौरा को बड़ा आश्चर्य हुआ?

क्या बाहर चले गये?

गौरा की नजर उनके कुर्ते पर पड़ी, जो दीवाल पर टँगा हुआ था। वह समझ गई कि पण्डितजी बाहर नहीं गये हैं, बल्कि आस-पास ही कहीं हैं, पर उसे आश्चर्य इस बात का हुआ कि पूजा से अनायास कैसे उठ गये....?

ताज्जुब करती हुई गौरा अपने कमरे में वापस जा रही थी कि पास के कमरे में कुछ आहट पाकर उसके कदम ठिठक गये। उसे कुछ ऐसा महसूस हुआ कि पास के कमरे में कोई दो आदमी धीरे-धीरे हँस रहे हैं। एक आवाज उसे बड़ी ही परिचित-सी मालूम हुई।

वह आवाज उसके पिता की थी।

ठिठककर उसने देखा, द्वार भीतर से बन्द था। ताज्जुब हुआ उसे। ऐसी क्या बात हुई जो पण्डितजी को द्वार बन्द कर किसी से बात करने की आवश्यकता आ पड़ी।

अनहोनी बात होने पर स्वाभाविक है कि मनुष्य उसका रहस्य जानने की कोशिश करता है। कारण समझने की ओर उसकी जिज्ञासा का उठना स्वाभाविक ही है।

गौरा कुतूहल से भरकर द्वार के पास गई। द्वार की साँसों से उसने देखा कि उसके पिता किसी व्यक्ति से बात कर रहे हैं?

वह इसी प्रेरणा से आगे झुकी। देखा उसने....देखते ही...देखते ही सिहरकर वह हट गई! उसका सारा शरीर एक बारगी ही काँप उठा।

उफ़....

......

एक सौ अड़तालीस

गौरा की आँखों के अँधेरा छा गया !

यह क्या है !

उफ़ !

वह यह क्या देख रही है । हे भगवान् ! उसने यह सब क्या देखा ? क्यों देखा उसने ? उसे लगा कि जैसे उसके पैरों के तले की धरती खिस.. रही है ! धरती खिसक रही है !!

चक्कर आ गया गौरा को और वह गिरते-गिरते बची । गनीमत यह रही कि उसने दीवार का सहारा ले लिया था । गौरा की आँखों के आगे अन्धकार छा गया । उसकी बुद्धि चकरा गई ।

वह घबड़ाकर वहाँ से हट गई और तेजी से अपने कमरे की ओर दौड़ गई । कमरे में जाते ही वह पलङ्ग पर गिर पड़ी ।

उसे इस बात का तनिक भी ध्यान न रहा कि उसका सारा शरीर पसीने से भर गया है और यह बुरी तरह थर-थर काँप रही है ।

उफ़ । गौरा ने बारबार अपनी आँखों को मला । अपने शरीर पर हाथ फेरा कि क्या वह स्वप्न देख रही है अथवा सत्य है, जो कुछ उसने देखा है और वह जाग रही है ।

गौरा को विश्वास हुआ कि वह जाग रही है और उसने जो कुछ देखा है, वह सब सत्य है । बिलकुल सत्य है । उफ़ ! गौरा की आँखें फटी सी रह गईं । उसने जो कुछ भी देखा है, वह एक कटु सत्य है । एक ऐसा दृश्य है, जिसे वह जीवन भर नहीं भूल सकती है । कभी नहीं भूल सकती है !

गजब ! उसने यह सब क्या देखा ? ऐसा दृश्य शायद ही उसे जीवन में कभी देखने मिले । बड़ी से बड़ी आश्चर्यजनक बात हो जाने पर भी गौरा को इतना आश्चर्य न हो रहा था जितना कि उसे इस समय उसे था । उसकी आँखों के आगे वही चित्र एकदम स्पष्ट रूप में आकर थम

गया था। उसके सामने से वह चित्र किसी भी प्रकार से एक पल को भी नहीं ~ट रहा था।

लाख बार उसने उस चित्र को मिटाने की कोशिश की, पर वह मिटा न सकी।

देखा उसने। पुनः-पुनः देखा। उसका कलेजा मुँह में आकर थम गया था।

उसके पिता और उनके साथ में....उनके साथ में....उफ़ ! नाम आने से पहले उसकी जुबान गलकर गिर जावे, तो कितना अच्छा हो !

उस बन्द कमरे में उसके पिता के साथ जसुदिया थी....जसुदिया जसुदिया....जसुदिया....गौरा पर मानो वज्र टूट पड़ा ! जसुदिया, वह औरत, जो टप्पू की माँ है, जो मेहतरानी है....उसका दायरा इतना बढ़ गया कि आंगन से वह ऊपर के कमरे में आ गई और न केवल इतना ही बल्कि उसके पिता के साथ एक कमरे में थी....दोनों हँस रहे थे और कुछ कह रहे थे....उस समय उसने अपने पिता की आँखों में वासना के भाव देखे थे....ओफ्ह ! उस समय उनका वह त्रिपुडधारी चेहरा कितना वीभत्स लग रहा था....कितना डरावना लग रहा था !

गौरा का रोम-रोम चीख उठा। उसके रोम-रोम से हजार-हजार चीखें एक साथ फूट पड़ीं—अब कहाँ गया धर्म ? अब कहाँ गई मान मर्यादा....? अब कहाँ गया मनुष्य के उच्चपन की भावना....अब कहाँ गया ब्राह्मण और शूद्र का भेदभाव ? अब कहाँ गया धर्म-कर्म ? अब कहाँ गई नैतिकता की वह दुहाई ? एक समय तो उसकी छाया से भी पंडित जी दूर भागते हैं। अब वह भावना कहाँ गई ? अब वह कैसे एक ही कोठरी में उनके साथ बन्द हैं ? न केवल बन्द ही है बल्कि एक दूसरे का स्पर्श भी कर रहे हैं ?

क्या यही धर्म है ? यही ब्राह्मणत्व है ? क्या धर्म एक ढोंग है ?

एक दिखावा है ? दिन के उजाले में दुनिया के सामने जो रूप दिखलाया जाता है, क्या वह एक ढोंग है ? एक दिखावा मात्र है ?

हाँ, हाँ, हाँ, हाँ, हाँ !!! हजार बार हाँ। गौरा का रोम-रोम चीख उठा। मनुष्य के धर्म-कर्म, ऊँच-नीच की भावना एक ढोंग है। -क दिखावा मात्र है। मनुष्य के बीच कोई खाई नहीं है....यह ढोंग है केवल, ढोंग... यदि ऐसा नहीं है, तो यह सब है क्या ? यदि मनुष्य अपने धर्म का, अपने बनाये हुये नियमों का पक्का है, तो यह शिथिलता कैसी ? यह अपवाद कैसा ? यह सारी शिथिलता धर्म की आड़ में ? यह अकर्म कहता है कि मनुष्य के बनाये हुये भेद-भाव के नियम एक ढोंग है। एक बहाना मात्र है !

गौरा थर-थर काँप रही थी, ठीक उसी तरह जैसे मलेरिया ज्वर पीड़ित रोगी ज्वर आने के पूर्व थरथर काँपता है।

क्या उसके पिता का जसुदिया से....?

हाँ, हाँ, हाँ, यदि ऐसी बात नहीं है, तो जसुदिया का उसके पिता के साथ इस तरह से एकान्त में रहने का क्या अर्थ है ?

उफ़ ! मनुष्य कितना ढोंगी है। दुनिया को दिखाने के लिये वह क्या-क्या नहीं करता है ! गजब !! किस-किस तरह के प्रपच वह दुनिया को दिखलाने के लिये करता है, और वास्तव में वह है क्या....? इसका स्पष्ट प्रमाण, इसका स्पष्ट चित्र उसने अभी-अभी देखा है ! मनुष्य के इस दोरंगे रूप की क्या आवश्यकता है ?

गौरा का मन घृणा से भर गया।

एक बार जसुदिया ऊपर सीढ़ियों तक गन्दगी साफ करने आई थी उस समय उसके जाने के पश्चात् उस स्थान पर गंगाजल छिड़का गया था, तब कहीं उसके पिता ने उन सीढ़ियों का स्पर्श किया था।

—और इस समय....

दुनिया को दिखाने के लिये उनका एक वह रूप—

एक सौ इक्यावन

—और एक यह रूप !

छिः ! छिः !! छिः !!!

गौरा का मन घृणा से भर गया ।

हठात् उसका चेहरा खिल उठा और उसके होठों पर मुस्कान खेल गई । उसने टप्पू का स्पर्श किया है । उसके हाथ की मिठाई लेकर खाई है । उसने कोई पाप नहीं किया है । कोई पाप नहीं किया है ! उसने अपने पिता की वास्तविकता को देख लिया है और उनके इस असली रूप को देखते हुए, यदि वह ऐसा कर चुकी है, तो कोई दोष नहीं ?

गौरा का मन प्रसन्नता से भर गया । अपने किये पर उसे अब तक जो पश्चाताप था, जो ग्लानि थी, जो खेद था, जो दुःख था, वह सब घुल गया ।

उसका मन हलका हो गया ।

मनुष्य-मनुष्य एक हैं ।

सारे मनुष्य एक हैं । मनुष्य जाति एक है, उसमें नीच-ऊँच, बड़े-छोटे, ब्राह्मण-अब्राह्मण का कोई भेदभाव नहीं है इसलिये कि मनुष्य-मात्र एक अज्ञात शक्ति की प्रेरणा से, एक अज्ञात शक्ति के आकर्षण से घूम-फिरकर फिर एक स्थान पर ही मिलते हैं । छुपकर मिलना जब हो सकता है, तो खुलकर मिलने में रोक कैसी ? छुपा हुआ कृत्य पाप है और खुला हुआ कृत्य पाप होने पर भी पाप नहीं है ?

गौरा के अधरों से सन्तोष की एक लम्बी साँस निकल गई ।

उसका शरीर हलका पड़ गया और पलङ्ग पर ही उसे झपकी आ गई ।

परीक्षायें उत्तीर्ण हो जाने पर भी टप्पू ने अपना क्रम नहीं बदला ।

इसका परिणाम यह हुआ कि वह लिख सकता है और पढ़ सकता है । सड़क पर यह चलता तो अक्सर अखबार के टुकड़े या हाथ

के लिखे रद्दी कागज उसके हाथ पड़ता, तो वह सड़क पर से उन्हें उठाकर ले आता और घर आकर पढ़ता, पढ़ने का अभ्यास करता। न जानने पर किसी राह चलते आदमी से पूछ लेता।

बहुत से बाबू लोग उसे पागल समझते। बहुत से उसे दुतकार देते और बहुत से उसे बता देते। आश्चर्य से उसे देखते। स्नेह उमड़ आता और वह बता देते थे।

टप्पू पुराने अखबारों के टुकड़े, रद्दी टुकड़े पढ़ने के बाद एकत्रित कर लेता और बाद में बेच देता था। दो-चार पैसे उसे मिल जाते थे। गर्मियों की छुट्टियों के कारण स्कूल एक लम्बे समय के लिये बन्द हो गये, पर टप्पू के लिये दूसरा स्कूल खुल गया था। उसके एक नहीं सैकड़ों मास्टर हो गये थे। राह चलता हर पढ़ा लिखा व्यक्ति उसका शिक्षक था। पढ़ते-पढ़ते जब वह अटक जाता और भरसक कोशिश करने पर भी जब वह न पढ़ पाता या पढ़ लेने पर उसका अर्थ न समझ पाता, तो सड़क किनारे खड़ा हो जाता और किसी भी आदमी को रोक लेता। वह शब्द दूर से ही दिखा बड़ी नम्रता से पूछता। बतलानेवाले पहले आश्चर्य करते और फिर जिस प्रकृति के वह होते वैसा व्यवहार करते।

अधिकांश उसकी इस लगन से प्रभावित होकर उसे बतला देते थे।

अभ्यास बहुत बड़ी चीज है। निरन्तर अभ्यास से असम्भव का 'अ' हटाया जाकर सम्भव बनाया जा सकता है। रस्सी के निरन्तर आने-जाने से कठोर पत्थर भी घिस जाता है।

टप्पू के इस प्रयास का आशा से भी बढ़कर फल निकला। पढ़ना और लिखना उसके लिये आसान हो गया।

इस बीच में वह दो बार गौरा से मिलने गया, पर गौरा जाने क्यों उससे नहीं मिली। इसका कोई दूसरा अर्थ टप्पू ने नहीं लगाया इसलिये कि वह अपने आपको गौरा का अनुचर मात्र समझता था। वह

जो कुछ भी है या आगे चलकर जो कुछ भी बनेगा, वह गौरा के ही कारण होगा।

एक महीने के लम्बे समय में गौरा से न मिल सकने के कारण उसके हृदय में तनिक भी यह भाव न आया कि गौरा उसे कम चाहने लगी है इसलिये कि गौरा की चाहत का उसके पास सबसे बड़ा सुबूत था। उसे इस बात पर पूर्ण यकीन था और पूरा-पूरा विश्वास था कि संसार में सब वस्तुओं के प्रति गौरा का प्रेम कम हो सकता है, पर उसके प्रति गौरा के प्रेम की मात्रा कभी भी कम नहीं हो सकती है। यह विश्वास उसके मन में पूर्णतः अटल हो गया था। अपने इस विश्वास के फलस्वरूप ही गौरा से न मिल सकने पर भी उसे विशेष चिन्ता न हुई।

सरवन यदा-कदा उससे मिलता रहा। जब कभी वह घोड़े पर होता तो टप्पू के मिलने पर अपने इस भावी दामाद को रोक लेता। उसके पैर छूता और जो कुछ उसकी जेब में होता, उसे वह टप्पू को भेंट अवश्य दे देता था, पर टप्पू ने किसी का पैसा मुफ्त लेना सीखा ही न था। वह जानता था कि सरवन नशे की ही हालत में इस तरह से कर रहा है। वह जो कुछ सरवन से पाता उसे लच्छो के हवाले कर देता था।

लच्छो की लाज शनै-शनैः घटती जा रही थी। पहले जैसी लाज की मात्रा उसमें न रह गई। टप्पू के साथ वह उसी ढङ्ग से व्यवहार करने लगी थी, जैसे एक विवाहिता स्त्री अपने पति के साथ करती है।

लच्छो के मन का उफरान बढ़ता जाता था। टप्पू को वह छेड़ने की कोशिश करती। उसका रास्ता रोकती, पर टप्पू केवल इधर-उधर की दो चार बातें कर अपने पढ़ने की ही बातों में लग जाता था। उसकी इस हरकत पर लच्छो प्रायः उसपर झल्ला पड़ती थी, पर टप्पू हँस देता था। टप्पू पर लच्छो की किसी बात का रंचमात्र भी प्रभाव न पड़ता था।

"देखती हूँ, पढ़ जाने के बाद कौन-सा तीर मारते हो?"

"हाँ, हाँ, तू देखना !"

"मैं कहती हूँ, हम लोगों की जिन्दगी में इसके सिवाय कोई रास्ता है कि हम लोग झाड़ू और टोकरी लिये फिरें...?"

टप्पू अपनी हँसी से लच्छो की बात की गम्भीरता छू कर देता था। हाँलाकि वह लच्छो की इस बात को बड़ा सटीक मानता था।

उमस ज्यादा थी। बस्ती के अधिकांश लोग मैदान में थे। अधिकांश अपने घरों के सामने की धरती पर पड़े हुये थे और कुछ खुले मैदान में पड़े थे। गरमी की लम्बी रात थी और उस पर से उमस ज्यादा थी।

जसुदिया खनमन के साथ परछी में थी और टप्पू मैदान में था। अपने स्वभावानुसार वह सबसे दूर एकान्त में पड़ा था। बिजली के खंभे के समीप ही वह फटी चादर पर लेटा हुआ था। बिजली के खंभे पर जलता हुआ प्रकाश उस तक भी आ रहा था। उसी प्रकाश में वह एक रद्दी अखबार के टुकड़े को पढ़ रहा था। अटक-अटककर धीरे-धीरे पढ़ता हुआ, वह उसका मतलब समझता जा रहा था।

"लड़की ने अपने बयान में अदालत में कहा कि वह धनराज से प्रेम करती है। धनराज उससे नीची जाति का होने के कारण वह अपने माता पिता की मरजी से उसके विवाह न कर सकी अतएव वह उसके साथ भाग गई। लड़की के इस बयान पर से अदालत ने दोनों को निर्दोष पाकर बरी कर दिया...."

टप्पू ने सब पढ़ा और मतलब समझा। पूरा टुकड़ा पढ़ जाने के बाद यही घटना उसे याद रह गई।

प्रेम !

इन शब्दों पर वह पहली बार बड़ी देर तक सोचता रहा। पहिली बार उसके भी हृदय में उसे कुछ गुदगुदी का आभास हुआ। पहली बार उसे अपने हृदय में मीठा-मीठा स्पन्दन अनुभव हुआ ! पहली बार उसके हृदय में एक अभूतपूर्व अनुभूति का अनुभव हुआ।

उसके हाथ से अखबार का वह टुकड़ा गिर गया।

प्रेम!

क्या सचमुच में प्रेम होता है? टप्पू के मन में हठात् विचार आया कि क्या कभी वह अपने जीवन में प्रेम का अनुभव कर सकेगा? क्या वह कभी किसी को प्रेम कर सकेगा अथवा कोई उससे प्रेम कर सकेगी?

कोई उससे प्रेम कर सकेगी?

यह बात मनमें उठते ही एक मीठा-मीठा सा दर्द टप्पू ने अनुभव किया।

उसकी बड़ी-बड़ी आँखें आकाश की ओर उठ गईं। आकाश में बिखरे हुये असंख्य तारों के बीच नीली-नीली धरती पर वह किसी का चित्र बनाने लगा।

कौन है वह जिसे वह प्रेम कर सकेगा? कौन है वह, जो उसे प्रेम कर सकेगी?

तारों के बीच एक धुँधला सा चित्र बना। उस चित्र को पहिचाना उसने और उसे अपने आप पर आश्चर्य हुआ। वह उस चित्र को पहिचान गया। वह चित्र लच्छो का था।

लच्छो....

उसने अपने मन से पूछा कि क्या वह लच्छो को प्रेम करता है?

प्रेम....?

संभवतः उसे लच्छो से प्रेम नहीं है। वह उसे अनायास संयोग-वश पत्नी रूप में मिल रही है अन्यथा उसके लिये मनमें प्रेम नहीं है। लच्छो उसे प्रेम करती होगी, पर वह लच्छो से प्रेम नहीं करता है!

टप्पू ने अपना मन टटोला पर लच्छो के लिये उसे अपने मन में प्रेम का कुछ भी अंश न मिला। वह तो नैतिकता वश, सरबन की पीड़ा को देखकर लच्छो से उसने विवाह करना स्वीकार कर लिया है।

अनायास बत्ती बुझ गई। संभवतः लाइन खराब हो गई थी। बत्ती

के बुझते ही टप्पू अंधकार में डूब गया। उस सारे मैदान में वही एक बत्ती थी, जिसका प्रकाश वहाँ था। उसके बुझते ही सारे मैदान में और अन्धकार छा गया।

टप्पू की विचारधारा तनिक भी भंग न हुई। वह लीन रहा अपने विचारों में। नीलाकाश के जगमगाते सितारों के बीच उसने एक नई आकृति देखी, एक नया चेहरा देखा। अवाक् रह गया वह।

वह चेहरा....उसने पहिचान लिया था। वह एक नया चेहरा था। उसे पहिचानकर वह काँप उठा। सिहर उठा और बुत सा पड़ रह गया वह। वह चेहरा गौरा का था।

गौरा का चेहरा था। नीले आसमान में सितारों के बीच गौरा का चेहरा पड़ा भला प्रतीत हो रहा था।

उस चेहरे को बड़ी देर तक वह एकटक देखता रहा, पर उसे ऐसा महसूस हो रहा था कि लच्छो का चेहरा तो उसके पास है, पर गौरा का चेहरा उससे दूर बड़ी ही दूर है, जिसे वह शायद ही कभी पा सके।

गौरा, अपने प्रेरणा की देवी को वह सदा अपने ही सामने चाहता था। यदि गौरा उसके समक्ष न रहती, तो शायद ही वह कुछ कर सकता। अभी भी यदि गौरा उसकी प्रेरणा के रूप में उसके सम्मुख नहीं रहती. तो यह निश्चित है कि इस जीवन में शायद ही आगे वह उठ सके।

अपने ही विचारों में टप्पू इतना खोया रहा कि उसे इस बात का पता ही न चला कि कोई उसके बिलकुल समीप आ गया है।

"हुस्स ! सो गये क्या...?"

किसी ने उसे हिलाया तो उसकी तन्द्रा टूटी। अन्धेरा होने पर भी वह उस चेहरे को पहिचान गया। लच्छो थी वह। पहिले की तरह उसे भगा देने की शक्ति, उसे दुतकार देने का साहस अब टप्पू में न था।

"क्या है...?"

"अकेले मन नहीं लग रहा था। तुम्हारे पास खिसक आई !"

"लेट रहो !—" टप्पू ने थोड़ा खिसककर अपनी चादर पर लच्छो के लेटने के लिये जगह बनाई। लच्छो अपने भावी पति के पास लेट गई। टप्पू के साथ इस तरह लेटने का यह पहला अवसर था। उसके शरीर में बिजली सी दौड़ गई।

"तुमको भी नींद नहीं आ रही है ?"—लच्छो ने पूछा।

"हाँ।"—टप्पू ने कहा।

"क्यों....?"

"ऐसे ही कुछ-कुछ सोच रहा हूँ।"

"क्या....?"

"तुम यह सब पूछने आई हो या सोने आई हो ? सोना हो तो चुपचाप सो जाओ, नहीं तो खिसक जाओ।"

लच्छो धीरे से हँस पड़ी—"जवानी सोने के लिये नहीं है !"

"सर पटकने के लिये है ?"

लच्छो को बड़ी जोर से हँसी आई, पर उसने अपना मुँह पकड़ लिया और पेट पर बल देकर हँसी को रोक लिया।

"न।"—उसने कहा—"जवानी की रात बात करने के लिये है। प्रेम करने के लिये है ?"

"प्रेम...?"

"हाँ !"

"यह प्रेम क्या चीज है, लच्छो ?"

"भैय्यारी ! इतना पढ़ गये, पर इतका मतलब भी नहीं समझे हो ?"

"मतलब तो समझता हूँ।" टप्पू ने कहा—"बहुत समझने की कोशिश की है। प्रेम वही है न जो दो लड़कों के बीच होता है। एक लड़का, एक लड़की के बीच होता है !"

"नहीं टप्पू !"—लच्छो बोली धीरे से—"प्रेम का अर्थ आज तक

कोई भी नहीं बतला सका है। ढाई अक्षर प्रेम के जे पढ़े सो पंडत होय ! प्रेम बिना अर्थ का है। यह न देखा जा सकता है, न सुना जा सकता है।"

"तब....?"

"यह केवल किया जाता है ! प्रेम को, आदमी प्रेम करने पर ही जान सकता है। ऐसे नहीं। यह कहने-सुनने की चीज नहीं है !"—लच्छो ने कहा !

"पर यह होता कैसे है ?"

"जब कोई लड़का और लड़की आपस में एक दूसरे को चाहने लगते हैं। एक दूसरे के बिना न रह सकते हों और दोनों को एक दूसरे के बिना अपनी जिन्दगी फीकी-फीकी मालूम पड़ती हो और दोनों दुनिया की परवाह न कर मिलते रहते हों। दोनों एक दूसरे को चिट्ठी लिखते हों ?"

"चिट्ठी ?"

"हाँ !"—लच्छो की आँखों में चमक थी—"एक घर है जहाँ मैं काम करने जाती हूँ। उस घर में एक लड़की है। वो बड़ी ही सुन्दर है, उस लड़की को एक लड़के से प्रेम है। मैंने एक दिन उसे चिट्ठी देते देखा था !"

"क्या दुनिया में सभी प्रेम करते हैं, लच्छो ?"

"हाँ !"—लच्छो ने सगर्व कहा—"दुनिया में सभी प्रेम करते हैं, टप्पू ! हर एक आदमी ने कभी न कभी, किसी न किसी को प्रेम जरूर किया है !"

"तुमने भी किसी से प्रेम किया है, लच्छो।"

लच्छो हँस पड़ी। उसकी आँखें रात के अन्धकार में चमक उठीं। कहा उसने—"प्रेम किया है नहीं ? बल्कि मैं तो अभी भी प्रेम करती हूँ।"

एक सौ उनसठ

"प्रेम करती हो ?"

"हाँ।"

"किससे....?"

"तुमसे बेदर्दी !"—और लच्छो ने अपना शरीर टप्पू पर गिरा दिया। टप्पू हड़बड़ाकर उठ बैठा।

बिगड़ गया वह—"सीधे से बैठते नहीं बनता ! भैंस-सी उचकती क्यों है ?"

लच्छो का मन उदास हो गया। उसकी आँखें भर आईं। अबतक की उसके मन की सारी खुशी काफूर हो गई। उसने टप्पू के पैर पकड़ लिये।

"क्या तुम अब भी मुझे प्रेम नहीं करते हो, टप्पू....?"

"प्रेम....यह न पूछो। मुझे सोचने दो....प्रेम की बात तो एक कोने में रख दो। अब तो तुम जिन्दगी भर के लिये मेरे गले की घण्टी हो गई हो। बजाना ही पड़ेगा। अब प्रेम की बात ही कहाँ उठती है ?"

"तुम्हारी स्त्री होने के नाते मुझे तुम्हारा प्रेम पाने का हक है।"

"इसे मैं कब नहीं मानता हूँ ?"

"तो मुझे तुम सुला दो !"

"दुष्ट ! क्या जरा सी बच्ची हो जो तुम्हें सुला दूँ ! लेट जाओ।"

"तुम्हारी यही बातें तो कलेजा छेद देती हैं, टप्पू !"

"सो रहो ! सो रहो। मुझे भी सोने दो।"

"तुम सो नहीं रहे हो। सोच रहे हो।"

"हाँ।"—टप्पू ने कहा—"मुझे अब न छेड़ो। नहीं तो मैं खुद ही यहाँ से उठकर चला जाऊँगा।"

लच्छो आगे कुछ न बोली। वह मन मसोसकर रह गई और टप्पू प्रेम के ढाई अक्षरों में पुनः खो गया। गौरा का चेहरा तो उसके सामने से हट ही न रहा था। गौरा का अब उसे

और ख्याल आ रहा था। हर एक आदमी अपनी जिन्दगी में किसी न किसी से प्रेम जरूर ही करता है। गौरा भी किसी से प्रेम करती होगी ? टप्पू काँप उठा। उसकी आँखें खुली रह गई। गौरा भी किसी से प्रेम करती होगी ? उसकी प्रेरणा की देवी, उसकी श्रद्धा, उसे भी कोई प्यार करता होगा ?

टप्पू का मन कसक उठा। उसका रोम-रोम तड़प उठा फिर वह जान सके कि कौन है वह भाग्यशाली, जिसे गौरा प्यार करती है और वह गौरा को प्यार करता है ?

क्या सचमुच गौरा किसी से प्रेम करती है ?

गौरा बड़ी हो गई है।

गौरा पढ़ी-लिखी और समझदार है।

किसी न किसी से उसका प्रेम जरूर होगा।

टप्पू का मन कसक उठा। यह जानने के लिये वह बावला हो उठा कि किसे गौरा प्यार करती है ? इस बात से उसका मन बैठ चला। उत्साह उसका साथ छोड़ चला ! उसे लगा कि जैसे उसकी अमूल्य निधि पर डाका पड़ गया है और उसके पास कुछ भी नहीं बचा है। और वह निर्धन हो गया है। वह लुट गया है। उसके जीवन का सब कुछ उससे लूट लिया गया है।

टप्पू का हृदय स्तब्ध रह गया। इन विचारों ने उसे बुरी तरह से बेचैन कर दिया। यह एकदम नये विचार थे। नई भावना थी जिस पर उसने कभी भी न सोचा था।

रह-रहकर वह करवटें बदलने लगा। उसे एक पल के लिये भी चैन न पड़ रही थी। उसके मनमें रह-रहकर शूल की तरह एक ही प्रश्न उठने लगा कि क्या सचमुच गौरा किसी से प्रेम करती है ? क्या सचमुच गौरा को किसी से प्रेम है ? हाँ, उसे किसी से प्रेम अवश्य ही होना चाहिये इसलिये कि चाहे वह नारी हो या पुरुष....अपने जीवन में

एक सौ इकसठ

वह किसी न किसी से एक बार प्रेम अवश्य करता है। प्रेम होना मनुष्य के जीवन में अनिवार्य है। तो गौरा किससे प्रेम करती है? कौन है वह जिससे वह प्रेम करती है? कौन है वह? कौन है वह? लाख-लाख सुइयाँ उसके हृदय में छिद गईं।

गौरा के प्रेमी को जानने के लिये वह उत्सुक हो उठा और सच तो यह था कि उसका मन ईर्षा से भर गया। उसका हृदय छटपटा उठा। वह भी मनुष्य है और मनुष्य होने के नाते उसे भी प्रेम करने का अधिकार है। यह सच है कि गौरा को वह श्रद्धा की दृष्टि से देखता है और लच्छो को वह प्रेम नहीं करता है।

तीर की तरह उसके मन में प्रश्न उठा कि क्या वह गौरा को प्रेम नहीं कर सकता है?

प्रेम और गौरा से....एक बौना चाँद को छूने की चेष्टा करे। एक गटर का कीड़ा सुन्दर फूल का रस खींच सके? भला यह कभी हुआ है। भला यह कभी संभव हुआ है! लोगों की गन्दगी को उठानेवाला एक राज-गद्दी पर कभी बैठा है।

टप्पू का मन कसक उठा।

अनजाने ही उसके नयन सजल हो उठे।

वह पीड़ा से भर गया। उसके हृदय में पीड़ा हुई और वह छटपटा उठा। उसने देखा, उसकी प्रेरणा को, उसकी श्रद्धा को, उसकी आशाओं के केन्द्र को कोई छीने लिये जा रहा है। उसके प्राण कोई निकाल कर लिये जा रहा है।

नहीं! नहीं!! नहीं!!!

वह अब जीवित नहीं रह सकता है!

टप्पू के मुँह से चीख निकलने ही वाली थी कि लच्छो की उपस्थिति से उसके अधरों ने उस चीख को कसकर जकड़ लिया और उसे बाहर ही न निकलने दिया।

एक सौ बासठ

टप्पू छटपटा कर रह गया !

उफ़ ! अभी तक वह कितने बड़े धोखे में था। एक ऐसा परदा उसके सामने पड़ा था जिसे उसने देखा न था कि उस परदे के पीछे भी और कोई दृश्य हो सकता है। गौरा का सलोना चेहरा और आकर्षक हो उसकी आँखों के आगे थिरकने लगा। वह एकटक देखता रहा। उसे लगा कि गौरा में ही पृथ्वी का सारा सौन्दर्य आकर बस गया है। जो कुछ भी है इस सृष्टि में है, वह गौरा ही है।

टप्पू ने अब महसूस किया कि वह गौरा के बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता है। इस लड़की के बिना वह एक पल भी नहीं रह सकता है। उसके प्रत्येक कार्यकलापों का संचालन सूत्र उसके ही हाथ में है। वह एक कठपुतली मात्र है जिसके सूत्रों का सचालन गौरा के ही हाथों में है। गौरा के बिना जिसकी जिन्दगी के एक पल का भी संचालन नहीं हो सकता है, उसका नाम टप्पू है।

टप्पू के मन में हठात अपने ही आप से यह प्रश्न उठा कि क्या वह सचमुच में गौरा से प्रेम करने लगा है ? इस प्रश्न पर चिहुंक पड़ा टप्पू और उसने अपने मन का कोना कोना ढूँढा। उसे अपने मन के रेशे-रेशे में गौरा ही गौरा मिली। अब समझा वह ! इतने दिनों तक वह गौरा को अनजाने ही प्रेम करता रहा है और इसीलिये उसकी प्रत्येक बात का उस पर अटूट प्रभाव पड़ता रहा है।

वह गौरा से प्रेम करता है।

वह गौरा से प्रेम करता है !

अब इस यथार्थ रूप को देखकर टप्पू दंग रह गया। अनजाने ही उसकी आत्मा में गौरा के लिये प्रेम हो गया है पर उसने यह कभी भी नहीं सोचा कि गौरा भी उससे प्रेम करती होगी ? वह आँखें फाड़कर रह गया—क्या सचमुच में गौरा उससे प्रेम कर सकती है ? भला यह

कभी संभव हो सका है। पहाड़ ने कभी धरती को चूमा नहीं है बल्कि धरती ने ही सदा पहाड़ को चूमा है।

टप्पू और गौरा उसे प्रेम कर सके।

सूरज पूरब से पश्चिम जाता है। पश्चिम से पूरब नहीं। यदि ऐसा होने भी लगे तो भी गौरा उसे प्रेम नहीं कर सकती है! उफ़! भला! इस दुनिया में कभी यह सुना भी गया है कि एक ब्राह्मण की लड़की एक मेहतर के बालक से प्रेम करती है और दोनों पति-पत्नी के रूप में हो सकते हैं। सूरज ठण्डा हो सकता है। चाँद गर्म हो सकता है, पर यह कभी नहीं हो सकता है? कभी नहीं हो सकता है? कभी नहीं हो सकता है? सृष्टि के अन्त तक भी ऐसा नहीं हो सकता है?

अन्ततः ऐसा कभी नहीं हो सकता है?

क्या मनुष्य मनुष्य एक समान नहीं हैं? क्या मनुष्य-मनुष्य का आपस में प्रेम नहीं हो सकता है? क्या प्रेम जाति-पाँति के बन्धनों का भी ध्यान रखता है? कभी नहीं प्रेम अनन्त है। अनादि है। उसे कोई नहीं रोक सकता है।

अपने इन पलटे हुये विचारों से राहत मिली। उसकी छटपटाहट कुछ कम हुई और उसने अपने मन में कुछ शान्ति महसूस की।

यह सब तो ठीक है और यह सब उसी समय विचारा जा सकता है जब कि गौरा उसे प्यार करती हो। यह सब कुछ गौरा पर ही निर्भर करता है। यदि गौरा को उससे प्यार न हुआ तो वह कर ही क्या सकता है? यदि गौरा किसी और से प्रेम करती हो?

किसी और से प्रेम?

हाँ!

गौरा को और किसी से प्रेम हो सकता है। भला वह उससे प्रेम क्यों करेगी? क्या उसके अपने वातावरण में टप्पू की कमी है। उसके अपने समाज में टप्पू से एक से एक बढ़कर लड़के होंगे। रूप रंग, पढ़ा

लिखाई और पैसे में। टप्पू के पास क्या धरा है ? ऐसी कौन सी चीज है उसके पास, जिस पर गौरा रीझ सकती है ?

टप्पू के मन में सुईयाँ छिद गईं।

सड़क पर झाड़ू लगाने वाले लड़के को महलों की राजकुमारी का प्यार प्राप्त नहीं हो सकता है।

टप्पू के मन में बड़ी पीड़ा हुई। पहली बार उसे अपने वातावरण पर अफसोस हुआ। काश! वह इस वातावरण में न होता···किसी अच्छे खानदान में, किसी सम्पन्न परिवार में उसका जन्म हुआ होता तो संभवतः यह उसकी आज स्थिति न होती और तब वह गौरा को सरलता से प्राप्त कर लेता....आसानी से वह उसे प्राप्त कर लेता...तब उसकी आराधिका एक पल के लिये भी उसकी आँखों के आगे से ओझल न हो सकती....ऐसी स्थिति में गौरा भी उसे प्यार कर गर्व का अनुभव कर सकती किन्तु ...

टप्पू अपना कलेजा थामकर रह गया।

लच्छो पास लेटी हुई उसकी सब हरकतें देखती हुई उसके मनोभावों को समझने का प्रयास कर रही थी पर उसकी समझ में कुछ भी न आया। वह केवल इतना ही समझ सकी कि टप्पू के मन में व्याकुलता है। वह दुखी है और किसी बात को याद कर उसके मन के घाव हरे हो गये हैं।

बड़ी देर तक वह अपने को सँभाले रही पर उससे न रहा गया।

शान्ति भंग की उसने—"क्या बात है ? क्या रात करवटें बदल कर ही काट दोगे ?"

टप्पू झल्ला पड़ा—"तू क्यों जाग रही है ? क्या मेरी बराबरी करने के लिये मेरे पास तू लेटी है ?"

टप्पू की फटकार सुनकर लच्छो चुप हो गई पर उसका मन भर आया। वह समझ गई कि अभी उसकी तपस्या पूरी नहीं हुई है और

टप्पू का प्यार पाने के लिये उसे बहुत बड़ी तपस्या करना अभी शेष है। अभी उसे और साधना करना पड़ेगी तब उसे टप्पू का प्यार प्राप्त हो सकेगा।

लच्छो की आँखें भर आईं कि वह टप्पू को कितना प्यार करती है, पर टप्पू है कि उसके प्यार का बिलकुल भी कद्र नहीं करता है। कभी भी तो उसने यह कहा होता कि वह उसे प्यार करता है। कभी भी तो उसने प्यार के दो बोल कह दिये होते तो कम से कम उसके मन को सन्तोष तो हो जाता। टप्पू के यह दो बोल ही उसे जिन्दगी भर हँसी खुशी से जीने के लिये पूर्ण पर्याप्त होता।

संभवतः टप्पू के पास उसके लिये कोई कदर नहीं है। घर की मुर्गी दाल बराबर होती है। लच्छो की आँखें भर आईं और टप्पू की ओर पीठकर अपना मुँह ढाँप कर चुपके-चुपके आँसू बहाने लगी।

जिन आशाओं के साथ वह टप्पू के पास खिसककर आई थी, उसकी वह सारी आशाएँ धूल में मिल गईं। चोरी-चोरी वह जिन सपनों को मनमें लेकर उसके समीप आई थी वह सपने मिट्टी में मिल गये। जबतक बत्ती बलती रही उसके मन में कसक उठती रहा और वह दूर बड़ी ही दूर से उसकी तरफ ताकता रही। एकटक देखती रही। मन ही मन वह मना रही थी कि बत्ती किस प्रकार बुत जावे। भाग्य से बत्ती बुत गई। उसे मुँह-मागी मुराद मिल गई। अन्धकार होते ही वह आगे खिसक गई और अपने टप्पू का उसने पा लिया पर अपने मन की मुराद वह पूरी न कर सकी।

लच्छो मुँह फेरकर आँसू बहाती रही। शायद उसके जिन्दगी में यही है। उसे अपनी जिन्दगी में रोना ही रोना लिखा है। मन की कसक को दबाकर लच्छो लेटी रही। अपने ही दुःख में वह इतनी भूली रही कि उसे यह याद ही न रहा कि उसको नींद आई भी है या नहीं वह आँखों में आँसू लिये जागती ही रही है। उस समय वह हड़बड़ा-

कर उठ बैठी जब कि सूरज की सफेदी पूरब के आसमान पर आई और दिन निकलने को हुआ।

घबड़ाकर वह उठ बैठी और पलटकर उसने टप्पू की ओर देखा। वह सो रहा था। प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न था। अस्त-व्यस्त मुद्रा में टप्पू और भी आकर्षक लग रहा था। कुछ देर तक उसका रूपपान करने के पश्चात् लच्छो ने श्रद्धापूर्वक अपने भावी पति के चरण स्पर्श किये और उसी आँचल में अपनी सजल नयन कोरों को पोछकर वह टप्पू के पास हट गई कि दिन का उजाला होने पर मैदान मे बिखरे हुये और लोग उसे देख न लें। वह टप्पू की तो घोषित हो ही चुकी थी पर शादी से पहले इस तरह का व्यवहार देख लोग उसे बेहया कहने में न चूकेंगे। यही सोचकर लच्छो उसके पास से हट गई। उसका वश चलता तो वह उसके साथ से एक दिन के लिये भी जुदा न होती।

सूरज का उजेला बिखरने पर टप्पू ने आँखें खोलीं। उठा वह और अपना मैला-कुचैला चादर समेट कर घर आया। उसे अपना शरीर भारी मालूम पड़ रहा था। उसे सुस्ती महसूस हो रही थी। रात की सारी चिन्ताओं का उसके मनपर हरा प्रभाव पड़ा था। अपने मन की सारी बातों के धुँधले-धुंधले चित्र पुनः उसकी आँखों के आगे झूल गये। इन चित्रों में ही वह पुनः खो गया।

उसके मन में बड़ी निराशा छा गई।

उसके मन का सारा विश्वास डोल उठा।

उसे पूरा विश्वास हो गया कि गौरा उसे कदापि सपने में भी प्रेम नहीं कर सकती है। गौरा का प्रेम पाने के लिये उसके समकक्ष बनना पड़ेगा। जो उसके लिये असम्भव है।

असम्भव है।

मनुष्य के लिये सब कुछ भी असम्भव नहीं है।

गौरा के लिये वह सब कुछ कर सकता है।

गौरा के लिये उसे प्रतिष्ठा प्राप्त करनी होगी, धन प्राप्त करना होगा जो वह अपने इस जीवन में कभी भी नहीं कर सकता है।—और क्या तब तक गौरा उसके लिये बैठी ही रहेगी। यह तो हो नहीं सकता है। गौरा जवान हो गई है और बहुत सम्भव है कि उसका विवाह कहीं पक्का कर दिया गया हो।

बुत की तरह टप्पू को बैठे देख जसुदिया चिल्ला पड़ी।

"भूत की तरह सबेरे-सबेरे से क्या बैठा है? जा खनमन के लिये दो-चार रोटी बासी फूसी पंडितजी के यहाँ से माँग ला!"

जसुदिया की तेज और कड़ी आवाज ने टप्पू को सचेत कर दिया। वह खड़ा हुआ और चुपचाप बाहर आकर वह पंडित हरिहरनाथ शास्त्री के घर की ओर चल पड़ा। जिस घर के टुकड़ों पर माँग-माँगकर पल रहा है, उस घर की किसी लड़की का प्रेम पा सकना उसके लिये सर्वथा असंभव है। मनुष्य के लिये जिस प्रकार आसमान के तारे तोड़ लाना असंभव है, उसी तरह से यह बात भी असंभव है।

धीरे-धीरे उदास मन से टप्पू पंडित जी के घर में आया।

सदा की तरह आवाज देकर उसने बुलाया। इस बार उसने धीमे और घबराये हुए स्वर में आवाज दी। उत्तर न मिला तो उसने पुनः आवाज दी। फिर भी कोई उत्तर नहीं आया।

पुनः आवाज दी उसने।

उसकी समझ में ही न आया कि क्या बात है? घर के दरवाजे खुले हुये थे? क्या घर में कोई नहीं है? गौरा कहाँ गई? इतने सुबह तो वह स्कूल भी नहीं जा सकती है?

अन्ततः वह गई कहाँ?

टप्पू ने पुनः आवाज दी, पर उसे कोई उत्तर न मिला।

घर के द्वार खुले थे। सर्वत्र सन्नाटा था। टप्पू ने साहस कर इस बार पुनः पुकारा, पर कोई उत्तर न आया। उसकी समझ में ही न आया कि

यह सब क्या हो रहा है? यह कौन सा नया तमाशा हो रहा है? आज तक तो ऐसा नहीं हुआ। टप्पू के मन में आशंका हुई कि बात क्या है? कौन सी बात हो गई है? आज तक तो ऐसा नहीं हुआ? उसके मन की यह आशंका और प्रबल हो गई।

आगे बढ़कर उसने आवाज दी तब कहीं उसे सीढ़ियों पर कुछ आहट मालूम हुई। आगे झुककर देखा उसने, वह गौरा थी। गौरा को देखते ही उसका चेहरा खुशी से खिल उठा। उसे जैसे खोई हुई जिंदगी मिल गई।

टप्पू ने एक पल गौरा की ओर देखा फिर पलकें झुका लीं।

"मैं बड़ी देर से आवाज दे रहा हूँ।"

उसने कहा।

"हां"—गौरा का स्वर बड़ा ही धीमा था—"घर में कोई भी नहीं है। मैं ऊपर दुमंजिले में थी। तुम्हारी आवाज सुनी तो मैं दौड़ी आ रही हूँ। कहो, क्या बात है?"

"माँ ने भेजा है!"

गौरा उसका अर्थ समझ गई। धीरे से उसने कहा—"अच्छा!"

पर आगे वह कुछ न बोल सकी। घर में उसके अतिरिक्त कोई भी न था। वह थोड़ी ही देर पहले चली गई थी। अपने सामने ऐसे एकान्त वातावरण में टप्पू को पा वह काँप उठी। उसे लगा कि वह कुछ का कुछ कर बैठेगी।

टप्पू भी गौरा को अपने सामने पा सम्भाल नहीं पा रहा था अपने मन को। उसके हृदय की धकड़नें और बढ़ गई थीं। रात की सारी बातें तूफान बनकर उसके मस्तिष्क में चक्कर काट रही थीं। पल-पल वह गौरा को देखता और निगाहें उसकी रह-रहकर झुक जाती थीं। इस अगाध रूपराशि को, इस उच्चकुल के रत्न को, अपनी इस प्रेरणा की देवी को वह कभी भी नहीं पा सकता है। कभी नहीं!!

एक सौ उनहत्तर

"दूर क्यों खड़े हो, टप्पू!"—गौरा के अधरों से निकला—"ऊपर आकर बैठ जाओ। मैं अभी रोटी लेकर आती हूँ!"

"ऊपर!"—टप्पू ने साश्चर्य कहा—"भला मैं ऊपर कैसे आ सकता हूँ। किसी ने देख लिया तो..."

"अभी कोई नहीं है।"—गौरा ने फुसफुसाकर कहा—"और टप्पू मैं तुम्हें पराया नहीं समझती हूँ! ऊपर आकर बैठो! अगर मेरे मन में सचमुच कुछ दुराव होता तो उस मैं तुम्हारे हाथ की मिठाई न लेती।"

"क्या सचमुच....सचमुच आप.."—टप्पू का गला रुँध गया—"मुझे पराया नहीं समझती हैं....?"

गौरा के अधरों पर मुस्कान फूट गई।

"नहीं! मैं पराया नहीं समझती हूँ टप्पू! सब आदमी हैं और इसलिये सब एक हैं!"

"ऐसा तो मैं भी सोचता हूँ!"—टप्पू ने कहा—"लेकिन...."

"... ... ..."

"लेकिन दुनिया ऐसा नहीं सोचती। हमारा समाज ऐसा नहीं सोचती है। पंडितजी ही अभी देख लें तो मेरा तो कम आपकी ही ज्यादा दुर्गति होगी..."

"लेकिन मैं इस दुनिया के असली रूप को देख चुकी हूँ। धर्म-कर्म, ऊँच-नीच का भेदभाव एक पाखण्ड है। ए‍ विडम्बना है। इसमें कोई तथ्य नहीं है। इस ढोंग की आड़ में मनुष्य-मनुष्य से मिल रहा है। जब पाप के लिये इस ढोंग को चुपके-चुपके एक कोने में रख दिया जाता है पुण्य के लिये क्यों नहीं इस विडम्बना के परदे को उतारकर फेंक दिया जाता है!"

टप्पू अवाक् था। उसकी बुद्धि काम न कर रही थी। क्या सचमुच जिसे वह अब तक असम्भव समझ रहा था, अब सम्भव रूप में उसके सामने आ रहा है। क्या सचमुच वह जिस गौरा को स्वप्न का एक

तारिका समझ रहा था, उसे पा सकेगा ? क्या सचमुच ? क्या सचमुच....? प्रसन्नता के आवेग से टप्पू पागल होने को आया।

"आओ टप्पू !"

गौरा के इस आह्वान की अवहेलना टप्पू न कर सका। उसके पग खिंच गये। गौरा सीढ़ियाँ चढ़ चला। टप्पू उसके पीछे-पीछे खिंचा चलता जा रहा था। कदम उठते जा रहे थे।

"आओ टप्पू...।"

गौरा की मधुर-मधुर आवाज उसे खींचती लिये जा रही थी। गौरा के मन में तनिक भी हिचक न थी। तनिक भी झिझक न थी। उसे याद आ रहा था। उसके पिता के साथ जब टप्पू की माँ शालिग्राम के बगल के कमरे में बन्द रह सकती है तो वह टप्पू को क्यों नहीं अपने कमरे में ले जा सकती है ?

"आओ... आओ...."

गौरा अपने कमरे में चली गई। घर में उस समय सर्वत्र सन्नाटा था। कहीं कोई न था। टप्पू बाहर ही ठिठका रह गया। उसे लग रहा था कि जैसे वह चोरी करने के लिये, डाका डालने के उद्देश्य से घुस आया था।

"आओ टप्पू...."

टप्पू में अब इतना साहस न था कि वह भीतर जा सके। उसे अपनी अवस्था का ध्यान आ रहा था। अन्त्यज एक ब्राह्मण-पुत्री के कमरे में जा सके ...उफ़ ! इस समाज में आग लग जावेगी उस समय.... जिस समय समाज को यह विदित होगा उस समय दोनों का यह समाज काटकर टुकड़े टुकड़े करके फेंक देगा !

टप्पू ठिठककर रह गया।

उसके पग आगे न उठ सके। गौरा अपने कमरे में जा चुकी थी ! गौरा के आकर्षण से वह खिंचता चला आया। सीढ़ियाँ पारकर लीं

उसने और अब....द्वार पार करने का साहस उसमें शेष न रह गया। गौरा मुड़ी। देखा उसने। टप्पू ठिठका खड़ा था।

"आओ टप्पू..."

"ना!"—साहस बटोरकर कहा—"मेरी मरयादा यहाँ तक की है।"

"मरयादा....मनुष्य की मर्यादा मनुष्य तक पहुँचने की है। अभी तुम मुझसे दूर हो...."

"........"

"लेकिन मैं...."

"यह सब भूल जाओ टप्पू! हम दोनों एक हैं। दुनिया की कोई ताकत हम लोगों को जुदा नहीं कर सकती है! सच मानो, टप्पू.."—गौरा उसके पास आ गई और बदहवास गौरा ने अपने शरीर का बोझ अनायास टप्पू पर डाल दिया—"मैं तुम्हें प्यार करती हूँ, टप्पू! मैं तुम्हें प्यार करती हूँ, टप्पू!"

टप्पू ने घबराकर गौरा की नाजुक, फूल-सी देह गिरने से बचा ली। गौरा ने टप्पू के कन्धे से अपना सिर टेक दिया। सारा बोझ टप्पू पर डाल दिया उसने। उसकी आँखें बरस पड़ीं और रुँधे गले से टूटते स्वर में कह उठी—"मुझे न ठुकराना, टप्पू! तुम्हारे बिना मैं मर जाऊँगी। तुम्हारे बिना मैं मर जाऊँगी, टप्पू!"

टप्पू हक्का-बक्का सा रह गया। वह गौरा का भार सँभाले ही रह गया। उस समय उसकी समझ में कुछ भी न आ रहा था कि क्या करे वह? क्या न करे वह? गौरा के फूल से कोमल शरीर का स्पर्श पा उसकी ही मीठी-मीठी गंध में वह अपनी चेतना लुटा बैठा और उसे ऐसा लगा कि उसकी गौरा अब चाँद सितारों की दुनिया में नहीं है, बल्कि उससे बिलकुल करीब है। उसके एकदम निकट है। एकदम समीप है। टप्पू अपने तन की सुध भूल गौरा को लिपटाये रहा।

दूर पर चलते हुये किसी के गीत के बोल सुनाई पड़ रहे थे।

''बलम कब कम होगा, फासला दूर का....''

टप्पू के लड़खड़ाते कदम जब बाहर सड़क की धूल पर पड़े तो उसे होश आया। जैसे वह एक लम्बी बेहोशी से जागा। सपना देखकर जागा। उसे ख्याल आया। उसे होश आया। कहाँ गया था वह? क्या कर रहा था वह? सब ख्याल आया उसे।

"सच....?"

उसने अपने आप से प्रश्न पूछा। सारा दृश्य पलकों पर था। अपने आप टप्पू के अधरों पर मुस्कान खेल गई। अपने आप उसका चेहरा गुलाब सा खिल उठा। उसका एक युग से खोई हुई वस्तु उसे मिल गई। कल रात जिस चिन्ता में वह डूबा रहा। उसका अन्त हो गया। गौरा किसी से प्रेम करती होगा? इस प्रश्न ने उसे रात भर उलझाये रक्खा था। इसका उत्तर उसे मिल गया।

गौरा प्रेम करती है।

गौरा उससे स्वयं प्रेम करता है!

उससे प्रेम करती है, गौरा?

गौरा का उससे प्यार है!

गौरा... गौरा... कितना मीठा नाम यह है, टप्पू के अधर गौरा का नाम बार बार दुहरा उठे। काश! वह इस नामको रटता जाये और इतना रटे कि रटते-रटते उसके प्राण ही निकल जावें। टप्पू का मन असीम प्रसन्नता से भर गया। वह झूम उठा। उसका सारा शरीर झूम उठा। उसे महसूस हुआ कि उसने गौरा को पाकर सारी दुनिया का राज्य पा लिया है—और अब उससे बड़ा भाग्यवान मनुष्य इस धरती पर

कहीं नहीं है। टप्पू ने एक बारगी गर्व से चारों ओर देखा। हाँ, हाँ, वही सबसे महान है।

टप्पू के पाँव धरती पर ही न पड़ रहे थे। उसका खोया खजाना उसे मिल गया था। अपनी बस्ती की पुलिया को देखकर वह चौंक पड़ा। अरे! इतनी जल्दी वह इतना लम्बा रास्ता कैसे तय कर गया? उसे कुछ पता न चला जैसे वह दो ही डग में उस स्थान तक आ गया है।

टप्पू पुलिया पर बैठ गया। सारे चित्र उसकी आँखों के आगे समक्ष झूल उठे। यकायक उसे विश्वास न हो रहा था कि सचमुच गोरा उसे अपने साथ अपने कमरे में ले गई और...और....क्या यह कभी संभव है? टप्पू आँखें फाड़ कर रह गया। धरती की धूल ठोकर लगने पर सिर पर चढ़ बैठती है। वह भी धरती की धूल ही है। क्या उसका भी जीवन क्षणिक नहीं है? क्या पलभर के बाद ही सिर चढ़ी हुई धूल के सदृश उसे नीचे तिरस्कृत होकर न आना पड़ेगा? धरती की धूल पलभर के लिए सिरमौर बन सकती है, पर हमेशा के लिए नहीं। उसकी जिंदगी क्षणिक रहती है।

टप्पू का चेहरा उदास हो गया। एक दिन की यह बादशाहत जिंदगी भर का दर्द बन सकती है। एक दिन का पहला-पहला प्यार जीवन भर की टीस बनकर उसे तड़पा सकता है....क्या वह ब्राह्मण पुत्री....वह हरिजन...उन दोनों का प्यार कैसा? सम्बन्ध कैसा....? दुनिया में आज तक ऐसा नहीं हुआ है। जिस वातावरण में वह पल रहे हैं उसमें कभी भी ऐसा न देखा गया है, न सुना गया है। यह एक असंभव बात है। ऐसा कभी नहीं हो सकता है। कभी नहीं हो सकता है।

टप्पू ने लाख अपने मन को समझाने का प्रयास किया, सांत्वना देने की स्वयं कोशिश की, पर कामयाब न हो सका। पण्डित हरिहरनाथ

शास्त्री जिस दिन सुनेंगे या उन्हें रंच मात्र भी इस बात का आभास होगा, टप्पू की लाश ही नजर आवेगी और सबसे बड़ा सवाल तो यह है कि स्वतः गौरा उसके साथ सरे-आम नहीं चल सकती है। गौरा से यह आशा नहीं की जा सकती है कि वह अपने कुल, खानदान की प्रतिष्ठा को इस प्रकार एक बारगी ही खंदक में डाल देगी....हो सकता है कि अभी उसने जो कुछ किया है वह क्षणिक भावावेश में आकर किया है और बाद में अपनी गलती महसूस कर वह अपने कदम पीछे हटा ले।

टप्पू गमगीन हो गया। पुलिया पर वह अपने घुटनों पर अपना सिर रखकर रह गया। उसे आसपास का सुधि न रही। पत्थर सा बैठा रह गया वह। उसे आसपास की कुछ भी सुध न रही। अपनी ही दुनिया में टप्पू बड़ी देर तक खोया रहा। गौरा के चित्र के नाना प्रकार के रूप उसकी आँखों के आगे झूल रहे थे।

किस बूते पर वह गौरा को अपना बनाना चाहता है? लाड़-प्यार से पली एक भले घर की लड़की को सुख से रखने का साधन उसके पास कहाँ है? एक बे सहारा आदमी दूसरे को सहारा दे यह सबसे बड़ी मूर्खता है।

"क्या सोच रहे हो?"

"........"

"टप्पू की विचारधारा विश्रृंखल हो गई। चिहुँककर उसने देखा—लच्छो उसके सामने खड़ी थी। उफ! यह डायन हर समय कहाँ से टपक पड़ती है! टप्पू झल्ला उठा। वह उसे फटकारने जा ही रहा था कि उसका दयनीय चेहरा देखकर वह उसे फटकार न सका। केवल क्रोध से एक बार घूरकर देख उठा।

"आजकल देख रही हूँ, तुम्हें न जाने क्या होता जा रहा है? ऐसे यहाँ बैठे हो कि कोई देखे तो क्या कहे....?"

"यही न कि कोई पागल बैठा है ?"—टप्पू ने झल्लाकर कहा।

"जो तुम समझो...."—लच्छो ने कसक से अपने अधरों को हिलाया। टप्पू की फटकार, झिड़कियों और उपेक्षा की वह आदी हो गई थी।"

"अच्छा घर चलो !"

लच्छो ने दबे स्वर में उससे कहा। टप्पू का इस तरह से पुलिया पर चिन्तित और उदास बैठना उसे तनिक भी अच्छा न लग रहा था।

"......"

टप्पू उसकी इस बात का कोई उत्तर न दिया। इस समय वह कहीं नहीं जाना चाहता था। बल्कि अकेले ही अपने विचारों की दुनिया में खोया रहना चाहता था। लच्छो की एक भी बात उसे सुहानी न लग रही थी।

"रोटी लेकर इस तरह से सड़क किनारे बैठना तुम्हें अच्छा लग रहा है ?"—लच्छो ने साहसकर पुनः एक बार टप्पू को छेड़ा।

टप्पू चौंक पड़ा। सचमुच में उसके हाथ में रोटियाँ थीं। माँ ने पंडितजी के यहाँ से रोटियाँ माँग लेने को कहा था। इसी उद्देश्य से वह गया भी था और अब....यहाँ क्यों बैठा है ?

"हाँ, पण्डितजी के यहाँ से रोटी लाने के लिये अम्मा ने मुझे भेजा था। खनमन रो रहा होगा !"

टप्पू हड़बड़ा कर उठा और लच्छो की ओर देखे बिना नहीं या उसके साथ की प्रतीक्षा के बिना ही वह आगे बढ़ गया। लच्छो दर्द भरी एक दीर्घ निःश्वास लेकर रह गई।

टप्पू आगे बढ़ गया। घर आकर पण्डितजी के यहाँ से मिली हुई रोटियाँ उसने माँ के सामने रख दीं।

एक रोटी जसोदा ने उसकी ओर फेंकते हुये कहा—"ले खाकर तू भी पानी पी ले !"

माँ की आज्ञा को टप्पू टाल न सका। चुपचाप उसने रोटी खाकर पानी पिया। उठकर वह जाने लगा तो जसुदिया ने पुनः टोंका—"कहाँ जा रहा है? आजकल तो स्कूल की छुट्टी है। क्यों नहीं काम शुरू कर देता है; स्कूल खुल जाय तो फिर काम छोड़ देना। तू बड़ा हो चला है। अब इस तरह से बैठने से तो काम होगा नहीं। कुछ तो समझ से काम ले! मैं तुझे बेसे जोर देकर कुछ कहना नहीं चाहती, पर टप्पू कुछ तो अपनी समझ से भी तुझे काम लेना चाहिये!"

टप्पू ने कुछ न कहा। उसने माँ की ओर देखा। उसकी आँखों में माँ की बात की स्वीकृति के भाव झलक उठे। सात्त्विक रूप से उसको उत्तर न देकर टप्पू बाहर आ गया। सचमुच में आजकल छुट्टी है। स्कूल बन्द है। उसे निठल्ला नहीं बैठना चाहिये। उसे कुछ काम शुरू कर देना चाहिये।

काम!

एक ही काम है, उसके लिये। जिस जाति का है वह उस जाति के अनुकूल केवल एक ही कार्य उसके लिये। लेकिन उस कार्य तो वह बहुत पहिले छोड़ चुका है। अब उस कार्य को कैसे कर सकता है? टप्पू बड़े ही असमंजस में पड़ गया।

जो भी हो उसे कुछ न कुछ करना चाहिये? क्या इसके अतिरिक्त उसे और कोई कार्य नहीं मिल सकता है?

टप्पू के मस्तिष्क में बड़ी देर तक यही प्रश्न गूँजता रहा।

कार्य उसे मिल तो सकता है जब कि वह अपनी असलियत का परिचय पेश न करे। यदि वह यह न कहे कि वह हरिजन है तो उसे सम्भवतः कोई कार्य कहीं मिल जावे?

टप्पू काँप उठा....पर यह तो धोखा-धड़ी का काम है। लोगों की आँखों में धूल झोंकना है। यह पाप है। यह एक सामाजिक अपराध है। ऐसा करना उसे शोभा नहीं देता है!

टप्पू हृदय थामकर रह गया। हठात् उसकी आत्मा तड़प उठी और उसके अन्तर के भाव मचल पड़े उसे यही करना होगा। उसे लोगों को धोखा देना ही होगा। आज दुनिया में सर्वत्र यही हो रहा है। आज चारों तरफ धोखा-धड़ीका ही बाजार गर्म है। आज पंडित-समाज धर्म-कर्म के नामपर, भगवान की श्रद्धा के नाम पर अपने यज-मानों से पैसा भगवान की मूर्ति पर चढ़वाता है और उसे अपने पाकेट के हवाले करता है। रामायण, महाभारत और गीता की कथाएँ पढ़ी जाती हैं। उस समय श्रद्धा के नाम पर श्रोताओं के बीच आरती पेश की जाती है और पैसे लिये जाते हैं। धर्म और जाति-पाँति के नाम पर समाज में ठगी का बाजार गर्म है। भगवान की आड़ में भी ठगी हो रही है। इतने बड़े बड़े पाप जब समाज में होते हुये भी वह क्षम्य समझे जा रहे हैं, तो ऐसी स्थिति में यह तो एक हलका सा पाप है, जिसे वह करने जा रहा है। यह तो कोई बड़ा अपराध नहीं माना जावेगा। उसके अपने आपकी वास्तविकताओं को छुपाकर समाज में रहने से कोई क्या कर लेगा? दुनिया का बाजार ही ऐसा है।

विचारों में टप्पू डूबा रहा।

गौरा का भी उसे ख्याल आ रहा था। गौरा के ख्याल के साथ-साथ उसका मन बैठता भी जा रहा कि यह क्षणिक सपनों की दुनिया की सैर तो सिद्ध नहीं होगी?

प्रेम एक बड़ा ही मीठा और मधुर नाम है। लच्छो के कथनानुसार यह व्यक्त नहीं किया जा सकता है, केवल समझा जा सकता है और हर मनुष्य की जिंदगी में किसी न किसी से प्यार होता ही है। यह सनातन-सत्य है। यह अनिवार्य क्रिया है।

सचमुच वह बड़ा सौभाग्यशाली है।

२६ गौरा के शब्द उसके कानों में अमृत घोल उठे—"तुम्हारे बिना के अमर जाऊँगी टप्पू........"

क्या सचमुच गौरा के यह शब्द उसके अन्तर से निकले हुये थे। क्या सचमुच में वह इतना भाग्यवान है कि दूर सपनों के देश में वास करनेवाली उसकी प्रेरणा, साकार बन प्रत्यक्ष रूप में उससे आ मिलेगी?

एक हरिजन का निर्धन बालक एक उच्चकुलोत्पन्न बालिका का प्यार पा सकता है? उसका आराध्य बन सकता है? यह यहाँ तक संभव है?

सोचते सोचते टप्पू का मस्तिष्क पीड़ा से भर गया। अपनी इस पीड़ा को भुलाने के लिये वह अपनी पाठ्य पुस्तकों को याद करने लगा। अपनी जेब से पेंसिल और कागज निकाल कर वह चित्र बनाने लगा। वह यह सब इसलिये कर रहा था कि इससे उसका मन बदल जावे। गौरा के संबध में वह अपने आपको बिलकुल भी और सोचने के लिये बाध्य नहीं करना चाहता था। अपने मनमें उठते हुये कुविचारों को वह रोक लेना चाहता था। अपने मनकी पीड़ा को यह किसी प्रकार भुला देना चाहता था।

लेकिन पेन्सिल लिये हुये उसके हाथ न माने और अपने ही आप वह गौरा का नाम लिख उठा। उसकी आँखों ने जब इसे देखा तो वह चौंक पड़ा। उफ़ वह तो फूल पत्ती बनाकर अपने मनको बहलाना चाहता था, बदले में यह गौरा का नाम कैसे आ गया....?

वह मूर्तिवत् रह गया।

मैदानमें पुलिया के नीचे छायामें बैठा हुआ टप्पू गौरा की याद को अपने मन से निकाल देने में सर्वथा असमर्थ हो गया। अब इस प्रवाह को वह नहीं रोक सकता है।

टप्पू ने अपने हाथ को न रोका। पेंसिल को चलने के लिये आजादी मिल गई। अपने आसपास को भूलकर टप्पू लिखने लगा और जब उसका लिखना पूरा हो गया तो उसने आश्चर्य के साथ देखा कि वह गौरा के नाम एक पत्र बन गया था।

उसने पढ़ा—"गौरा देवी, आज मैं आपके पास आया था। आ

जो कुछ स्नेह मुझे दिया, प्रेम मुझे जतलाया। उससे मैं अछूत अभागा बड़ी खुशी से हूँ। आगे आपकी भी राजी खुशी चाहता हूँ। उमेद करता हूँ कि आप इस पतरी का जवाब देंगी। आपका दास-टप्पू।"

अपने ही लिखे हुये चार पंक्तियों के इस पत्र को टप्पू ने बार-बार पढ़ा। खूब ध्यान से पढ़ा। अपनी बुद्धि के अनुसार यथासंभव उसकी गलतियाँ ठीक कीं और उस पत्र को तह करके अपनी जेब में रख लिया। अबकी बेर गौरा से मुलाकात होगी तो वह इस पत्र को उसके हाथ दे देगा।

क्या इसका उत्तर मिलेगा ?

उत्तर....?

हाँ !

टप्पू के मलिन होठों पर मुस्कान खेल गई। इस पत्र के उत्तर से ही सब स्पष्ट हो जावेगा कि गौरा के मनमें उसके लिये कितना प्यार है और क्या वास्तव में जो कुछ आज हुआ है वह क्षणिक नहीं, स्वप्न नहीं, एक सत्य है, जो सदा इसी रूप में उसके साथ रहेगा ? इसका भी पता लग जावेगा।

इस पत्र को लिखने के पश्चात् टप्पू के मनको बड़ी ही शान्ति मिली। बड़ी ही हिफाजत से उसने उस पत्र को सहेजकर रख लिया। जैसे वह उसकी कोई अनमोल निधि हो।

पत्र को जेब में रख लेने के पश्चात् वह एक नई चिन्ता में पड़ गया। मनुष्य की तृष्णाओं की कभी शान्ति नहीं होती है। एक तृष्णा की शान्ति के पश्चात् दूसरी तृष्णा अवश्य उठती है। मनुष्य के जीवन में यदि सन्तोष आधिक्य हो जावे तो मनुष्य जीवन जीवन न रहकर जड़ हो जावे। तृष्णायें, लालसाएँ ही मनुष्य के जीवन को क्रियाशील बनाये रहती हैं। प्राप्त कर लेने के बाद 'कुछ और....कुछ और' का भाव मनुष्य के हृदय में क्रमशः उत्पन्न न होता रहे तो मनुष्य-जीवन पंगु हो जावे।

एक के बाद एक चलने वाले क्रम का अनुकरण करने वाली इच्छायें ही सृष्टि में हलचल मचाये हुये हैं।

टप्पू के मनमें नई चिन्ता यह पैदा हुई कि वह उस पत्र को किस तरह से गौरा तक पहुँचावे ? एक भय उसके मन में यह भी पल रहा था कि उसे पढ़कर गौरा नाराज हो गई तो....अथवा उसने उत्तर न दिया तब....?

संकल्प-विकल्प में डूबते-उतराते टप्पू ने निर्णय कर लिया कि वह गौरा तक उस पत्र को पहुँचाकर रहेगा ? इसी उद्देश्य से वह साँझ के झुरमुट में पंडित हरिहरनाथ शास्त्री के घर की ओर बढ़ गया। सदा की तरह टप्पू का यह साहस न हुआ कि वह घरमें घुस जावे। वह बाहर-से ही एक नजर डाल आगे बढ़ गया। उसकी आँखों में तो गौरा ही समाई हुई थी और गौरा को ही वह खोज रहा था।

कुछ आगे बढ़ने के पश्चात् वह पीछे लौटने ही वाला था कि हठात् सामने से गौरा को आते देखा उसने। वह घबड़ा गया। आँखें फाड़ कर उसने देखा कि सचमुच वह गौरा ही है या कोई और दूसरी लड़की। उसे और नजदीक से देख उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह गौरा ही थी। भला उसकी आँखें गौरा को पहिचानने में भूल कर सकतीं थीं। वह पुलक उठा। मुँह-माँगी मुराद मिल गई उसे....लेकिन रास्ते में वह उसे रोककर बात को नहीं कर सकता है ? सड़क पर चलने वाले लोग क्या कहेंगे ? उनके मनमें क्या-क्या भाव उत्पन्न होंगे और यदि किसी परिचित ने देख लिया तो...?

सोच विचार का वहाँ अवसर ही कहाँ था ! तुरन्त टप्पू का हाथ जेब में गया। अंगुलियों में कागज आया और तत्काल ही उसने उस कागज को नीचे गिरा दिया और आगे बढ़ गया। उसका हृदय धक्-धक् कर रहा था। उसकी साँस रुकी हुई थी। कौन जाने गौरा ने उस कागज को उठाया अथवा नहीं....यदि उसने उस कागज को न उठाया और वह

कागज किसी और के हाथ पड़ गया तो....कुछ ही पग आगे जाकर वह घबड़ाकर लौट आया। गौर से देखता हुआ वह आया, पर कागज उसे कहीं नजर न आया। टप्पू ने सन्तोष की एक साँस ली। वह कागज गौरा के ही हाथ पड़ा है और अब उसका उत्तर क्या होगा....?

घर जाकर टप्पू रात भर यही सोचता रहा। पत्रोत्तर पाने के ही स्वप्न में वह रात भर डूबा रहा।

सुबह होने के कुछ देर बाद ही जसुदिया ने तेज और क्रोधित स्वर में टपुआ से रोटी ले आने कहा। उसका पारा सुबह-सुबह ही गरम हो गया था। टप्पू पर वह बरस भी पड़ी थी कि साँड़-सा लड़का होकर भी दो पैसे कमाकर नहीं ला रहा है। आजकल स्कूल बन्द है। पढ़ाई भी नहीं हो रही है। इस खाली समय में भी वह निठल्ला बना हुआ है और हाथ पर हाथ रक्खे बैठा है।

अपनी आदत के मुताबिक टप्पू चुपचाप उसकी झिड़कियाँ सुनता रहा और जब उसे रोटी ले आने का आदेश मिला तो वह चुपचाप खिसक गया। काँपते-कदम शास्त्री के घर की ओर बढ़ गये। कल गौरा को चिट्ठी मिल गई होगी और न जाने वह अपने मन में क्या-क्या न सोच रही होगी! हो सकता है कि आज वह उस पर बरस पड़े, लेकिन ऐसा होगा क्यों? गौरा उससे प्यार कर रहा है। यदि ऐसा न होता तो गौरा उसे अपने कमरे में क्यों ले जाती?

टप्पू पंडितजी के आँगन में आया। पुकारा उसने। उसकी आवाज सदा की तरह खुली और साफ आवाज नहीं थी। धीमी दबी हुई आवाज में उसने गुहार दी।

गुहार का कोई उत्तर उसे न मिला। मन सशंकित हुआ, पर

हिम्मत बटोर फिर उसने आवाज दी। इस बार उसे उत्तर मिला। स्वर का उत्तर नहीं, बल्कि पग-पायलों का रुनझुन का उत्तर! टप्पू का हृदय धड़क उठा। गौरा आ रही थी और सचमुच गौरा उसके सामने आ खड़ी हुई। टप्पू ने उसकी ओर देखा। आँखों से आँखें टकराई। टप्पू बुत बन गया। उसने देखा गौरा, देव कन्या-सी उसके समक्ष उपस्थित थी। गुलाब के फूल-सा उसका चेहरा अपने पूर्ण यौवन पर थमकर खिल रहा था। गौरा, पहले ही से कहीं अधिक रूपवती लग रही थी उसे। पहले से कहीं अधिक मादक, आकर्षक प्रतीत हो रही थी वह उसे। गौरा और सुन्दर लग रही थी....इतना सुन्दर...टप्पू आश्चर्य से यह परिवर्तन देख उठा।

गौरा मुस्कुरा पड़ा। टप्पू को लगा त्रिभुवन मुस्करा पड़ा है।

"लो...."—गौरा उसके लिये रोटियाँ ले आई थी।

टप्पू ने हाथ आगे बढ़ा दिये। गौरा ने रोटियाँ उसके हाथ पर दूर से रख दीं। थोड़ा और आगे झुकी वह। फुसफुसाकर उसने कहा—"अभी लोग घर में हैं।"

टप्पू रोटियाँ लेने के बाद एक पल भी न रुका।

तत्काल वह मुड़ गया और तेजी से आँगन से निकलकर बाहर सड़क पर अपने रास्ते पर आ गया। गौरा के भोर के इस रूप ने उसके हृदय में और हलचल मचा दी था। उफ़! देवकन्या को वह अपना बनाने की सोच रहा है, पर इस देवकन्या को अपना बनाये रखने का उसके पास साधन क्या है? गौरा जैसी लड़की को वह पत्र लिखता है। बौना कहता है कि मैं आसमान का चाँद लेने जा रहा हूँ, तो उसको यह इच्छा कभी पूरी नहीं होती है।

टप्पू के ढीले हाथों से रोटियाँ फिसलने ही वाली थीं कि उसने अपने हाथ सम्भाल लिये। रोटियों के बीच उसे कुछ मालूम हुआ पर

अपने ही में वह इतना डूबा रहा कि उसे इस बात ख्याल ही न रहा कि रोटियों के बाच कोई चीज हो सकती है !

रोटियाँ लाकर उसने अपनी माँ जसुदिया के हाथ पर रख दीं। दो रोटी उसकी ओर फेंककर जसुदिया ने कहा—"खाकर पानी पी ले और जा कुछ कामधाम कर। घर में एक पैसा नहीं जुड़ रहा है। ब्याह सर पर आ रहा है। कुछ तो इन्तजाम करना होगा !"

टप्पू घुग्घू-सा बैठा रहा। उसने माँ का इस बात का कोई भी जवाब नहीं दिया।

खनमन को रोटी देकर जसुदिया जब और रोटियाँ सहेजकर रखने लगी तो उन रोटियों के बीच से तह किया हुआ एक कागज गिर पड़ा।

"यह क्या है रे ?"

टप्पू अचकचा सा गया। वह समझ गया। तत्क्षण उसने कागज उठा लिया। हकलाकर बोला—"मेरा हा कागज है। धोखे से रोटियों के बीच चला गया है।"

"वाह रे पढ़ैया की दुम।"—जसुदिया ने आश्चर्य से कहा—"रोटियों के बीच कागज घुसेड़-घुसेड़कर रखता है तू।"

टप्पू माँ का इस बात पर हँस पड़ा। वह कागज उठाकर उसने जेब में रख लिया। जल्दी-जल्दी रोटियाँ खाकर वह उठ खड़ा हुआ।

"कहाँ जा रहा है ?'

"........"

"देख टपुआ जब तक छुट्टा है, तब तक कुछ काम तो कर ले। मैं बार-बार कहाँ तक तुझसे कहूँ ? अजब लड़का हा रहा है तू ! पहले मेरी हर बात मान जाया करता था, पर आजकल तुझे यह न जाने क्या हो गया है। मेरी बात तू सुनता ही नहीं है !"

"नहीं माँ।"—टप्पू ने इस बार कहा—"मैं तुम्हारा किसी बात

की काट नहीं सकता हूँ ।"—टप्पू बड़ा प्रसन्न हो रहा था—"मैं खुद काम की तलाश में हूँ । तुम इतना घबराती क्यों हो ?"

बेटे का आश्वासन पाकर माँ के मन को संतोष मिल ।फर भी माँ ने उसे मीठा झिड़की दी !

'जा जा ! तू ऐसी ही बातें किया करता है !"

टप्पू हँसकर बाहर हो गया । इस समय टप्पू का खुशी का ठिकाना ही न था । उसे दुनिया के दाम से भी बढ़कर कोई चीज मिल गई थी । उसे गौरा का पत्र मिल गया था । उसे चिट्ठी का जबाब मिल गया था । टप्पू तेजी से बाहर आया । दूर-दूर तक उसकी निगाहें दौड़ गईं । वह किसी एकान्त स्थान को खोज उठा, जहाँ वह अपने उस पत्र को पढ़ सकता । ऐसे पत्र एकान्त में ही पढ़ने में बड़ा मजा आता है ।

मैदान के दूसरी ओर सन्नाटा ही था । बीच में लड़के उछल-कूद कर रहे थे । टप्पू उस पार लपककर चला गया और उस पत्र को निकाल कर उसने सामने रक्खा । मोती के दानों से अक्षर देखकर वह दंग रह गया । छोटे पर सुडौल छापे से अक्षरों को वह मुग्ध होकर देखता रहा । उन अक्षरों के बीच में ही उसकी आँखों के सामने गौरा का हसीन चेहरा झूल उठा । बड़ी देर तक टप्पू पत्र को निहारता ही रहा । अन्ततः बड़े प्रयास से उसने अपने को संभालकर पत्र पढ़ा ।

"मेरे देवता,

तुम्हारा पत्र मिला । पढ़कर कितनी खुशी हुई, मैं इसका बयान नही कर सकती हूँ । तुम मेरे हो और मैं तुम्हारी हूँ । इसका विश्वास रक्खो हम दोनों का साथ नहीं छूट सकता है । हमारा-तुम्हारा साथ तो जनम-जनम का है । पिछले जन्म में भी तुम मेरे आराध्य थे और अब भी हो । तुम किसी भी प्रकार की चिन्ता न करना । दुनिया के कोई बन्धन हमारे इस मिलन को नहीं रोक सकते हैं । कभी कोई भी हीन भावना अपने मन में न लाना । यह न सोचना कि कुल या वंश या जाति हमारे

इस मिलन में बाधक हो सकती है। प्यार यह सब नहीं देखता है। मैं तुम्हें अपना हृदय सौंप चुकी हूँ। तुम्हें अपना बना चुकी हूँ। केवल एक ही प्रार्थना तुमसे हाथ जोड़कर करती हूँ कि तुम ऊपर उठो और ऊँचे उठो। जितने ही ऊँचे उठोगे यह मेरे लिये उतने ही गौरव की बात होगी। मेरे देवता मैं हूँ तुम्हारी, जनम-जनम की दासी-गौरा!"

पत्र को पढ़कर उसका आशय समझ कर टप्पू ठगा सा खड़ा रह गया। उसकी आँखें चकरा गईं। उसने इस पत्र को पढ़ा। सौ-सौ बार पढ़ा। बार-बार पढ़ा। असंख्य बार उसने पढ़ा। पढ़ते-पढ़ते वह थक गया तब भी उसे सन्तोष न हुआ। उस पत्र के एक-एक शब्द उसे याद हो गये।

ओः! कितना मीठा, कितना मादक है, यह उसका पत्र!

टप्पू अपने हृदय से उस कागज के टुकड़े को लगाकर रह गया। उसके हृदय की जलन को बड़ी ठंडक महसूस हुई। उसे अपने हृदय में अपार संतोष और शान्ति के अथाह सागर का अनुभव हुआ।

"तुम ऊपर उठो और ऊँचे उठो। जितने ही ऊँचे उठोगे यह मेरे लिये उतने ही गौरव की बात होगी।"

गौरा के यह शब्द बार-बार उसके कानों में गूँज उठे। हाँ, हाँ, हाँ, उसका रोम-रोम कसककर दृढ़ता से कह उठा। उसके हाथों की मुठ्ठियाँ बँध गईं। अवश्य-अवश्य! निश्चय! एकदम निश्चय। वह उठेगा और ऊपर उठेगा। हर प्रकार से वह ऊँचा उठकर अपने आपको गौरा के योग्य बनावेगा। उसे ऊँचे उठना है और ऊँचे उठना है। उसे हर प्रकार से गौरा के योग्य बनना है।

टप्पू ने अपने में दृढ़ निश्चय कर लिया और इस प्रकार अपने मनमें एक दृढ़ निश्चय लेकर वह उस पत्र को अनमोल संपत्ति की तरह हिफाजत से रखकर वह बढ़ चला शहर की ओर!

उसका मन कसक उठा। आज उसके पास पैसा होता तो क्या न

था। अब बिना पैसे के उसकी जिन्दगी व्यर्थ है। लाड़-प्यार से वैभव में पली लड़की को उसे हिफाजत से रखना पड़ेगा। इसके लिये उसे पैसों की जरूरत है। उसे पैसे चाहिये हैं और इसके लिये काम करना अनिवार्य है। बिना इसके कुछ नहीं हो सकता है। हर प्रकार से उसे गौरा के योग्य बनना है, जिससे कि उसको पाकर गौरव का अनुभव उसकी प्रेरणा की इस देवी का हो सके।

यदि वह अपना असली परिचय देता है, तो उसके लिये काम मिलना मुश्किल है। उसे लोगों की आँखों में धूल झोंकना ही पड़ेगा। यह उसके लिये अब जरूरी ही है।

टप्पू को अब दुनिया के व्यवहार को देखते हुये ही चलना है। सीधी लड़ाई लेकर वह अपने कदमों पर खड़ा नहीं रह सकता है। जमाने की आँधी उसे धराशायी कर देगी। सीधे विद्रोह से उसकी कमर ही टूट जावेगी और वह तनकर खड़ा नहीं रह सकता है। जमाने के साथ उसे धोखा-धड़ी करनी ही होगी।

आज वह घर-घर नौकरी की तलाश करेगा। छोटी-मोटी नौकरी भी उसके लिये बहुत बड़ी होगी। धीरे-धीरे उसे उन्नति करते ही जाना है। इस छोटी-मोटी नौकरी से उसे अपनी पढ़ाई का खर्च निकालते हुये आगे बढ़ते ही जाना होगा।

टप्पू बड़े लोगों की बस्ती कन्टूमेंट क्षेत्र में जा धमका। एक दो बँगलों के सामने जाकर उसने नौकरी की याचना की, तो वह बदले में झिड़की पाकर भी निराश न हुआ।

आगे बढ़ा वह।

एक सुन्दर बङ्गले के सामने जाकर रुक गया। बँगले की सजावट और रंग ढंग देख कर वह दंग रह गया। वहीं ठिठका खड़ा रह गया। उसमें इतनी हिम्मत न रही कि वह यकायक उस बंगले में घुस जावे।

कुछ क्षण तक उस बंगले की शान देखने पर जहाँ एक ओर उसके

मनमें संदेह भी हुआ, तो दूसरी ओर वह विचार भी आया कि इस बंगले में जहाँ कुबेर का राज है, क्या उसके लिये चाँदी के कुछ भी टुकड़े नहीं मिल सकते हैं ?

इस आशा से उसके मन में साहस आया और वह उस बँगले में घुस गया। इससे पहले की दरबान उसे रोक सके वह बारामदे में बैठे हुए एक वृद्ध के पास जा धमका। उसके वस्त्र, उसकी रूप-रेखा और आरामकुर्सी पर बैठने के ढंग से जाहिर हो रहा था कि मालिक वही है।

टप्पू उसके पास खड़ा हो गया।

बूढ़े ने उस लड़के को इस निर्भीकता से आया देख, आँखें तरेरीं।

"क्या है ? क्यों आये ?"

टप्पू ने बड़ी ही सभ्यता और नम्रता से नमस्कार कर कहा—"मैं मुसीबत का मारा हूँ और नौकरी चाहता हूँ।"

"...,"

"मैं एक गरीब लड़का हूँ !"—टप्पू ने कहा—"और पढ़ना चाहता हूँ। पढ़ाई के लिये मैं नौकरी की तलाश कर रहा हूँ। मैं हर काम करने के लिये तैयार हूँ, जो भी आप कहें। बड़ी आशा से आया हूँ कि कमसे कम आपके पास तो वापस नहीं जाऊँगा ?"

वृद्ध ने ऊपर से नीचे तक उसे परखा। उसकी आँखों ने टप्पू को पहिचान लिया। उसे लड़का मेधावी, अच्छा और सुशील लगा। शारीरिक गठन और उसके चेहरे की सुन्दरता उसे किसी उच्च खानदान का ही घोषित कर रही थी, अतएव वृद्ध का मन भर गया।

कहा उसने—"कौनसी कक्षा में हो ?"

"डबल इम्तहान देकर चौथी में गया हूँ !"

"डबल इम्तहान ?"

"जी हाँ !"

"रहते कहाँ हो ?"

टप्पू कहने जा ही रहा था कि वह हरिजन बस्ती में रहता है, पर टप्पू ने अपनी इस बात को रोक लिया उसने झूठ बोल दिया—"सोनार पुरा में !"

"घर में कौन कौन है ?"

"सिर्फ माँ है और मेरा भाई है।"

वृद्ध को इस तरह से प्रश्न करते देखकर टप्पू को मनमें आशा हुई कि इस जगह उसका ठिकाना लग सकता है और उसकी आशा भी फलवती हुई।

बूढ़े ने कहा—"तुम्हारे लिये एक काम है। घर का काम करने में तुम हिचकोगे तो नहीं ?"

"जी नहीं। मैं हर तरह काम कर सकता हूँ।

"तीस रुपया मिलेगा।"

"मुझे मंजूर है साहब !"....टप्पू ने कहा "आप जो कुछ भी देंगे मेरे लिये एक बड़ा सहारा ही होगा।"

टप्पू गद्गद् हो गया। इतने चक्कर मारने के पश्चात् उसकी आशा फलवती हुई है। परिश्रम का फल व्यर्थ नहीं जाता है। टप्पू का मन और ललच गया। एक आलीशान बँगले में काम करने का अवसर उसे मिल रहा है। अब वह बड़े लोगों की चर्या को नजदीक से देख सकेगा। उसकी गौरा भी तो एक बड़े घर की लड़की है। बड़े घरों की का रहन-सहन का जब तक उसे परिचय प्राप्त न होगा, तब तक वह भला गौरा को कैसे हिफाजत से रख सकता है !

"ठीक है !"—वृद्ध ने कहा—"तुम आज से काम कर सकते हो ? हाँ, खाना-वाना खाकर न आये हो तो खा आओ या यहीं पर खा लो !"

"मैं तैयार होकर आया हूँ !"

"ठीक है !"—वृद्ध ने जोर की आवाज दी—"पुनुआ !"

एक सौ नवासी

तत्क्षण ही एक बूढ़ा लपककर आया। शरीर से वह काफी अशक्त प्रतीत हो रहा था।

'देखो, इस लड़के को आज से रख लिया गया है। इसे ले जाओ इससे काम-धाम कराओ और इसे सब बातें सिखलाओ। घरके हर किसिम के काम के लिये इसको रखा गया है। तुम मेरी बात समझ रहे हो ना ?"

"जी हाँ !"—उस बूढ़े ने अदब से कहा और टप्पू को अपने साथ ले गया !

टप्पू उसके साथ मिलकर काम करने लगा। पूरा बँगला उसे बड़ा आलीशान मालूम पड़ा। उसकी सजावट, कुर्सियाँ, कोच, गद्दी देखकर दंग रह गया।

टप्पू को मालूम हुआ कि वह एक रईस के परिवार में है। वह वृद्ध रेशम का एक बहुत बड़ा व्यापारी थी। बाजार में वह रेशम के बादशाह के नाम से जाना जाता था। अपार दौलत उस घर में थी।

टप्पू बूढ़े के आदेशानुसार काम करता जा रहा था।

"छोटी मालकिन के आने का वक्त हो गया है।"—पुनुआने कहा—"उनके गुसुलखाने में पानी वगैरह सब ठीक से रख आओ। रोज इस समय उनके लिये तुमको यह बंदोबस्त करना होगा।"

"अच्छा !"

टप्पू ने कहा और बूढ़े के निर्देशानुसार व्यवस्था कर आया। लौटकर आने पर उसके एक बड़ी ही मीठी आवाज सुनी।

"तुम बूढ़े हो गये हो दादा, फिर भी इतना काम करने पर थकते नहीं हो....?"

टप्पू ने आकर देखा। देखते ही वह दंग रह गया। मखमल के श्वेतपरिधानों में लिपटी हुई एक सोलह-सत्रह साला लड़की उसके सामने खड़ी थी। उसका सारा शरीर कमल की पँखुड़ियों की तरह

चिकना और ठीक उसी रंग का था। प्रतीत होता था कि गुलाब का फूल लड़की के रूप में सामने है।

टप्पू ठगा-सा खड़ा देखता रहा। उस लड़की के कानों में जवाहिरात जड़े कुण्डल दमक रहे थे। जवाहरातों की नीली-नीली आभा से उस लड़की का मुखड़ा रूप को मातकर रहा था। टप्पू का अभी तक यही विचार था कि गौरा ही सबसे सुन्दर लड़की है, पर इस लड़की को देखकर वह वह अपने होशोहवास ही खो बैठा।

एक अजनबी लड़के को अपनी ओर घूरते देखकर उस लड़की से न रहा गया और उसने पुनुआसे पूछा—"यह कौन है दादा ?"

"यह !"—पुनुआने हँसकर कहा—"यह नया नौकर आया है, छोटी मालकिन। आज ही इसे मालिक ने रक्खा है। तुम जानती ही हो बिटिया, अब मैं बूढ़ा हो गया। काम-धाम किये नहीं होता है। दूसरा नौकर न रहे तो घर का सारा काम-धाम कैसे हो ?"

"लेकिन यह हमारे यहाँ काम कर सकेगा"—लड़की ने आश्चर्य से टप्पू की रूपरेखा देखकर कहा। उसके मनमें टप्पू की आकृति देखकर यह शंका उठना स्वाभाविक ही था।

"हाँ, हाँ, क्यों नहीं ?"—पुनुआने आत्मविश्वास के साथ कहा—"यह लड़का हर काम करेगा। बेचारा गरीब है। पढ़ना चाहता है और नौकरी के साथ-साथ पढ़ेगा भी।"

"तब तो गरमी की छुट्टी खतम होने के बाद यह काम छोड़कर चला जावेगा। ऐसे आदमी को रखने से फायदा क्या....?"

टप्पू अब तक चुपचाप सब सुनता रहा और मुग्ध हो लड़की की ओर देखता रहा, लेकिन इतना सुन लेने के पश्चात् वह चुप न रह सका। कहा उसने—"जी नहीं। ऐसी बात नहीं है। पढ़ने का भर मौका मिल जाया करे और बाकी टाइम हमेशा मैं आपकी सेवा में रहूँगा।"

टप्पू का यह नम्रतापूर्ण व्यवहार उस लड़की को अच्छा लगा।

हँसते हुये उसने बूढ़े पुनुआ से कहा—"दादा, यह लड़का सलीके वाला मालूम पड़ता है। उम्मीद तो है कि यह हम लोगों के बीच खप जावेगा। हाँ, गुसल तैयार है?"

"हाँ बिटिया"—बूढ़े ने कहा—"यही तो सब ठीक-ठाक करके आ रहा है।"

"अच्छा"—लड़की बढ़ गई आगे। पल भर में ही ओझल हो गई।

उसके जाने के बाद ही पुनुआ फुसफुसा उठा—"शैल इतनी बड़ी हो गई पर बचपना नहीं गया!"—और वह हँसकर टप्पू को और काम बताकर चला गया।

लड़की के ओझल हो जाने के पश्चात भी टप्पू की आँखों के सामने उसका चेहरा न हटा। उस लड़की के शरीर की मोहक गढ़न, आकर्षक चेहरा, अमूल्य आभूषण, कीमती वस्त्र और कोयल की सी आवाज ने उसके मन पर गहरा प्रभाव डाला! गौरा से कहीं अधिक बढ़चढ़कर उसे लगी, लेकिन गौरा के चेहरे पर कमनीयता का मेला लगा था वह इस लड़की के चेहरे पर न था। तुलना में टप्पू को गौरा ही श्रेष्ठ लगी।

काम करते समय हठात् उसके मनमें यह विचार आया कि यह लड़की भी किसी से प्रेम करती होगी। इस विचार के मनमें आते ही टप्पू के काम करते हुये हाथ रुक गये। अपने मनमें उठे इस तरह के विचार से उसे बड़ा ही आश्चर्य हुआ। उसने अपने मन की इस जिज्ञासा को कड़ाई के साथ दबा लिया। उसे इन सब बातों से क्या करना है? उसे अपना काम करना चाहिये।

रात को टप्पू देर से लौटकर आया।

उसे देखते ही जसुदिया बरस पड़ी—"दिन भर कहाँ मरता रहा, जो अब आ रहा है?"

टप्पू ने धीरे से कहा—"मेरी नौकरी लग गई है ?"

"नौकरी···"—जसुदिया का सारा क्रोध काफूर हो गया—"कहाँ लग गई है ?"

"कन्टूमेंटके एक बँगले में। तीस रुपया महीना मिलेगा।"—टप्पू ने मां को बतलाया।

"तब तो ठीक है !"—जसुदिया का क्रोध स्नेह में बदल गया—"तेरी रस्ता देखते-देखते मैं थक गई। उधर कुछ रोटियाँ रखी हैं, निकालकर खा ले। यहाँ सोना हो तो यहाँ सो, नहीं तो मैदान में जाकर सो जा।"

माँ का आदेश टप्पू टाल न सका और भूख न रहने पर उसने बासी दो रोटियाँ खायीं। अपनी फटी चादर लेकर यह मैदान में आ गया और उसे जमीन पर बिछाकर वह लेट गया। बीच मैदान में जलता हुआ बिजली का खंभा शाम से ही जवाब दे गया था। फलस्वरूप मैदान में हलका-हलका अँधियारा छाया हुआ था।

चादर पर लेटते ही उसे लच्छो का ख्याल आया।

लच्छो भी एक लड़की है।

इस लड़की से उसने शादी करना स्वीकार कर लिया है। लच्छो उसकी भावी पत्नी है।

भावी पत्नी····

बिच्छू का सा डंक लगा उसे। भावी पत्नी····तब··· तब····गौरा का क्या होगा····? वह तो गौरा से प्यार करता है और उसके लिये ही वह सब कर रहा है। उसे लच्छो से क्या मतलब है ? लच्छो से उसका सरोकार कैसा····? जहाँ गौरा है, वहाँ लच्छो की बात कैसी····? गौरा के आगे लच्छो का पलड़ा सदा हलका रहा है, लेकिन यह सब कहने से तो काम नहीं चलेगा। लच्छो उसकी भावी पत्नी है और चार आदमियों,

के बीच वह उसे भावी पत्नी घोषित भी कर चुका है, फिर कैसे लच्छो को अपनाने से इंकार कर सकता है।

अरे, इस पहलू पर तो उसने अभी तक सोचा ही न था।

लच्छो को जब यह सब ज्ञात होगा तो उसके मन को कितनी ठेस न लगेगी। लच्छो किस कदर से उससे प्यार करती है। उसके लाख फटकारने पर भी वह उसके पीछे पीछे डोलती फिरती है। ऐसी प्रकृति की लड़की के साथ उसका इस प्रकार का कृत्य अन्याय ही कहा जावेगा।

बड़ी दुविधा में पड़ गया टप्पू !

बड़े ही असमंजस में पड़ गया वह।

लच्छो के ही ख्यालों में वह इस तरह से डूबा रहा कि कब स्वयं लच्छो उसके पास आ गई, इसका उसे ख्याल ही न रहा।

"सो गये क्या....?"

लच्छो की धीमी आवाज ने उसे चौंका दिया। निगाहें घुमाकर उसने देखा तो लच्छो को अपनी बगल में बैठे पाया।

"लेट जाओ।"—टप्पू ने धीरे से फुस फुसाकर कहा।

भावी पतिका आदेश पाकर लच्छो उसके पास लेट रही। वह यही तो चाहती ही थी।

"शामको दिखलाई नहीं पड़े !"—लच्छो ने धीरे से पूछा—"कहीं चले गये थे क्या ?"

"हाँ"—टप्पू ने उससे बतलाया कि वह नौकरी करने लगा है। उसे नौकरी मिल गई है।

"नौकरी !"—लच्छो ने आश्चर्य से कहा—"तुम्हें नौकरी कहाँ मिल गई ? किसने तुम्हें नौकरी दे दी ?"

"मुझे एक बहुत ही अच्छे घरमें नौकरी मिली है। ऐसा आलीशान बँगला है कि तुमने अपनी जिन्दगी में कभी न देखा होगा।"

"पर नौकरी कैसे मिल गई ? क्या वह यह नहीं जानते कि तुमसे...

एक सौ चौरानबे

"चुप भी रहो ! दुनिया की इन सब बातों में क्या धरा है ? पेट के लिये आदमी को क्या-क्या नहीं करना पड़ता। फिलहाल इस रास्ते के सिवाय और कोई चारा तो है ही नहीं !"

"लेकिन किसी का धर्म भ्रष्ट नहीं करना चाहिये।

"धर्म भ्रष्ट...."––टप्पू बोला––"आज दुनिया में ऐसा कौन जो कलेजे पर हाथ रख कर यह कह सके कि उसका धर्म भ्रष्ट नहीं हुआ है। आदमी आदमी एक है, लच्छो। आदमी आदमी के बीच दिखावटी भेद भाव नहीं चलता है। इस दुनिया में घुसपैठकर देखो तो तुम्हें हालत दूसरा ही नजर आवेगी।"

लच्छो चुप रह गई। इस पर और अधिक विवाद करना उसने उचित नहीं समझा। लच्छो ने अपनी बात पलटकर पूछा—"तो तुम नौकरी करने लगे हो ? अच्छा है, कुछ रुपये ही हाथ रहेंगे !"

"और कम से कम मैं कुछ और भी तो बन सकूँगा।"—टप्पू ने कहा—"इस दुनिया से ऊपर उठना होगा !"

लच्छो चिन्तित हो उठी। टप्पू की इस बात ने उसके मन में आशंका पैदा कर दी। वह ऊपर उठना चाहता है और कहीं ऊपर उठने में ही वह टप्पू को न खो बैठे।

इसी आशंका के फलस्वरूप उसका मन कसक उठा। न रहा गया उससे और उसने पूछ लिया—"यह जगह छोड़कर तो तुम और कहीं तो न जाओगे ?"

"देखो, इस बारे में मैं कुछ नहीं कह सकता हूँ। जब जैसा मौका पड़ेगा तब वैसा करना होगा। लेकिन, यह तो तय ही कि एक न एक दिन मुझे यह जगह छोड़ना ही पड़ेगी !"

"सच टप्पू !"

"हाँ !"

"तब तो मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी। तुम्हारे बिना मैं अकेली यहाँ पर कैसे रह सकती हूँ ?"

"तुम मेरे पीछे-पीछे कहाँ तक लगी रहोगी ? तुम आराम से यहाँ रहो।"

"पर...."

"पर क्या....?"

"जहाँ आदमी वहाँ औरत ! औरत अपने आदमी को छोड़कर कहीं कैसे जा सकती है। मैं तुम्हारे बिना कैसे रह सकती हूँ ?"

"लेकिन अभी हमारा तु हा।। रिश्ता हुआ कहाँ है।"

लच्छो आसमान से गिरी। बुरी तरह से घबड़ा गई वह। घबडा कर उसने कहा--"तुम यह कैसी बात करते हो ? उतने सारे आदमियों के सामने हमारा तुम्हारा रिश्ता पक्का हो चुका है !"

"बस ! इतना ही है न ! रिश्ते तो इसी तरह से बनते बिगड़ रहते हैं। सच तो यह है कि हमारा तुम्हारा तभी औरत मरद का रिश्ता जुड़ सकता है जबकि हम दोनों अगनिके सामने फेरे लगाकर इस बात को मंजूर कर लें। अभी तो यह हुआ ही नहीं है !"

"पर कभी न कभी तो होगा ही !"

"हाँ"—टप्पू ने लापरवाही से कहा—"तब की तब से देखी जावेगा। अभी तो यह सब कुछ भी नहीं है। तुम्हारे बाप से मैंने पहले ही इस बात का कह दिया था कि जब तक मैं अपने पैरों पर खड़ा न हो जाऊँगा तब तक मैं तुमसे शादी नहीं करूँगा। इसी बात पर फलदान भर हो गया है। यह तो लौटाया भी जा सकता है !"

लच्छो सिसक पड़ी।

"टप्पू फल दान लौटाया जा सकता है। नारियल, बतासे और रुपये तुम लौटा सकते हो, पर क्या किसी का दिल लेकर उसे लौटाना भगवान के सामने पाप नहीं है ?"

एक सौ छानबे

"मैंने तुम्हारा दिल कब लिया है?"

"टप्पू...इतना न मारो! ऐसी बातें कहने के बदले यदि तुम मुझे मार डालो तो बेहतर होगा!"

"मैं इतना बुद्धू नहीं हूँ कि तुम्हें मार कर जेल जाऊँ!"

"मजाक मत करो, टप्पू! मेरी जिंदगी के साथ इस तरह से मजाक करते हुये खिलवाड़ मत करो! मेरा कलेजा भी चीर कर देखो तुम! देखो तुम! वहाँ तुम्हीं नजर आओगे!"

"क्या तुम मेरी अच्छाई नहीं पसन्द करती हो?"

"क्यों नहीं! भला मैं तुम्हारी उन्नति कब नहीं चाहूँगी!"

"बस! तो मुझे अपना काम करने दो!"

"मुझे छोड़ दोगे?"

"यह कौन कहता है! आगे की बात के बारे में कुछ भी तय करना मूर्खता है! आज की ही बात पर हमें सोचना चाहिये। इसी ख्याल से मैं तुमसे कुछ भी वायदा नहीं कर सकता हूँ। आगे क्या होता है? यह कौन जानता है।"

"टप्पू भविष्य की आशा पर ही तो दुनिया चल रही है। यदि भविष्य के वायदे आज होकर पूरे न हों, तो दुनिया टिक ही नहीं सकती है।"—लच्छो ने रुँधे हुये स्वर से कहा।

"यह सब ठीक है!"—टप्पू का स्वर बिगड़ा हुआ था—"तुम मेरी बात मानो। मुझे अभी अपने रास्ते पर चलने दो! जब मैं सामर्थ हो जाऊँगा तुम्हें बुलाऊँगा। सरवन चाचा की वजह से मैंने यह रिश्ता मंजूर कर लिया था। भरपक मैं इसकी कोशिश करूँगा कि इस रिश्ते को निभा ले जाऊँ लेकिन वायदा करना बेकार है!"

लच्छो खामोश रह गई। आगे कुछ भी वह न कहना चाहती थी। मन में तो बहुत से भाव उठ रहे थे, पर सबको दबाकर रह गई वह। टप्पू के बदले हुये रङ्ग-ढङ्ग देखकर उसके मन को शंका हुई। हृदय में

भय समा गया कि सम्भवतः टप्पू उसका साथ आगे चलकर नहीं दे सकता है। इस बात ने उसके सारे मानस में तूफ़ान उठा दिया कि टप्पू का यह रवैया कैसा ? हो सकता है कि वह किसी के बहकावे में आ गया हो ?

उसके टप्पू को एकाएक यह क्या हो गया है ! इससे पहले तो वह कभी ऐसा न था। इस प्रकार का व्यवहार वह उसके साथ कभी न करता था। रूखे व्यवहार का तो वह आदी था पर इस तरह से दो टूक जवाब वह दे देगा, इसकी उसे आशा न थी।

लच्छो का माथा ठनका। इसके पीछे कोई न कोई रहस्य अवश्य है अन्यथा टप्पू इस तरह का व्यवहार उसके साथ कभी नहीं कर सकता है। लच्छो का मन दूर-दूर तक उड़ गया। सभी सम्भव बातों पर वह विचार करती रही।

टप्पू करवट बदलकर लेट गया। लच्छो की ओर उसने मुँह फेर लिया। लच्छो के मन को इससे और ठेस लगी।

हठात् उसने दूर पर सरवन की बड़बड़ाहट, उसका हल्ला-गुल्ला या सुना। वह समझ गई कि सरवन घोड़े पर सवार होकर आ गया है और अब सम्भवतः उसकी तालाश हो। लच्छो चुपचाप उठी और टप्पू से बिना कुछ कहे खिसक गई इस लिये कि उसके पास अब उसका और लेटे रहना खतरे से खाली नहीं था।

टप्पू को इसका पता ही न चला। बड़ी देर बाद जब उसने करवट बदली तो लच्छो को अपनी बगल से न पाया। इसके लिये उसे कोई विशेष आश्चर्य न हुआ। वह समझ गया कि वह खिसक गई होगी। यदि वह रुष्ट होकर खिसक गई है तो इससे उसका क्या बनता और बिगड़ता है। वह तो इस लड़की से किसी न किसी प्रकार छुटकारा पाना चाहता है।

टप्पू को अब अपने आप पर अफसोस हो रहा था कि उसने कहाँ से

अपने लिये जहमत पाल ली। उसे अब अपने किये पर अफसोस हो रहा था। उसने लच्छो से ऐसा रिश्ता तय कर उचित नहीं किया है। पहिले ही उसके मन में इस रिश्ते के प्रति हिचकिचाहट हो रही थी। लेकिन सरवन की ही बातों पर उसकी बेबसी पर पिघलकर ही उसने इस सम्बन्ध को स्वीकार कर लिया था।

लच्छो के लिये टप्पू के मन में प्रारम्भ से ही कोई आकर्षण न था। वह तो सरवन की दशा पर पसीज गया था। लच्छो से वह किसी न किसी तरह से छुटकारा पा लेना चाहता था। लेकिन वह भी अजब ही, अपने एक ढङ्ग की एक थी कि उसका साथ ही न छोड़ती थी।

लच्छो के खिसक जाने से टप्पू के मन पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। वह नये बँगले और नयी लड़की के बारे में सोचने लगा। उसके रूप, उसके हाव-भाव और उस वैभव के विषय में ही वह सोचता रह गया। उसके होंठों से दर्द भरी एक लम्बी साँस निकल गई।

ऐसे ही वातावरण और लाड़-प्यार में गौरा भी पल रही है। क्या वह उसे इस तरह के सुख प्रदान कर सकता है? क्या उसमें इतनी ममता है कि वह गौरा को ऐसे वातावरण से निकालकर अपने वातावरण के अनुकूल बना सकता है?

टप्पू का मन बेकल हो उठा। उसकी यह बेकली ज्यों-ज्यों बढ़ती गई, त्यों-त्यों रात बढ़ती गई और पूरब से चाँद निकलकर बढ़ता गया।

चन्दा की चाँदनी धरती पर थिरक उठी।

टप्पू और बेचैन हो उठा। बिखरी हुई चाँदनी और जाने कहाँ से आती हुई भीनी-भीनी सुगन्ध ने उसके मस्तिष्क को और अशान्त कर दिया। लेटे रहकर वह अपने मन की इस अशान्ति पर काबू न पा सका। बेकल टप्पू उठ बैठा।

उस मैदान के और लोग अपने ही में मस्त थे। केवल एक वही अकेला था जो बेकल था। मन बहलाने के उद्देश्य से टप्पू बिस्तर

छोड़ खड़ा हो गया। चहलकदमी करने लगा और चहलकदमी करते-करते मैदान पार कर सड़क पर आ गया।

अपने ही ख्यालों में डूबा हुआ वह बढ़ चला। सड़क पर सर्वत्र श्वेत चाँदनी बिखरी पड़ी थी, जो प्रेमियों के लिये बड़ी मोहक होती है। बड़ी स्वप्न-सृजक होती है।

चाँदनी की बिछी हुई परत को रौंदता हुआ टप्पू आगे बढ़ता गया।

वह इस तरह से जाग रहा है। क्या गौरा भी उसके लिए इस तरह से जाग रही होगी? क्या उसका भी मन इसी प्रकार बेकल हो रहा होगा? क्या उसकी भी आँखों में नींद न होगी? जिस तरह से वह उसकी याद कर रहा है, क्या उसी प्रकार गौरा भी उसे याद कर रही होगी? आदि जाने कितने प्रश्न, एक के बाद एक टप्पू पर घहरा पड़े। उसका मन छटपटा उठा। काश! ऐसे समय में वह गौरा को देख सकता?

गौरा ने उसके पत्र का उत्तर तो दिया है। अथाह प्यार से छलकता हुआ वह पत्र है। हाँ, सचमुच में गौरा से उसका सम्बन्ध आज का नहीं बल्कि जनम-जनम से है। इस समय वह अवश्यमेव उसकी याद कर रही होगी। टप्पू का विश्वास बोल उठा। अपने इस विश्वास को साकार रूप में देखने के लिये उसका मन मचल पड़ा। उसके पग गौरा के घर की ओर बढ़ते गये। उस समय सर्वत्र सन्नाटा छाया हुआ था। केवल चाँदनी ही बिखरी पड़ी थी। सड़क पर बिखरी हुई हर चीज साफ नजर आ रही थी। टहलते हुये कुत्तों से बचता हुआ टप्पू बढ़ता जा रहा था। उसे अपने आप पर आश्चर्य भी हो रहा था कि वह किस तरह से इतनी रात गये गौरा को देख सकता है! किस तरह से वह यह आशा कर सकता है कि वह उससे मिलेगी? इस समय वह आराम से सो रही होगी! घर के सारे दरवाजे बन्द होंगे। वह भीतर ही कैसे जा सकता है?

इन सारी शंकाओं के बावजूद भी वह आगे बढ़ता गया। उसके मन में उठी हुई विश्वास की एक अज्ञात प्रेरणा उसे खींचती ले गई। वह बढ़ता गया। पंडित हरिहरनाथ शास्त्री के भवन के सम्मुख रुक गया वह। द्वार बन्द था। सारा भवन चाँदनी में डूबा हुआ था। कहीं कोई आहट न आ रही थी। टप्पू एकटक ठगा सा खड़ा हुआ देखता रह गया। कहीं कोई छाया या आहट न थी। टप्पू की आँखें अपने हृदय की प्रेयसी को खोज उठीं। उसका हृदय धसक उठा। उफ! वह कहीं नहीं है! कहीं नहीं है! ऐसा कैसे हो सकता है? वह सो रही होगी? सो रही होगी? भला यह कैसे संभव है? कैसे संभव है? टप्पू का रोम-रोम गौरा को पुकार उठा। उसकी आत्मा की अदृश्य चांखें दीवार से टकरा उठीं। 'गौरा-गौरा' उसका रोम-रोम पुकार उठा।

हठात् टप्पू का विश्वास सत्य में परिणित होकर सामने आया।

उसने एक छाया को छत पर देखा। टप्पू आँखें फाड़कर उस छाया को देख उठा। क्या वह उसकी गौरा नहीं है? क्या वह छाया गौरा के अतिरिक्त और कोई हो सकती है! कौन है वह? टप्पू को ऐसा आभास हुआ कि जैसे वह छाया उसकी ही ओर देख रही है। टप्पू ने देखा उस छाया का एक हाथ प्रसन्नता से हिल रहा है।

समझ गया टप्पू, वह गौरा ही है!

और अब शायद....वह छाया ओझल हो गई। टप्पू घबड़ा गया कि क्या हो गया है उसे? वह हटने ही वाला था कि द्वार खुलने की आहट मिली उसे। वह द्वार बहुत ही धीरे धीरे खुल रहा था। टप्पू समझा कि कहीं और किसी ने तो उसे देख नहीं लिया है और इसी ख्याल से वह खिसकने ही वाला था, पर अपना नाम सुनकर खामोश रह गया वह।

"टप्पू...."

आवाज उसने पहिचान ली। गौरा की मीठी-मीठी मधुर आवाज थी

वह। उसकी गोरी-गोरी बाहें बाहर निकली हुई थीं। वह बुला रही थी। टप्पू को मुँह-माँगी मुराद मिल गई। अन्धे को दो आँख मिल गईं।

टप्पू लपक गया। धीरे से द्वार और थोड़ा खुला उसके बाद टप्पू भीतर चला गया। द्वार पूर्ववत् बन्द हो गया।

दोनों आँगन मे दीवार की आड़ में खड़े थे। ठीक उसी स्थान पर जहाँ आज से कुछ साल पहिले पंडित हरिहरनाथ शास्त्री जसुदिया से मिला करते थे। जसुदिया भी इसी तरह से आती थी। छत पर पंडित जी टहलते रहते थे। जसुदिया को देखते ही वह दौड़कर दरवाजा खोल देते थे और जसुदिया टप्पू की ही तरह भीतर चली जाती। आँगन में, इसी दीवार की आड़ में दोनों की प्रेमलीलायें चलती थीं। वह स्थान मकान से एक ओर बिलकुल एकान्त में पड़ता था। एक तो किसी के वहाँ शीघ्र पहुँचने की आशा न की जा सकती थी और यदि दुर्भाग्य से कोई आ भी जावे तो उस स्थान से बड़ी ही आसानी से खिसका भी जा सकता था।

गौरा दीवार से सटकर खड़ी हो गई। उसकी आँखें अधमुँदी हो गईं। टप्पू को पाकर वह अपने होश गँवा बैठा। जाने कब से वह छत पर टहल रही थी। उसकी आँखों मे नींद न थी और वह केवल टप्पू को याद कर रही थी। निखरी हुई बिखरी चाँदनी मे वह दूर-दूर तक देख रही थी कि टप्पू कहीं नजर आ जावे। इस चाँदनी-रात में वह टप्पू को देखने के लिये बुरी तरह से बेताब हो गई थी। केवल उसकी एक झलक के लिये ही वह बेकल हो उठी। लेकिन वह किस तरह से अपनी इस इच्छा को पूरी कर सकती। मन मसोस-मसोस कर रह जाती थी वह। लेकिन उसने जब नीचे सड़क पर अपने मकान के सामने टप्पू को देखा तो उसकी खुशी का पारावार न रहा।

कहीं सपना तो नहीं देख रही है वह?

सपना....

नहीं, वह टप्पू ही था। टप्पू ही खड़ा था उसके सामने। प्रसन्नता से वह खिल उठी और दौड़ी-दौड़ी आई वह। दरवाजा खोल दिया उसने टप्पू भीतर आ गया। टप्पू को पाकर वह होश गँवा बैठी।

टप्पू गौरा को एकटक देखता रह गया। चाँदनी रात में प्रेम विभोर गौरा का चेहरा मेनका को मात कर रहा था। देखकर टप्पू का दिल भी हाथ से जाता रहा।

"गौरा...."

"........"

गौरा ने कोई उत्तर न दिया। टप्पू आगे बढ़ गया और दोनों के शरीर एक हो गये। जनम-जनम के प्यासे प्रेमी जाति-पाँति के बन्धन तोड़कर एक हो गये। मनुष्य के धर्म के आधार पर बनाये हुये दो टुकड़े, वेद, धर्म, शास्त्र और पंडित पुराण को तोड़कर एक हो गये। मनुष्यता एक हो गई।

"टप्पू...."

"गौरा...."

"टप्पू ...छोड़ न जाना...."

"कहीं तुम्हीं धोखा न देना।"

"हुस्स ! ऐसा न सोचना सपने में।"

"लेकिन जब दुनिया जानेगा...."

"मुझे परवाह नहीं ! तुम मेरे हो टप्पू..."

चार अधर एक हो गये। दो प्राणी एक हो गये। उस बिखरी हुई चाँदनी में रात के सन्नाटे में दो प्यासे अपनी प्यास बुझाते रहे। भीनी भीनी गंध ने उन दोनों के होश और छीन लिये....टप्पू स्वप्नवत् व्यवहार कर रहा था। उसे यही आभास हो रहा था कि मैदान में अपनी गंदी चादर पर लेटा हुआ वह स्वप्न देख रहा है।

दोनों सुधबुध खो बैठे थे। इससे पहिले कि वह वास्तव में एक हो

सके पास ही में हलकी सी आहट हुई। कोई चीज उन दोनों के पास आकर गिरी। टप्पू घबड़ा गया। उसके पाश से गौरा भी मुक्त हो गई। वह घबड़ाकर हट गई।

"कोई है ?"

"हाँ !"

"अच्छा....तुम भाग जाओ...."

'........'

"हम फिर मिलेंगे....टप्पू....साथ ही मरेंगे..."

"हाँ, गौरा ..."

टप्पू तेजी से बाहर हो गया। उसकी साँस ऊपर नीचे चढ़ रही थी। घबड़ाकर वह दौड़ पड़ा। कुछ ही दूरी पर उसने अपने से आगे एक छाया को बढ़ते देखा। उसके ही रास्ते पर आगे-आगे वह छाया भी तेजी से भागी जा रही थी। टप्पू ने आश्चर्य से देखा। वह छाया किसी लड़की की मालूम पड़ रही थी। उसका कद भी उसे बहुत कुछ परिचित मालूम हो रहा था।

टप्पू लपका।

पर वह छाया तेजी से भागती गई। टप्पू उसे न पा सका और देखते ही देखते वह काफी दूर मोड़ पर जाकर विलीन हो गई। टप्पू आश्चर्य में पड़ गया कि वह छाया कौन थी ? कौन इतनी रात गये उसका पीछा कर है ? टप्पू घबड़ा रहा था कि उसका रहस्य तो नहीं खुलने जा रहा है। इसमें उसका कुछ भी बिगड़ने का नहीं है। भेद खुल जाने में गौरा और उसके परिवार की ही प्रतिष्ठा पर धक्का लगने की बात है। उसका तो कुछ भी नहीं होने का है। टप्पू के मन की शंका से उसकी सारी देह सिहर उठी। वह भविष्य के एक अज्ञात भय से काँप उठा। इसके बावजूद भी आज नहीं तो कल उसे इस परिस्थिति का सामना करना ही था।

मन में अनेक संकल्प-विकल के साथ टप्पू लौटकर आया। गौरा से इस चाँदनी रात में मुलाकात हो जाने के कारण उसके मन में आत्म-सन्तोष भी था। अब उसे रत्ती भर भी गौरा के प्रेम में शक की किसी प्रकार की गुंजायश न रह गई थी। उसके मन को इस बात का दृढ़ सुबूत मिल गया था कि गौरा उससे प्यार करती है। अब इसमें सन्देह को कोई स्थान न था।

टप्पू अपने बिस्तर पर लेट रहा। बिस्तर के नाम पर वह एक फटी मटमैली चादर ही थी। उस समय कहीं कोई आहट न थी। मैदान में पड़े हुये यहाँ वहाँ के सारे लोग निद्रामग्न हो चुके थे। लड़-झगड़कर सरवन भी शराब के नशे में चूर पड़ा सो गया था। जाग रही थी तो केवल लच्छो ही, जो जोर-जोर से हाँफ रही थी जैसे वह मीलों लम्बा रास्ता पार कर वहाँ आई हो।

लच्छो हाँफ रही थी और साथ ही साथ उसका चेहरा बुरी तरह से फीका पड़ गया था।

उसने कुछ आहट ली। देखा, उसकी सौतेली माँ मार खाकर रोते-रोते सो गई थी। लच्छो को इसका ही डर था। उसे निद्रामग्न पा वह धीरे से फिर खिसक गई। मैदान में वह टप्पू के बिस्तर के पास जाकर खड़ी हो गई। उसकी आहट सुनने के बाद भी टप्पू का ध्यान न भंग हुआ और वह उसी तरह पड़ा रहा।

"टप्पू"—लच्छो ने हारकर खुद पुकारा।

"क्या है ? इतनी रात गये, अब क्या करने आई हो ?"

"मैं तुमसे कुछ कहना चाहती हूँ।"—लच्छो का स्वर बुरी तरह से बिगड़ा हुआ था।

"क्या बकना चाहती हो ? बको...?"

"आज से मैं तुमसे कभी कुछ भी नहीं कहूँगी। तुम पूरी तरह से आजाद हो। मैं इतना ही कहने आई हूँ कि जब कभी भी तुम्हें मेरी

जरूरत पड़े। मुझे याद कर लेना। मैं हर वक्त तुम्हारी खिदमत के लिये हर तरह से तैयार रहूँगी!"

"तुम्हारे कहने का मतलब मैंने नहीं समझा?"

"समझकर भी क्या करोगे? अपने जब पराये हो जाते हैं तो ऐसा ही कहा करते हैं।"—लच्छो सम्भालते-सम्भालते भी अपने को नहीं सम्भाल सकी। परिणाम यह हुआ कि वह फूट पड़ी।

"यह सब क्या तमाशा है?"

"यह तमाशा नहीं है, टप्पू।"—लच्छो ने सिसककर कहा—"यह दिल से निकले आँसू हैं! तुम इनकी कभी कद्र नहीं कर सकते हो। यह मैं जानती हूँ।"

"जानती हो तो अच्छा ही है! जो तुम्हारे मन में आये वह करो।"

"इसीलिये तो मैं बिदा लेने आई हूँ।"

"बिदा ले चुकी हो तो जाओ।"

"जा ही रही हूं टप्पू! पर इतना ख्याल रखना कि तुमने एक लड़की का दिल तोड़कर दूसरी लड़की का दिल बसाया है। तुम कभी सुखी न रह सकोगे?"

लच्छो की आखिरी बात सुनकर वह चौंक पड़ा।

"क्या कहा... तुमने.... दूसरी लड़की....?"

"हाँ।"—लच्छो ने धीरे से कहा—"आज मैंने सब देख लिया है। मैं तुम्हारे पीछे-पीछे ही गई थी!"

"ओह!"—टप्पू आश्चर्य विभोर हो बोला—"तब तुम्हीं वह थीं जो.... ओह.... अब समझा.... अब समझा.... तुम.... तुम... लच्छो.... तुमने सब देख लिया है?"

"हाँ!"

"पत्थर तुमने ही फेंका था!"

"मन में तो आ रहा था कि मैं पत्थर फेंककर पंडित की छोकरिया

का सिर तोड़ दूँ, पर मुझे तुम्हारा ख्याल आ गया था, टप्पू ! तुम नहीं जानते हो औरत जब ठुकरायी जाती है, औरत के ही सामने जब कोई उसकी दुनिया को लूटने की कोशिश करता है, तो उस समय वह भूखी सिंहनी हो जाती है।"

"......"

"खैर, मुझे कुछ नहीं कहना है। मैं देख रही हूँ कि तुम उस पंडित की छोकरी के साथ खुश हो। मैं तुम्हें खुश ही देखना चाहती हूँ। मैं वही काम करना चाहती हूँ जिसमें तुम्हारी खुशी बनी रहे। तुम्हारी खुशी मेरी खुशी है टप्पू और तुम्हारी इस खुशी के लिये मैं तुम्हारे रास्ते से खुद हटी जा रही हूँ !"

"........"

"तुम घबड़ाओ नहीं। मैं किसी से भी तुम्हारे इस भेद को नहीं खोलूँगी, पर इतना मैं जरूर कहूँगी कि तुम जो कुछ करने जा रहे हो वह आज तक इस धरती पर नहीं हुआ है और तुम इस बात को समझ लो कि इसमें तुम्हारे लिये बहुत बड़ा खतरा है !"

"........"

"मैं जानती हूँ। भगवान करे, तुम दोनों खुश रहो। वक्त जरूरत पर मेरी भी याद कर लेना !"—और लच्छो टप्पू से किसी उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही अन्धकार में खिसक गई।

टप्पू हतबुद्धि अवाक् रह गया। लच्छो उसके हृदय पर आश्चर्य का एक घूँसा मारकर खिसक गई। टप्पू किंकर्तव्यविमूढ़-सा देखता रह गया। लच्छो सब कुछ जान चुकी है ! यह उसके लिये बड़े ही अचम्भे की बात थी।

"लच्छो !"

उसने दबी जुबान से पुकारा।

"........"

कोई उत्तर न आया।

"लच्छो !"—इस बार उसने जोर से पुकारा पर फिर भी कोई उत्तर न आया।

लच्छो जा चुकी थी।

दो टूक उत्तर टप्पू ने दे तो दिया था, पर लच्छो के जाने के पश्चात उसका दिल भर आया। आखें भर आईं। अपने किये पर उसे पश्चाताप हुआ। मनके विवेक ने उसके अन्तर को कुरेद कर उसे धिक्कारा भी। टप्पू काफी देर तक लच्छो के संबंध में अगली और पिछली बात सोचता रहा। उसे सब कुछ याद आया। लच्छो उससे रूठकर चली गई है। उसने आज उसका सारा रहस्य जान लिया है। उसे आज मालूम हो गया है कि वह गौरा से प्यार करता है। लच्छो का हृदय आज तिलमिला उठा है। इसी तिलमिलाहट के फलस्वरूप आज वह उससे तुनक कर चली गई है। आज उसके मन को बड़ी ठेस लगी है। टप्पू को महसूस हुआ कि जैसे उसने यह भयंकर भूल की है और इस भूल का फल उसे भोगना पड़ेगा। हो सकता है कि लच्छो यह बात सब से कह दे। ऐसी दशा में गौरा की बहुत बड़ी बदनामी हो सकती है। इस विचार के मनमें आते ही टप्पू तिलमिला उठा। सचमुच में उसने यह बड़ी भूल की। उसने लच्छो को इस तरह से दुतकार उचित नहीं किया है। लाख उसने अपने मन को समझाने की कोशिश की पर उसका हृदय बुरी तरह से कसकता रहा।

अन्ततः टप्पू अपने बिस्तर पर अधिक लेटा न रह सका। वह उठ गया। उसकी निगाहें लच्छो को खोज उठीं। लच्छो आसपास में कहीं भी उसे दृष्टिगत न हुई। वह समझ गया कि लच्छो उसकी इस हरकत से रूठकर घर में जाकर लेटी होगी। टप्पू में इतना साहस न था कि वह उसके घर जाकर उससे बात कर सके। अपने मन को समझाने के उद्देश्य से वह दूर तक टहलने निकल गया। अब लच्छो से सुबह ही

मुलाकात संभव थी। उसे अपने हाथ में रखना उसके लिये अत्यावश्यक है। अन्यथा उसके लिये तो कम, पर गौरा के लिये खतरा ज्यादा है। है। टप्पू ने गलती महसूस की कि उसने लच्छा को दो टूक जवाब देकर अच्छा नहीं किया है। उसे ऐसा नहीं करना चाहिये था।

टप्पू को गौरा ने आते देखा। राह में पैदल चलते समय यह उसकी टप्पू से पहिली मुलाकात थी। उसने देखा—टप्पू ने उसकी ओर एक बार देखकर निगाहें झुका लीं हैं। वह चुपचाप कतरा कर एक ओर से निकल गया है लेकिन उसके हाथों से कोई चीज गिरते उसने देखी। वह एक कागज का टुकड़ा था। गौरा ने....पहिले तो समझा कि वह कागज का कोई मामूली सा टुकड़ा है जो उसके हाथ से गिर गया है पर हठात् मन की इस भावना ने करवट बदली और गौरा ज्यों ही उस कागज के पास पहुँची त्यों ही उसने उठा लिया और आगे बढ़ गई। हठात् मन में यह विचार आते ही कि वह कागज टप्पू की चिट्ठी भी हो सकती है, गौरा का रोम-रोम एक सिहरन से भर गया। उसका हृदय पुलक उठा। जल्दी जल्दी वह घर आई और आँधी की तरह अपने कमरे में घुस गई। उसने देखा कि वह कागज टप्पू की चिट्ठी ही था। पढ़ा उसने। जाने कितनी बार पढ़ा। बार बार पढ़ा। हर बार उसे एक नवीन आनन्द का अनुभव हुआ। हर बार उसके मनमें मीठी मीठी धड़कनों संचार हुआ। वह विभोर हो गई। टप्पू का चेहरा उसकी आँखों के सामने साकार हो उठा। देखा कि टप्पू उसकी ओर देखता हुआ मुस्करा रहा है।

"टप्पू...." होंठो से अपने आप फूट पड़ा।

"गौरा..." प्रत्युत्तर में टप्पू की आवाज सुनी।

दो सौ नौ

इस आवाज को सुनकर गौरा अपनी सुध-बुध भूल गई और उसके हाथ अपने आप कागज पर चलने लगे। उसे आस पास का कुछ भी ख्याल न रहा और वह उस पत्र का उत्तर लिखती रही। लिखती रही। बड़ी देर बाद जब उसके हाथ रुके तो उसने आश्चर्य से देखा कि जो कुछ उसने लिखा है वह टप्पू के पत्र का उत्तर है। जीवन में प्रेम पत्र लिखने का यह उसका पहिला अवसर था। अपने पत्र को उसने पढ़ा। बार बार पढ़ा। मन उसका पुलकित हो उठा। पत्र के अन्त में उसने अपना नाम लिखकर पत्र मोड़ कर रख लिया। अब एक नई चिन्ता उसके मनमें आई कि इस पत्र को कैसे टप्पू के पास भेजे और इसी में वह कुछ देर तक डूबा रही।

समय गुजरते देर नहीं लगती। दिन गया और देखते देखते रात आ गई। रात के शान्त वातावरण में उसकी सुप्त भावनाएँ और जाग उठीं। दिल का दर्द और बढ़ गया। अब उसके मनमें टप्पू के प्रति कोई भी मलाल न रहा। अब टप्पू उसका आराध्य बन गया था। कल तक उसके मनमें जो कुछ भी हिचकिचाहट थी वह सब उसके मन से हट गई थी। दुनिया का ख्याल और लोक लाज का तनिक भी भय अब उसके मनमें न रह गया था। रंच मात्र भी यह भावना उसके मनमें न थी कि टप्पू हरिजन है और वह एक ब्राह्मण-कन्या। यह विचार उसके मनसे एक दम निकल गया था और वह एकदम खुलकर टप्पू की याद कर रही थी। अब उसे किसी का क्या भय हो सकता था! अपने पिता का पाप वह अपनी आँखों से देख चुकी थी। अब उसे कैसा भय और पीछे हटने की बात कैसी? टप्पू की मधुर याद में गौरा डूबी रही। अपनी वाडी में हिफाजत से छुपा कर रखी हुई चिट्ठी उसने निकाल कर पुनः पढ़ी। उसे बड़ा आनन्द आया। अनेक बार उसने उसे पढ़ा और कुछ नये शब्द जोड़े। पत्र को पढ़ते-पढ़ते जब वह थक गई, तो उस पत्र को वह अपने कलेजे से लगाकर सो गई उसे बड़ी मीठी नींद आई।

उसने अपने सपने भी देखे, जिनमें उसने टप्पू को ही नायक के रूप में पाया। टप्पू के ही संग संग वह रात भर सपनों में खेलती रही और हठात् जब उसकी नींद खुली तो उसने देखा कि सुबह हो गई थी और उसने टप्पू की ही मीठी आवाज सुनी। दंग रह गई वह कि अभी भी कहीं वह स्वप्न तो नहीं देख रही है लेकिन जब उसने पुनः पुनः टप्पू की आवाज सुनी तो वह चैतन्य हुई। वह उसके पुकारने का आशय समझ गई। वह समझ गई कि टप्पू रोटी माँगने के लिये आया है। वह वह फुर्ती से रोटी हाथ में लेकर आई और हठात् टप्पू को लिखी चिट्ठी का ध्यान आते ही उसने वह निकाली और उसे रोटियों के बीच दबा कर रख दिया। इससे बढ़िया और कोई उपाय उसे चिट्ठी देने का न सूझा नीचे आई। टप्पू सामने ही खड़ा था। उसे देखते ही उसके होठों पर मुस्कराहट खेल गई, पर तत्काल उसे ध्यान आया कि घर में सभी लोग हैं, तो वह रुक गई और उसने कुछ न कहा उससे। केवल इतना ही कह सकी वह बड़ी मुश्किल से कि घर में अभी सब लोग हैं। टप्पू उसकी बात का आशय समझ कर उसके पास से हट गया और तत्काल आँगन से बाहर हो गया।

टप्पू के जाने के पश्चात गौरा का मन उदास हो उठा। लुटी लुटी सी खोई-खोई सी वह बाहर की ओर ताकती हुई ऊपर जाकर अपने बिस्तर पर पड़ रही। उसके नयन अपने आप भर आये।

महरी ने आकर कहा—"बिटिया उठो नाश्ता तैयार है।"

गौरा ने रुंधे गले से कहा—"मुझे भूख नहीं है। तबियत कुछ भारी मालूम पड़ रही है।"

"ज्यादा तबियत खराब है क्या। अच्छा जाकर सरकार को खबर करती हूँ।"

"न रहने भी दे। बेकार में क्यों उनको परीशान करना चाहती है? बाबूजी सुनेंगे तो दिनभर उनकी तबियत घबड़ाई रहेगी। तू रहने दे।

कुछ दर्द हलका होने पर मैं खुद खा लूँगी पर बाबूजी से जाकर मत कहना।"

गौरा की ओर आश्चर्य से देखती हुई महरी चली गई। गौरा की इस पहेली का अर्थ वह समझ न सकी थी। इधर कुछ दिनों से उसे उखड़ा उखड़ा अवश्य देख रही थी। कई-बार उसने पूछना चाहा पर वह पूछ न सकी। गौरा के इस परिवर्तित स्वभाव में उसे कुछ विशेष अर्थ न मालूम पड़ रहा था।

महरी के जाने के पश्चात् गौरा फिर अपनी दुनिया में खो गई। टप्पू को रोटियों के बीच चिट्ठी दबाकर उसने दे दी है। उसके हाथ जब वह पत्र पढ़ेगा। वह पढ़ेगा तब....तब...गौरा...उस समय की कल्पना में आत्मविभोर हो गई।

ठाकुरजीके कमरे में घंटियाँ घनघना उठीं और पंडित हरिहरनाथ शास्त्री के गंभीर, तेज स्वर उसके कानों से टकराये। वह श्लोकों का पाठ कर रहे थे! शास्त्रीजी पूजा कर रहे थे। बजती हुई घंटियों के स्वर और श्लोकों का पाठ सुनकर गौरा क्षण भर को स्तब्ध रह गई। पिता के गंभीर स्वरों ने उसे विचलित कर उसके ब्राह्मणत्व की याद उसके मनमें हरी कर दी। वह ब्राह्मण कुल की प्रतिष्ठित कन्या है और सड़क पर झाड़ू लगाने वाले से वह अपने आराध्य का नाता कैसे जोड़ सकती है! गौरा का शरीर काँप उठा।

घबड़ाकर उसने दोनों हाथों से मुँह ढाँप लिया।

उफ़! उसने यह सब क्या कर दिया। उसके कदम यहाँ तक बढ़ गये कि उसने प्रेम पत्र भी लिख भेजा! उफ! जरा सी भी हवा लोगों को लगते ही उसके परिवार की प्रतिष्ठा का यह महल फूस की झोपड़ी की तरह बदनामी की आग में क्षण भर में ही जल कर खाक हो जावे! कालिख सबके चेहरे पर पुत जावेगी!

गौरा घबड़ा उठी। उसके अन्तर के एक कोने से उठे हुये इन विचारों ने पुनः उसे झकझोर दिया।

गौरा दीवाल का सहारा लेकर खड़ी हो गई। बुत की तरह वह खड़ी हुई थी। उसे कुछ भी न सूझ रहा था। यही विचार उसके मनमें ज़ोर जोर से आ रहे थे कि वह अभी लपककर टप्पू के पास जावे और उससे अपना प्रेम-पत्र छीन कर उसके मुँह पर एक तमाचा जोर से जड़ दे—"अब कभी भूलकर भी अपना मुँह मुझे न दिखलाना!"

गौरा क्रोध से थर-थर काँप उठी। इसमें उसका कुसूर नहीं। टप्पू की खूबसूरती और उसकी आकर्षक बनावट ने ही उसके मन को जीत लिया है। उसके रूपजाल ने उसकी मन मृग को फाँस लिया है और वह भी इतनी भोली कि उसके जाल में फँस गई! छिः!!

गौरा ने निगाहें उठाईं। उसका चेहरा घृणा से तमतमा आया था। निगाहें उठीं तो सिर पर झूलते हुये एक चित्र पर जा अटकीं। उस चित्र में एक चमार भगवान के समक्ष हाथ जोड़े खड़ा था और भगवान मुस्कुराते हुये अपना स्नेह उस भक्त के प्रति प्रदर्शित कर रहे थे। चित्र के नीचे लिखा था - सन्त रैदास 'कल्याण महात्मा-अङ्क'!

गौरा उस चित्र को देखती रह गई।

भगवान की नजरों में न कोई छोटा है, न बड़ा है। सब एक समान हैं। जाति पाँति का भेद भी वह नहीं समझते हैं। उनकी दृष्टि में सब समान हैं। भगवान ब्राह्मण और शूद्र का कोई भेद नहीं करते हैं। सारे भक्त उनकी दृष्टि में एक समान हैं। प्रेम की आराधना करने वाले भी उनकी दृष्टि में एक समान हैं।

यह कैसी विडम्बना है कि सृष्टि संचालक सबके साथ समानता का व्यवहार करता है। उसकी दृष्टि में कोई भेद भाव नहीं है, लेकिन उसकी बनाई हुई सृष्टि में किस कदर भेद भाव है! मनुष्य मनुष्य से किस तरह दूर भागता है। एक अजब पहेली गौरा के सामने आकर

खड़ी हो गई। जाति पाँति के भेद, बड़े-छोटे के विचारों ने किस कदर से मनुष्य को मनुष्य से अलग कर रखा है! मनुष्य के कल्याण के लिये इन सबका टूटना अनिवार्य! उसे एक नयी दिशा में नया चिराग जलाना जरूरी है ताकि और लोग उसके साथ चल सकें और मनुष्य मनुष्य के निकट आ सके!

घंटियों की आवाज और शास्त्रीजी का श्लोकोच्चारण थम चुका था। पंडितजी के बाहर जाने की आवाज भी वह सुन चुकी थी। माँ को भी महरी के साथ उसने कहीं पड़ोस में जाते देखा, पर इस सबकी ओर उसका ध्यान न था। गौरा अपने में डूबी हुई थी।

"पडत जी....ओ पडत जी...."

पतली और तेज आवाज सुनकर गौरा की विचार धारा टूटी।

वह नीचे आई।

"कौन है....?"

बरामदे में आकर उसने देखा। एक परिचित लड़की का चेहरा उसके सामने था। वह पहिचान गई। टप्पू की होने वाली पत्नी उसके समक्ष खड़ी थी। उसे देखते ही गौरा का नारी हृदय द्वेषवश जल उठा।

"क्या है....?"

लच्छो ने इधर-उधर देखा! अब विश्वास हो गया कि उन दोनों के अतिरिक्त आस-पास और कोई नहीं है। उसने धीरे से कहा—"मैं आप से ही कुछ कहने आई हूँ!"

"क्या...?"

"आप....आप....टप्पू...."

"हाँ, क्या है?"

लच्छो की आँखें भर आईं। आँसू झरझरा पड़े। अपने को वह रोक ही न सकी—"आप मेरे टप्पू को छोड़ दीजिये...."

"आँय...."

"मैं जानती हूँ वह कहीं का न रह जावेगा। आप लोग बड़े आदमी हैं। उजड़ कर भी बस सकते हैं, पर गरीब एक बार उजड़ जाने पर फिर कभी बस नहीं सकता है। आप मेरी बात का मतलब समझ गई होंगी !"

"मेरी समझ में कुछ नहीं आया !"

अपनी दीनता का कुछ भी प्रभाव न पड़ता देख और जानबूझ कर गौरा को इस तरह से अनजान बने रहने का अभिनय करते देख लच्छो का क्रोध भभक पड़ा—"टप्पू रात में इस घर में आया था !"

"रात में... ?"

"हाँ, आपसे मिलने ! मैं जानती हूँ। आप और वह...."

"......."

"गरीब की दुनिया मत लूटिये। गरीब के साथ खिलवाड़ मत करिये। गरीब की दुनिया मत लूटिये। आपके लिये दो पल का खिलौना वह। खेल कर आप फेंक देंगी, पर इधर मेरा आँचल हमेशा के लिये सुहाग से सूना हो जावेगा....

गौरा को काठ मार गया। काटो तो खून नहीं। वह ठगी सी खड़ी रह गई। कुछ भी न बोल सकी।

"यही कहने के लिये मैं आपके पास आई थी।"

लच्छो के आँसुओं और दर्दभरी आवाज से गौरा के हृदय पर घूँसा-सा लगा। उसे महसूस हुआ कि वह अन्याय के रास्ते पर है। नारी की व्यथा से नारी का हृदय डोल उठा।

"तुम मुझे गलत समझ रही हो ?"—गौरा ने फुसफुसाकर धीरे से कहा—"तुम गलत समझ रही हो।"

"गलत।"—लच्छो तेज लड़की थी। निर्भीकता उसमें बचपन से थी—"टप्पू का रात में छुप-छुपकर यहाँ आने का मतलब क्या है ? वह यहाँ रात को क्यों आता है ?"

गौरा का चेहरा तमतमा आया—"तुम गलत समझ रही हो। तुम

यह मत सोचो कि मैं तुम्हारे टप्पू को छीन रही हूँ। टप्पू एक अच्छा लड़का है। मुझे अच्छा लगता है। मैं चाहती हूँ कि उसकी जिन्दगी सुधर जावे। आगे चलकर वह एक अच्छा आदमी बने। इसीलिये मैं उसे समझाती रहती हूँ।"

लच्छो ठगी-सी खड़ी रह गई। गौरा की इन बातों को उसने बड़े ही आश्चर्य से सुना, पर उसे इस बात पर विश्वास न हो रहा था। वह जानती थी कि टप्पू जैसे लड़के के लिये कोई भी लड़की राजी हो सकती है। फिर गौरा इसका उपवाद कैसे हो सकती है! वह इससे कैसे बच सकती है। गौरा की इन बातों का उसपर प्रभाव पड़ा। उसके मन में विश्वास की भावना उठी।

"फिर वह मुझसे खिंचा-खिंचा-सा क्यों रहता है?

"यह तुम्हारी कमजोरी है।"—गौरा ने तपाक से उत्तर दिया—"आदमी को काबू और बेकाबू रखना औरत के हाथ की बात है। यह तुम्हारी कमजोरी है।"

गौरा का यह उत्तर पाकर लच्छो चुप रह गई। अब आगे उसके मन में कोई प्रश्न न था और न कोई शंका ही थी। उसके मन का सारा मैल धुल गया था।

"मुझसे भूल हुई।"—लच्छो ने दबी जुबान से कहा—"मैं और कुछ समझकर आपके पास आई थी।"

"मैं सिर्फ यही चाहती हूँ टप्पू हर तरह से अच्छा बने। इसी में मुझे खुशी है और इसी ख्याल से मैं उसे अपने पास बुलाकर समझाया करती हूँ!"

गौरा का गला भर आया था। अपनी सूनी-सूनी निगाहों से वह ऊपर आकाश को देख उठी। उसने उदास मन से सब कह तो दिया था, पर उसके अन्तर की सारी बातें न थीं। वह कह तो गई थी यह

सब. पर उसके मन की आवाज न थी वह। कलेजे पर पत्थर रखकर वह इन सब बातों को कह गई थी।

लच्छो उसके सामने खड़ी थी। धूल से भरा उसका गोरा और भरा हुआ चेहरा बड़ा मोहक प्रतीत हो रहा था। अस्त-व्यस्त केश और मैले-कुचैले कपड़ों में वह खिल रही थी, जैसे आकाश का चाँद धूमिल हो जाने पर और खिल उठता है।

यह लड़की जो उसके सामने खड़ी है, टप्पू की भावी पत्नी है। उसे टप्पू पर पूरा अधिकार है और अपने अधिकार को ही छीनते देख वह दौड़ी आई है। टप्पू से उसकी ममता है और किसी भी कीमत पर वह टप्पू को छोड़ने के लिये तैयार नहीं है। वह इसीलिये दौड़ी आई है और अपने पति के प्रति भी वह खूब सजग है।

गौरा इस बात को महसूस किया कि सचमुच में उसने गलती की है। किसी की धरोहर को छीनने का उसे क्या अधिकार है। यह उसकी एक बहुत बड़ी अनाधिकार चेष्टा हुई है। किसी नारी का सिन्दूर छीन लेने का उसे क्या अधिकार है? और यदि वह ऐसा करती है तो यह बहुत बड़ा पाप है।

पाप...?

गौरा आँखें फाड़कर रह गई। क्या सचमुच उसे टप्पू से इतना प्यार हो गया है? क्या सचमुच उसे मन में टप्पू के प्रति और आकर्षण उत्पन्न हुआ है उसका यही उद्देश्य है कि वह टप्पू को उसी रूप में पा सके जिस रूप में वह लच्छो का घोषित हो चुका है अथवा वह सचमुच में केवल यही चाहती है कि टप्पू एक अच्छा आदमी बने और इसी उद्देश्य से वह उसे निरन्तर प्रेरणा दे रही है।

गौरा को लगा यह सब विडम्बना है। एक बहुत बड़ी विडम्बना है। उसने जो कुछ किया है, अनजाने किया है। उसने बिना सोचे इस पथ पर कदम बढ़ा दिये हैं। न केवल वह अपना ही घर उजाड़ने जा रही

है, बल्कि अपने साथ वह लच्छो की भी दुनिया उजाड़ने पर तुली हुई है। जो कुछ भी यह हुआ है, वह एक बड़ी भूल है और इस भूल का परिणाम बहुतों को भोगना पड़ेगा। अगर यह बात लच्छो को मालूम हो गई है तो कल को सारा दुनिया इस बात को जान जावेगी तब लच्छो की तरह सारा दुनिया तिलमिला उठेगा, जो उसके हक में बिलकुल अच्छा नहीं है।

लाख-लाख बिच्छू के डंक गौरा के हृदय में चुभ गये। अपने आँसुओं से भरे चेहरे को उसने लच्छो की तरफ से फेरकर कहा—"तुम जाओ। टप्पू हमेशा तुम्हारा रहेगा।"

—और गौरा तेजी से वापस भाग गई। अपने कमरे में पड़े बिस्तर पर वह धम्म से जा गिरा। आँसुओं से सिरहाना भींग चला। गौरा रो पड़ी। वह दिल भरकर रोना चाहती था। अपने सारे आँसुओं को वह एकदम बहा देना चाहती थी। अनवरत अश्रुधार गौरा के रतनारे नयनों से बह चली और गौरा रोने लगा जी खोलकर। वह खूब रोना चाहती था।

दूरपर रेडियो कहीं खुला था। गीत झर रहा था—"दिल की लगी न छूटे रामा, चाहे जिया जाये!"

ज़िन्दगी में जो बुरे से बुरा काम भी करने को तैयार रहते हैं उनका ही जीवन आगे चलकर महान बनता है। मनुष्य को अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिये क्या-क्या नहीं करना पड़ता है! अपने ध्येय की प्राप्ति के लिये जो सब कुछ करने को तैयार रहते हैं, उनके ही चरणों पर अन्ततः सफलता को उस ध्येय की पूर्ति के लिये झुकना ही पड़ता है। इस पाठ को टप्पू ने भलीभाँति पढ़ लिया था और इसलिये वह सब कुछ करने के लिये तैयार था।

लच्छो से न मिल सकने का उसके मन में काफी दुःख रहा और इसी दुःख को अपने हृदय में सँजोये हुये वह काम पर गया। पुनुआ ने एक सिलसिले से उसे इतने सारे काम बता दिये कि सुबह से दोपहर तक वह उन्हीं कामों में फँसा रहा और उसे दम भरने की भी फुरसत न मिली। न ही वह कुछ सोच ही सका कि वह किस तरह से रूठकर गई हुई लच्छो को मना सके?

दोपहर तक टप्पू ने पुनुआ के बताए हुए सारे काम कर डाले।

पुनुआ के पास आया वह—"सब काम कर लिया मैंने दादा।"

"अच्छा ठीक है। कुछ सुस्ता लो। मैं बाजार जा रहा हूं। छोटी मालकिन आती ही होंगी। कोई काम हो तो बता देना।"

"यह भी कोई कहने की बात है, दादा"—टप्पू हँस पड़ा।

पुनुआ के जाने के बाद टप्पू बरामदे में आया। मालकिन की कुर्सी खाली थी। धूल पड़ी हुई थी। कपड़ा लाकर टप्पू पोंछने लगा। अपना काम वह सदा साफ रखना ही पसन्द करता था।

इस घर की छोटी मालकिन गौरा से लाख दरजे खूबसूरत है, पर उसमें वह आकर्षण नहीं है, जो गौरा में है। वह आकर्षण ही तो टप्पू की प्रेरणा है। बहुमूल्य परिधानों में लिपटी हुई अमूल्य आभूषणों से दमकती हुई वह लड़की, उसकी आँखों में चकचौंध उत्पन्न कर देने के लिये काफी थी। उस लड़की का रूप रङ्ग, शारीरिक बनावट गजब की थी। उसके वैभव के प्रति टप्पू के मन में हलकी-सी ईर्ष्या थी। काश! वह भी ऐसे ही वैभव को पा सकता तो....लेकिन गटर का कीड़ा मखमल के बिस्तर पर कभी नहीं बैठ सकता है।

लच्छो ही उसके साथ शामिल हो सकती है।

लच्छो...वह भी सुन्दर है और ऐसे ही वैभव में वह आ बसे तो इस लड़की को भी मातकर सकती है। लेकिन यह सब सपने जैसी बातें हैं और इन सपनों का पूरा हो सकना गजब का नामुमकिन है। लच्छो

इस समय हाथ में झाड़ू लिये हुये, दोनों हाथ में झाड़ू लिये हुये कसी सड़क को साफ कर रही होगी। यही उसकी जिन्दगी है। जीवन में यही करना लिखा है।

आहट पाकर टप्पू के हाथ रुक गये। चाकलेटी रंग का कार भीतर आ रही थी। टप्पू कपड़ा अलग रखकर खड़ा हो गया। कार का हैंडिल घूमा और वह लड़की बाहर आई। उभरे हुये वक्षः को वह किताबों से छुपाये हुये थी। टप्पू ने आगे बढ़कर उसके हाथ की किताबें ले लीं। कामदार सुनहरे सैंडिल द्वार पर उतार कर वह अपने कमरे में गई।

टप्पू ने उसका पुस्तकें यथास्थान रख दीं और ब्रुश उठाकर वह सैंडिल साफ करने बढ़ा जैसा कि पुनुआ का रोज का काम था। कीमती सैंडिल टप्पू के लिये बड़े ही आश्चर्य की बात है! काश! इस तरह के सैंडिल वह गौरा के लिये ले सके तो...

शायद नहीं।

इतना वैभव गौरा के लिये जुटा सकने में संभवतः वह जीवन भर असमर्थ रहेगा। टप्पू सैंडिल उठाने ही वाला था कि उस लड़की ने देख लिया।

"तुम रहने दो...पुनुआ साफ कर देगा।"

"पुनुआ दादा बाजार गये हैं। मुझसे ही आपका सारा काम करने को कह गये हैं।"

"तो क्या हुआ। रहने दो। वही आकर साफ कर देगा। अरे हाँ, मैं तुम्हारा नाम भूल-भूल जाता हूँ।"

"टप्पू कहते हैं मुझे।"

"टप्पू...तुम्हारा नाम भी खूब है।"—वह लड़की खिलखिलाकर हँस पड़ी।

टप्पू मुस्कुराकर रह गया। उसने कुछ भी न कहा।

"स्कूल में भी तुम्हारा यही नाम है?"

"हाँ!"

"यह तो अच्छा नहीं है। तुम्हें अपना कोई अच्छा सा नाम रख लेना चाहिये। पचीसों नाम हैं। सुरेश, प्रेम, दीपक, मनोहर, राकेश, ज्योति...पचासों नाम हैं। तुमने भी यह क्या नाम रक्खा है...टप्पू... वाह!"

"यह मेरा घर का नाम है। माँ मुझे इसी नाम से पुकारती हैं।"

"सभी के दो नाम होते हैं। पापा मुझे बेबी कहते हैं...पर इसका कभी यह मतलब नहीं कि मैं अभी दुधमुँही बच्ची ही हूँ। मेरा स्कूल का नाम है नीहारिका...सहेलियाँ मुझे इसी नाम से पुकारती हैं। टप्पू घर का नाम ठीक हो सकता है, पर आम लोगों के लिये तुम्हें दूसरा नाम रखना चाहिये। तुम्हीं सोचो क्या टप्पूप्रसाद यह नाम तुम्हें अच्छा लगता है। टप्पूलाल, टप्पूराम। यह सब नाम कोई सुनेगा तो पहले ही हँस देगा। तुम्हें यह नाम शोभा नहीं देता। तुम्हारा नाम तुम्हारे व्यक्तित्व के अनुकूल होना चाहिये।"

नीहारिका की इतनी लम्बी बात सुनकर टप्पू चुप रह गया। पहली बार नीहारिका ने इतनी लम्बी-चौड़ी बात कही थी। उसे कभी आशा न थी कि एक सम्पन्न परिवार की लड़की अपने नौकर से जो उसकी सैंडिल साफ करता है, इतनी घुल-मिलकर बातकर सकती है।

"खैर, मुझे तुम्हारा यह नाम टप्पू पसन्द नहीं है। मैं तुम्हारा दूसरा नाम रखूँगी। स्वरूप नाम तुम्हारे लिये कैसा रहेगा? मेरा मतलब स्वरूपकुमार..."

"तब तो लोग मुझे सरूपा कहने लगेंगे!"—टप्पू ने हँसकर कहा—"यह नाम और बदरंग रहेगा।"

"हुँ। ठीक कहते हो। अच्छा! मैं तुम्हारा और कोई नाम सोचूँगी जिसे कोई तोड़-मरोड़ न सके...गुसल तैयार है?"

"जी..."

"और पापा...?"

"वह सबेरे से ही गये हैं।"

"अच्छा। तुम बैठो। जब मैं पुकारूँ तो मेरे कपड़े ले आना।"

"जी...?"

"यह साड़ी तह करके रखो। जब मैं पुकारूँ तो ले आना।"

"अच्छा।"

नीहारिका ने भर नजर टप्पू की ओर देखा और गुसल के लिये बढ़ गई। इसमें सन्देह नहीं कि टप्पू का स्वरूप, गोरा भरा शरीर और उसका चेहरा अत्यन्त ही आकर्षक था। भले ही हरिजन का छाप उस पर थी पर वास्तव में था वह एक ब्राह्मण-कुमार। पंडित हरिहरनाथ शास्त्र चरित्र में भले ही कुछ भी क्यों न हों, पर रूप और शरीर में वह अलबेले थे। उनकी यही छाप गोरा पर भी थी। नीहारिका के जाने के पश्चात् टप्पू साड़ी को तह करने लगा। उस काफी पतली साड़ी पर उसे आश्चर्य हो रहा था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि इतनी पतली साड़ी पहनने से क्या फायदा? जिस साड़ी के रेशे-रेशे से बदन का हर हिस्सा दिखलाई पड़े भला उसे साड़ी की संज्ञा दी जा सकती है। लेकिन आजकल का जमाना और आजकल की इस फैशन को क्या कहा जावे कि इसी को साड़ी माना जाता है जिसके पहिन लेने पर साया और बाड़ी भी मालूम पड़ जावे। आखिर ऐसा क्यों? जवान लड़कियों को इस तरह के वस्त्र पहिनना क्या शोभा देता है? उतरता तो है नहीं, पर फिर भी आजकल इसी का जोर है। हर लड़की आज इस तरह के कपड़े पहिनती है कि कपड़ों की आड़ में वह अपने शरीर का भी प्रदर्शन कर सके। आज यह भावना जोर पकड़ती जा रही है। एक युग था पुरुष अपने आकर्षण से नारी को खींचता था, पर आज का यह युग है कि नारी अपने आकर्षण से पुरुष को खींच रही है।

टप्पू ने साड़ी तह करके रख दी और नीहारिका के पुकारने की

प्रतीक्षा करने लगा। नीहारिका के लिये वह गुसल तैयार कर देता था पर वह उसके गुसल के समय कभी न गया था। स्नान करती हुई किसी भी लड़की को उसने आज तक न देखा था और न वह देखना ही उचित समझता था, पर छोटी मालकिन का हुक्म...

इससे पहिले कि टप्पू के मन में कुछ भी घृणा के भाव उत्पन्न हो सकें उसने नीहारिका की आवाज सुनी।

"साड़ी लाओ।"

बड़ी पतली और बारीक आवाज जैसे ग्रामोफोन के रिकार्ड से आवाज निकली हो।

टप्पू साड़ी लेकर गया। स्नानगृह के बाहर थी नीहारिका। उसके शरीर से एकदम पतली भींगी साड़ी लिपटी थी। सारा अंग गुलाब की तरह पानी में भींगा हुआ चिलचिला रहा था। गुलाबी शरीर पर सर्वत्र पानी की एक पतली तह गजब की थी। नीहारिका के शरीर की बनावट भी कुछ कम सुन्दर न थी। टप्पू एक ही नजर सब देख सका और उसके बाद उसकी पलकें झँप गईं। साड़ी उसने आगे बढ़ा दी। स्नान से निवृत्त नीहारिका द्विगुणित रूपवती हो उठी थी।

साड़ी बढ़ाकर टप्पू बिना निगाहें ऊपर उठाये ही वहाँ से लौटा।

"अरे, मेरी वाडी वहीं है, ले तो आओ।"

"जी।"

टप्पू उसके कमरे में आया। वाडी खोजी। वाडी को हाथ में उठाते ही वह सिहर उठा। उसे भास हुआ कि वह वाडी नहीं नीहारिका का वक्षः है। वाडी उसके हाथ से छूट गिरी। टप्पू का सारा शरीर सनसना उठा। उसे यह क्या हो गया! टप्पू को भास हुआ कि वह बहुत बड़ा पाप कर रहा है? किसी लड़की की वाडी स्पर्श करने का उसे क्या अधिकार है। उसे काठ मार गया।

"जरा जल्दी लाओ!"

दो सौ तेइस

नीहारिका की आवाज ने उसे चैतन्य कर दिया ।

"जी...."—धीरे से टप्पू ने कहा हालाँकि नीहारिका उससे काफी दूर दीवाल के उस पार स्नानगृह में थी ।

टप्पू वाडी लेकर गया । मुँह फेरकर उसने वाडी आगे बढ़ा दी ।

"आज बड़े सुस्त मालूम पड़ रहे हो ! हर काम में देरी कर रहे हो । क्या तबीयत ठीक नहीं है ?"

"जी... जी....ठीक हूँ ।"

नीहारिका ने उसके हाथ से वाडी ले ली । टप्पू में इतना साहस न था कि एक पलक भी वह नीहारिका को देख सके । वह बुरी तरह से घबड़ाया हुआ था । नीहारिका ने वक्षः की साड़ी हटाकर वाडी पहिनी पर टप्पू ने उसकी ओर न देखा । वह निगाहें जमीन पर ही गड़ाये खड़ा रहा । नीहारिका कनखियों से उसकी ओर देख रही थी पर टप्पू ने उसकी ओर आँख भी न उठाई । नीहारिका का चेहरा तमतमा आया था ।

नीहारिका हट गई ।

टप्पू उसकी उतारी हुई साड़ी को धोने के लिये बढ़ा पर नीहारिका ने उसे रोक दिया—"रहने दो, पुनुआ आकर साफ कर देगा ।"

"लेकिन...."

"मैं पुनुआ से कह दूँगी । वह तुम पर बिगड़ेगा नहीं ।"

"पर मैं आपका नौकर हूँ । मुझे यह सब काम करना चाहिये ।"

"तुम नौकर हो । तुम्हें मालकिन का हुक्म मानना चाहिये न कि दूसरे नौकर का । मेरे साथ आओ ।"

भींगी बिल्ली की तरह टप्पू नीहारिका के साथ आया ।

"मैं तैयार होकर आती हूँ तुम मेरे लिये खाना लगाओ ।"

"लेकिन...."—टप्पू को अपनी जाति का ख्याल आया । वह धोखा देकर अपनी जाति छुपाकर उन लोगों के यहाँ काम कर रहा था, पर इसका

यह मतलब नहीं कि वह उन लोगों को इस दरजे तक भ्रष्ट करदे कि अपने हाथ के स्पर्श से खाना खिला दे।

"तुम वही करो जो मैं कहती हूँ।"

"पुन्नू दादा आ जाते तो... मुझे कुछ मालूम नहीं है कि कहाँ क्या है... ?"

"जो कुछ तुम जानते हो, वही करो।"

टप्पू बड़े असमंजस में पड़ गया। अच्छा पालन करना उसके लिये अत्यावश्यक था। दुविधा में पड़ा उसका मन कसक उठा।

"अच्छा'—कह कर वह कुछ ही कदम आगे बढ़ा कि नीहारिका ने उसे रोक लिया।

"ठहरो... अभी खाना रहने दो... कुछ जलपान ले आओ...."

"जी...."

टप्पू का जान में जान आई।

"पर एक नहीं दो आदमियों के लिये मेरे कमरे ले आओ...."

"जी...."

टप्पू चला गया। जाते जाते उसने देखा कि नीहारिका कहीं फोन कर रही है।

"कुछ देर बाद टप्पू ने दो आदमियों का जलपान नीहारिका के कमरे में लाकर रख दिया। उसने कमरे से बाहर आते ही उसने एक नवयुवक को देखा। गोरे चिट्टे रंग का नवयुवक हट्टकट्टा था। वेश भूषा से भले घर का मालूम पड़ रहा था। होठों पर सिगरेट थी और चेहरे से शरारत टपकी पड़ रही थी। चेहरे से वह एकदम बदमाश मालूम पड़ रहा था। टप्पू उसे देखते ही घृणा से भर गया।

"नीरा कहाँ है ?"—तपाक हो उसने पूछा।

"........"

टप्पू उत्तर दे सके इससे पहिले उसकी आवाज सुनते ही नीहारिका बाहर आ गई—"मैं इधर हूँ। आओ...."

वह अजीब ढंग से मुस्कुराकर नीहारिका के पास लपक गया और उसका हाथ अपने हाथ में लेकर उसने पूछा—"पापा नहीं हैं ?"

"हाँ !"

"तभी....मजा है....यह लड़का कौन है ?...."

"नया नौकर है !"

"नौकर ! जवान नौकर रखना खतरनाक होता है !"—बड़ी बेहयाई से वह हँस पड़ा।

"पर यह बहुत सीधा है !"

नीहारिका हाथ में हाथ डाल कमरे में उसके साथ चली गई।

"टप्पू दो चाय तैयार करके आओ।"

"जी"

टप्पू चाय तैयार करने चला गया। उसके मनमें यही बात कोंच रही थी कि ऐसे बदमाश आदमी से नीहारिका की इतनी घनिष्ठता कैसी ? क्या वैभव में पलनेवालों का चरित्र इतना सस्ता होता है !

टप्पू ने चाय तैयार की। दो प्यालियों में भरकर ले आया। कमरे में आकर उसने देखा कि वह पलंग पर एक दूसरे से सटे बैठे थे। उस आया देख नीहारिका हट गई, पर वह ज्यों का त्यों बैठा रह गया।

"रख दो"—नीहारिका बोली—"और जाओ जो काम पुन्नू बतला गया है, वह कर डालो।"

"जी !"

टप्पू बाहर आ गया। उनका जी मचलाने लगा। घर में इस समय कोई नहीं है और ऐसे एकान्त में नीहारिका का एक युवक से मिलने का अर्थ क्या है ? टप्पू के मनमें यह प्रश्न कुछ देर तक उमड़ता रहा, पर इन व्यर्थ की बातों से अपना मन हटाकर वह काम में लगा रहा।

छिः ।

साड़ी धोकर डालने के पश्चात वह पुनः नीहारिका के कमरे के सामने से न गया। जान बूझ कर वह पिछले कमरे की सफाई में उलझ गया।

बड़ी देर बाद उसने नीहारिका की आवाज सुनी।

नीहारिका उसे बुला रही थी।

"टप्पू...."

टप्पू बिना कुछ कहे उसके सामने आया।

उसने देखा कि वह युवक जा चुका था। नीहारिका अकेली द्वार पर खड़ी थी।

"कहिये ?"

"आओ।"—नीहारिका ने धीमे दबे स्वर में कहा। जैसे वह उससे भयभीत हो रही है। अपने साथ वह टप्पू को ले कमरे में आ गई। पलंग पर बैठ गई। टप्पू उसके सामने खड़ा था।

"तुम्हारे पास सिर्फ यही कपड़े हैं ?"

"जी हाँ।"

"तुम अच्छे लड़के हो। मेरा हर काम अच्छे से करते हो। मैं तुम से बहुत खुश हूँ। लो यह...."

नीहारिका के हाथ में दस रुपये का एक नोट था।

"यह क्या करूँगा।"

"अपने लिये कपड़े बनवा लेना।"

"पर—"

"कुछ मत कहो। यह रुपया रख लो। नहीं तो मैं नाराज हो जाऊँगी। और सुनो किसी से मत कहना कोई यहाँ आया था। यदि तुम मेरी हर बात माना करोगे तो मैं तुम्हें माला-माल कर दूँगी। तुम्हें किसी चीज की कमी न रहेगी!"

दो सौ सत्ताईस

टप्पू ने चुपचाप दस रुपये का वह नोट ले लिया, पर नीहारिका के प्रति उसके मन में घृणा के बीज जम चुके थे। गजब की खूबसूरत लड़की का अन्तर इस गजब का कलुषित भी हो सकता है! लेकिन उसे इन सब बातों से क्या करना है! उसे अपने काम से काम। टप्पू ने इन बेकार की बातों से अपना मन हटा लिया।

अपने कार्य से निवृत्त होकर वह रात के अँधियारे में वापस आया। उसका मन उदास हो रहा था। उसे कुछ अच्छा न लग रहा था। नीहारिका के व्यवहार से उसके मन को ठेस लगी थी। मनुष्य का इतना घृणित रूप नजदीक से देख सकने का यह उसका प्रथम अवसर था। उसे आन्तरिक घृणा हो रही थी। नीहारिका के ऐसे रूप की उसे तनिक भी आशा न थी।

मैदान के बीच में टप्पू पहुँच भी न पाया था कि एक धुँधली छाया ने आगे बढ़कर उसका रास्ता रोक लिया। उसे देखते ही टप्पू का मन प्रसन्नता से भर उठा।

वह उसे पहिचान गया था।

भला उस छाया को पहिचान सकने में वह कभी भूल कर सकता था!

वह लच्छो थी!

"लच्छो....तुम....

"हाँ!"

"कल तुम मेरे पास से भाग गईं पर मैं तुम्हें खोजता रहा!"

"क्यों—? मुझे खोजने की क्या जरूरत आ पड़ी?"

"तुम मेरी बात का बुरा मान गईं?"

"नहीं तो...."

"यही मैं जानना चाहता था और यह आशा करता हूँ कि जो कुछ

तुमने देखा है, उसे अपने ही तक रखोगी....किसी से कहोगी नहीं....!"

"क्या तुम मुझसे ऐसी उमीद करते हो !"—कसक से लच्छो ने कहा—"मैं ऐसा कर सकती हूँ। मैं सब दुःख भोग लूँगी लेकिन तुहारे ऊपर जरा भी आँच न आने दूँगी। तुम मेरे हो !"

"हाँ, इसीसे मैंने तुमसे यह उम्मीद की है !"

"यहाँ वहाँ के चक्कर में कुछ भी नहीं रक्खा है। आओ, आराम से हम अपना घर बसाकर दो रोटी खावें। जिन्दगी में हाय-हाय करने से कुछ भी नहीं मिलता है !"

"तुम्हारी बात मानता हूँ !"—टप्पू ने कहा—" लेकिन सभी आदमियों का स्वभाव एक सा नहीं होता है। तुम मेरा स्वभाव समझ लोगी तो शायद फिर कभी ऐसा न कहोगी !"

"तुम्हारा सुझाव मैं खूब समझती हूँ !"—लच्छो ने क्रोध से कहा।

"समझती हो तो अच्छी बात है !"

टप्पू आगे बढ़ा। लच्छो भी साथ चली।

"क्या मरजी है तुम्हारी !"—टप्पू का स्वर तीखा था—" मैं अभी काम से आ रहा हूँ। मैंने अभी खाना भी नहीं खाया है !"

"मैं तुम्हारे पीछे कहाँ पड़ी हूँ। मैं अपनी राह जा रही हूँ।

"तुम शैतानी से बाज न आओगी। जाओ, रात में मिलना !"

"दिल से कह रहे हो ?"

"नहीं तो क्या मजाक कर रहा हूँ।"

"बुलाकर दुतकारोगे तो नहीं ?"

"दुतकारने पर भी क्या तुम पीछा छोड़ दोगी।"

"जहन्नम तक मैं तुमको छोड़ने वाली नहीं हूँ।"

"मर जाने पर चुड़ैल बनकर पीछे लगी रहोगी ?"

दो सौ उन्तीस

"हाँ हाँ, हाँ।"

लच्छो बड़ी मुश्किल से अपनी हँसी रोककर अँधेरे में एक ओर खिसक गई। टप्पू आगे बढ़ गया। लच्छो के मिल जाने से उसके मन में सन्तोष आ गया। भय की जो भावना सुबह से उसके मन में उमड़ रही थी, वह जाती रही। निश्चिंत मन से वह घर में घुसा। जसुदिया खनमन पर बरस रही थी।

टप्पू को आया देख उसने रूखे स्वर से कहा—"आ गया?"

"हाँ माँ—"

"........"

टप्पू ने नीहारिका से मिला दस रुपये का नोट जसुदिया के हाथ पर रखकर कहा—"आज मालिक के घर से मिला है।"

"दस रुपया!"

"हाँ!"

"जुग-जुग जिओ मेरे लाल! बुढ़ापे में ऐसे ही मेरे आत्मा को सन्तोख दो! आ, दो रोटी खा ले!"

दस का नोट पाकर जसुदिया ने बड़े प्यार से उसके सामने खाना परोसा।

जबर्दस्ती एक रोटी और टप्पू को उसके खिलाई। टप्पू के खा चुकने के बाद उसने बड़े प्यार से कहा—"जा मैदान में आराम से लेट जा...."

"बत्ती के पास लेट रहूँगा।"

"इस बत्ती को आग लगे। कभी ठीक भी नहीं ठहरती है। हम लोगों की बस्ती में यह बत्ती केवल दिखलाने के लिये लगी है। महीने में पचीस दिन बेकार रहती है!"

"........"

"और ओ टप्पू....लच्छो से देखा-देखी होती है या नहीं?"

"कभी-कभी रास्ते में मिल जाती है।"

"हाँ, उससे अच्छे से बात किया कर। बस्ती में वह अपने किसिम की एक ही लड़की है। तेरा भाग है, जो तुझे मिल रही है। मेरे मरने के बाद वही तेरी देखभाल करेगी!"

"ऐसा न कहो, माँ।"—टप्पू ने कहा—"अभी तुम्हें बहुत दिन जीना है!"

"बहुत दिन नहीं जीऊँगी बेटा।"—जसुदिया बोली—"हाथ पैर ढीले पड़ गये हैं। अब तो चलते के नगाड़े हैं!"

टप्पू उदास हो गया। माँ की ओर उसने सजल नेत्रों से देखा और चुपचाप मैदान में अपनी पुरानी चादर लेकर आ गया। बत्ती बुती हुई थी। अँधेरा था। एक ओर अपनी चादर डालकर वह लेट रहा! नीहारिका की याद उसे बड़ी देर तक आती रही। गौरा से कहीं अधिक खूबसूरत लड़की है वह। उसकी चाल-चलन ठीक नहीं है। वैभव में बिना अंकुश के पलनेवाली लड़की बिगड़ जाती है, तो इसमें आश्चर्य क्या! पर इस पतन में केवल क्षणिक सुख है और शेष जीवन में अन्धकार ही अन्धकार है। अपनी इस अवस्था पर न सोचकर चलनेवाली नीहारिका को जीवन में बहुत पछताना पड़ेगा।

जिन्दगी का सफर काफी लम्बा है। टप्पू की अभी एक ही मंजिल पार हुई है। उसे लम्बी मंजिल तय करना है। नौकरी करते हुये पढ़ना है। पढ़ाई समाप्त करने के पश्चात् फिर नौकरी करना है और तब कहीं स्थिति बनने पर गौरा को वह अपना सकेगा। अभी काफी लम्बा वक्त इस बीच में पड़ा है।

कम से कम चार-पाँच साल!

चार-पाँच साल!

उफ़! इतनी लम्बी अवधि तक क्या गौरा उसकी प्रतीक्षा करती रहेगी! क्या तब तक गौरा उसके लिये रुकी रहेगी!

दो सौ इकतीस

गौरा बिना वह जीवित नहीं रह सकता है। वह यह सब केवल गौरा के ही लिये कर रहा है।

आसमान के तारे धूमिल पड़ रहे थे।

रात का सन्नाटा बढ़ गया था।

टप्पू गौरा से मिलने के लिये छटपटा उठा। वह उससे मिलकर आश्वस्त हो जाना चाहता था। इधर-उधर देखा उसने। सर्वत्र सन्नाटा था। सभी अपने-अपने स्थान पर सुध-बुध भूल पड़े थे। टप्पू अपने बिस्तर से उठा।

चुपचाप बढ़ गया वह।

सड़क पर आया।

ठिठक गया। सदा की तरह कहीं लच्छो इस बार उसका पीछा तो नहीं कर रही है। कहीं को ़न दिखा तो टप्पू धीरे-धीरे बढ़ गया। लच्छो तक यह भेद खुल ही गया है पर उसे मना लिया है। अतएव विशेष भय की बात अब नहीं है।

टप्पू शास्त्रीजी के घर के सामने आया।

सारा घर अन्धकार में डूबा हुआ था। कहीं कोई दृष्टिगत न हो रहा था। क्या गौरा इस समय अपने कमरे से बाहर होगी ? क्या वह उसकी प्रतीक्षा उस दिन की तरह कर रही होगी ? शायद नहीं....टप्पू ने आँखें गड़ाकर देखा। कहीं कुछ भी नजर न आया।

उसका मन बैठ गया।

वह कैसे गौरा तक इस सन्देश को पहुँचाये कि वह आ गया है। उसकी प्रतीक्षा में वह बेकरारी से बाहर सड़क पर खड़ा हुआ है और दो बोल सांत्वना के चाहता है। गौरा उसकी प्रतीक्षा करती रहेगी। बरसों तक वह इन्तजार करती रहेगी...

उफ़ !

दो सौ बत्तीस

टप्पू का दिल हाथ से जाता रहा केवल। वह कराह उठा। किसी प्रकार....किसी तरह वह गौरा तक पहुँच सकता....

गौरा....

टप्पू का मन कैदी पंछी-सा पिंजड़े में तड़फड़ा उठा।

गौरा का कमरा उसका देखा, जाना है। सीढ़ियों का रास्ता भी वह जानता है। उसे सब मालूम है। केवल यही फाटक उसका रास्ता रोके हुये हैं....लेकिन दो दिलों को मिलने से सात समुन्दर भी नहीं रोक सकते हैं....

टप्पू ने इधर-उधर देखा और पलक मारते ही फाटक पर चढ़कर उस ओर कूद गया। वह गौरा से मिलकर ही रहेगा। जो होगा, देखा जावेगा।

प्रेम के पीछे मनुष्य को क्या-क्या नहीं करना पड़ा है !

अन्धकार में टप्पू चोरों की तरह आगे बढ़ गया।

जसुदिया ने खनमन को डरा-धमकाकर सुला दिया। बाहर से साँकल चढ़ाकर वह बारामदे में लेटी थी। सोने का उपक्रम कर रही थी। पर आँखों में नींद न थी। खनमन गहरी नींद में पड़ा था और टप्पू उससे काफी दूर मैदान में कहीं सो रहा था।

बीते दिन उसे याद आ रहे थे। यौवन बीत जाने पर भी मनुष्य के मन की तृष्णा कहाँ मिटती है ! तृष्णा मनुष्य के साथ कब्र तक जाती है। एक लम्बा समय बीत जाने पर भी जसुदिया पंडितजी से एकान्त में न मिल सकी थी। यौवन की दुपहरिया में तो रोज मिलना होता था। पंडित हरिहरनाथ शास्त्री बेकरारी से उसका इन्तजार किया करते

थे। अब तो प्रतीक्षा की आकुल घड़ियाँ बीत चुकी हैं, केवल मन में तृष्णा शेष है।

दुनिया की दृष्टि में पंडित हरिहरनाथ शास्त्री धर्म प्रेमी, कर्मकांडी पंडित थे और उनका सर्वत्र आदर था, पर जसुदिया की दृष्टि में वह ढोंगी थे, पतित थे, जो अपनी तृष्णा के पीछे सब कुछ कर सकते थे।

जसुदिया का मन न माना। उसे नींद न आ रही थी। उठकर बैठ गई वह। पुराने दिनों की तरह वह शास्त्रीजी से मिलने के लिये छटपटा उठी। न रहा गया उससे। कोई उसे देखनेवाला तो था ही नहीं। टप्पू जब खनमन की उमर का था तभी वह उसे सोता छोड़कर चली जाया करती थी।

जसुदिया उठी और सदा की तरह वह पुराने रास्ते पर चल पड़ी। रात का अँधेरा उसके लिये कोई नयी बात न थी। परिचित रास्ता, परिचित वातावरण ! पंडितजी के घर में वह सामने से न जाती थी। उसे पीछे का रास्ता अच्छी तरह से मालूम था।

धीरे से दरवाजा खोलकर वह भीतर घुस गई। दबे पाँव वह आगे बढ़ रही थी। वह जानती थी कि पंडितजी को अब उसकी प्रतीक्षा नहीं है। वह अपने कमरे में नाक बजाते हुये सो रहे होंगे। कई बार वह उन्हें सोते से जगा चुकी थी।

वह दबे पाँव बढ़ रही थी कि सम्मुख ही दो छाया देखीं उसने।

यह क्या !

उसके पाँव ठिठक गये।

अन्धेरे में वह और दुबक गई।

आश्चर्य हो रहा था उसे। इस अन्धकार में उस जैसा जोड़ा कहाँ से आ गया ?

यह कैसी पुनरावृत्ति है ! क्या वह स्वप्न तो नहीं देख रही है अथवा अपने बीते दिनों की याद तो भ्रम बनकर सामने नहीं आ गई है।

दो सौ चौंतीस

नहीं ! यह नहीं; स्वप्न नहीं, वास्तविकता थी । एक लड़की और एक लड़का आपस में एक दूसरे के काफी नजदीक खड़े हुये बातें कर रहे थे ।

गौर ने देखा उसने । दोनों चेहरे उसे काफी परिचित प्रतीत हो रहे थे ।

कौन है यह आगे ?

अरे !

दंग रह गई जसुदिया !

एक तो उसका अपना बेटा टप्पू ही था और उसके पास सटकर खड़ी थी गौरा !

उफ़ !

यह सब क्या है ;

जसुदिया के पाँव तले की धरती खिसक गयी, इस दृश्य की तो उसे स्वप्न में भी कल्पना न थी । यह कैसी विचित्र बात है ! वह यह भूल गई कि माता पिता जो कुछ करते हैं, सन्तान द्वारा उसकी पुनरावृत्ति होती ही है ।

जसुदिया की साँस रुक गई । आँखें फटी की फटी रह गईं । दोनों एक दूसरे के काफी नजदीक थे । अब समझी जसुदिया । गौरा और टप्पू में भी वही सम्बन्ध हो गया है, जो शास्त्रीजी और उसमें है ।

"बचन दे रही हो, गौरा....?"

"हाँ !"

"पीछे कदम न हटेगा....?"

"नहीं ! कदापि नहीं...."

"पर लच्छो...."

"मैंने उसे समझा दिया था । कहने को तो मैं उससे झूठ बोल

गई थी पर मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकती हूँ, टप्पू! मेरी हर साँस में तुम समाए हुये हो। तुम्हारी साँस से ही मैं जिन्दा हूँ...."

"गौरा...."

और इससे आगे का दृश्य जसुदिया न देख सकी। उसने मुँह घुमा लिया और दो पल बाद ही वह वहाँ से धीरे से खिसक गई। इस दृश्य को देखने से उसके मन में आश्चर्य भी हुआ था। उसके मिटने के पश्चात् जसुदिया का हृदय प्रसन्नता से भर गया। टप्पू के स्थान पर यदि उसकी लड़की होती तो वह उसे जहर देकर मार डालती लेकिन लड़का उसका था और लड़की थी शास्त्री की।

जसुदिया का मन घोर अट्टहास करने के लिये मचल उठा। उसे अपने बेटे पर गर्व भी हुआ। हः हः हः। शास्त्री ने उसे बरबाद किया उसके लड़के ने शास्त्री की बेटी की इज्जत ले ली है। सचमुच में ईश्वर बड़ा न्यायी है।

लेकिन यह है बड़े ही आश्चर्य की बात।

यह ही देखा गया है कि उसके ही वर्ग की स्त्रियाँ शास्त्रियों और तिलकधारी पंडितों द्वारा लुटी जाती हैं लेकिन पंडित वर्ग की किसी कन्या का प्रेम हरिजन बालक से आज तक नहीं देखा गया है। यह अनहोनी और अलबेली घटना है। ऐसी घटना शायद ही कहीं देखी गई हो!

जसुदिया का चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा। गर्वसे उसकी छाती फूल उठी। उसे लगा कि जैसे उस जैसा सौभाग्यशाली और कोई नहीं है। टप्पू इतना बदमाश है। भीतर ही भीतर वह इतना घुटा हुआ है।

वाह रे टपुआ!

लेकिन यह गौरा....पंडित जी की इस लड़की को भी यह सब क्या सूझा है! क्या उसे अपने कुल, मानमर्यादा, प्रतिष्ठा का कुछ भी ख्याल नहीं है और एक मेहतर के लड़के से आशनाई कर रही है!

हुस्स । इस दुनिया में परदे की आड़ में क्या-क्या नहीं होता है !

समझी जसुदिया । उसका रूप देखकर पंडितजी अपनी मर्यादा को ताख में रख नीचे उतर आये थे । ऐसे ही टप्पू का रूप देखकर गौरा भी नीचे उतर आई है, तो इसमें आश्चर्य की बात था ? यह कोई नई बात नहीं है । जसुदिया गर्व से भर गई । बाप ने जो किया उसका परिणाम बेटी भोग रही है !

हः हः हः ! क्या दुनिया है—और जिस दिन दुनिया को पंडित जी की लड़की का यह भेद मालूम होगा उस दिन...हः हः हः !

जसुदिया पुनः आगे आई । उसने देखा वहाँ कोई न था । वह समझ गई कि दोनों मिल-जुलकर चले गये हैं । कुछ देर रुक जसुदिया पंडितजी के कमरे की ओर बढ़ गई । पंडितजी के कमरे का दरवाजा पूर्ववत् खुला हुआ था । उनकी नाक हमेशा की तरह बज रही थी । जसुदिया ने मैले आँचल को नुकीला बनाकर हमेशा की तरह उनकी नाक में डाला । यह शरारत वह अपनी जवानी के दिनों से करती आ रही थी ।

हरिहरनाथ शास्त्री हड़बड़ाकर उठ बैठे ।

देखा—सामने खड़ी जसुदिया मुस्कुरा रही थी ।

"क्या है...?"—स्वर बिगड़ा हुआ था ।

"एक जमाने के बाद आई हूँ तो बिगड़ क्यों रहे हो ? बीते दिन याद आये तो आज चली आई ।"

"लेकिन....लेकिन...."

"डरने की जरूरत नहीं है पंडतजी....दुनिया अब तक हमारा भेद नहीं जान सकी है तो अब कैसे जान लेगी ?"

"आओ, बाहर आओ ।"

दोनों मकान के पीछे अन्धकार भरे स्थान में आये ।

"अब तो हमारी याद भी न आती होगी आपको....?"—जसुदिया धीरे से हँसी ।

"याद तो आती है लेकिन अब शरीर जवाब दे चला है।"

"हाँ, अब हमारे लड़के जवान हो गये हैं।"

"ठीक कहता हो गौरा भी बड़ी हो गई है। आजकल दिन रात उसके ब्याह की चिन्ता मेरे सर पर सवार है। नींद भी ठीक से नहीं आती।"

"लेकिन कहीं हमारे लड़के बच्चे हमारी की तरह न निकलें।"—जसुदिया ने तीर मारा।

"क्या बकती है जसुदिया।"

"कुछ नहीं।"—जसुदिया ने मुस्कुराकर कहा—"मैं अपने लड़के के बारे में कह रही हूँ। आपकी लड़की तो एकदम सीता है।"

"हाँ, मेरी लड़की...."—पंडित हरिहरनाथ शास्त्री के मुँह से एक लम्बी साँस निकल गई—"मेरी लडकी, काश! टप्पू सचमुच मेरा लड़का होता... ऐसा सुन्दर ऐसा सुशील।"

"सच पूछा जाय तो वह आपका ही लड़का है। शादी से पहले...."

"जानता हूँ। जानता हूँ लेकिन उसपर मुहर तो तुम्हारी ही लगी हुई है। यह केवल हम तुम ही जानते हैं कि यह मेरा लड़का है, पर दुनिया...."

"उसे गोद क्यों नहीं ले लेते हो, पंडतजी...."

"तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है, क्या!"

जसुदिया हँस पड़ी।

"तहलका मच जावेगा यही न, पर पंडतजी यदि आप ऐसा कर लेते हैं तो मरने के बाद आप नरक में नहीं जावेंगे, बल्कि यदि ऐसा न करेंगे तो जीते जी आपको नरक भोगना पड़ेगा।"

"पागल जैसी बातें मत करो। टप्पू को गोद लेने की बात मैं मरने के बाद भी नहीं सोच सकता हूँ।"

"फिर पैदा क्यों किया था ?"

पंडित हरिहरनाथ शास्त्री ने बड़ी बेशरमी से कहा—"मैंने पैदा कहाँ किया ? पैदा तो तुमने किया ?"

"पर तुम्हारी ही वजह से पैदा हुआ।"

"यह तो सृष्टि का क्रम है।"—हरिहरनाथ शास्त्री का स्वर भारी था। दुःख से भरा था—"सोचता हूँ आज सचमुच में मेरा अपना एक बेटा होता तो कुल का दीपक सुलगता रहता। अब बुढ़ापे में क्या आशा करूँ !"

"टप्पू को आप अपना बेटा समझें।"

"कभी-कभी टप्पू के लिये मेरा मन भर आता है।"—पंडितजी का स्वर बड़ा व्यथित था—" लेकिन मैं बहुत मजबूर रहूँ। मेरी मजबूरियाँ एकदम खुली हुई हैं।"

"तब तो आज यह ऊँच नीच का भेद भाव आपको भी खल रहा है।"

"यह शूल सा चुभ रहा है। आज बंधन न होते तो सचमुच में मैं ने अपने बेटे को अपना बना लिया होता उसे मैंने अपने पास रख लिया होता !"

"आप ही लोगों के तो यह सब बनाया है।"

"हाँ, लेकिन एक जमाने से यह सब चला आ रहा है। शास्त्रों की व्यवस्था माननी ही पड़ती है। देश बदलता रहता है। शासन बदलता रहता है। दुनिया की हर चीज बदलती बिगड़ती मिटती और बनती रहती है, पर धर्म—कर्म ईश्वर है, वह सदा एक सा रहता है !"

"लेकिन मैंने तो सुना है कि जमाने के साथ धरम को भी बदलना पड़ता है।"

"कुछ-कुछ पर इतना नहीं !"

"आपने तो आदमी को लगड़ा कर रक्खा है पंडत जी...."

"बेकार की बहस मत करो। तुम लोगों के समझने का बातें यह नहीं हैं। यह बतलाओ कि तुम आज कैसे आ टपकीं ?"

"मन नहीं लग रहा था। सोचा बहुत दिन से बातें नहीं की मिलने चली गई ?"

"अच्छा किया !"—पंडित जी ने अपनी टेंट से एक पाँच रुपये का नोट निकाल कर जसुदिया के हाथ पर रख दिया—"रखलो और अब जाओ !"

"बस मेरी यही कीमत है पंडित जी...."

शास्त्रीजी के पास इसका कोई उत्तर न था। जसुदिया के पिचके गालों पर एक हलकी-सी चपत अपनी आदत के अनुसार जड़कर वह चले गये। जसुदिया भी बाहर हो गई।

वह सड़क पर आ गई।

उसके मन में हलचल मची हुई थी। उसके साथ भी जो कुछ पंडित हरिहरनाथ शास्त्री ने किया था उस पर बड़ी ही घृणा थी प्रतिशोध की भी भावना थी। यह सत्य था कि दुनिया को उसका और पंडितजी का संबंध मालूम हो जाने, पर यदि दुनिया वाले विश्वास भी कर लेते तो भी पंडितजी का कुछ भी न बिगड़ने वाला था। उसकी ही बदनामी थी इसमें, लेकिन गौरा के विषय में....खूब...पंडितजी कहीं के न रह जावेंगे। चुल्लू भर पानी में डूब मरने की नौबत आ जावेगी।

टप्पू का भेद खुलने पर उसके मन में तनिक भी क्रोध या घृणा नहीं हुई बल्कि उसे खुशी ही हुई। इस बात की तो उसे सपने में भी आशा न थी। टप्पू इतना होशियार है, उसे आशा भी न थी।

अच्छा है ! किसी तरह से टप्पू गौरा को भगाकर ले जावे तो मजा आवे....तब चारों ओर पंडितजी की क्या दशा न होगी ! दूसरे की

इज्जत लूटने वाले की इज्जत जब लुटे तो उसे मालूम पड़े कि इज्जत का क्या मूल्य है ?

लेकिन लच्छो....

लच्छो और टप्पू की शादी तो तय है ।

ऊँह ! इससे क्या होता है । उसके समाज में तो आज शादी होती है और दूसरे दिन छोड़ दिया जाता है । दूसरी कर ली जाती है । केवल पंचायत को दंड देना पड़ता है । दंड भी क्या । दो-चार बोतल शराब और एक बकरा ।

जसुदिया वापस आ गई ।

टप्पू की राह में उसे बाधा नहीं देना है, बल्कि उसे प्रोत्साहन ही देना है और साथ ही उसे यह भी न मालूम हो कि उसकी माँ भेद जान गई है ।

जसुदिया को रात बड़े ही सुख नींद आई ।

सुबह वह सोकर भी न उठी थी कि सरवन आ धमका । शोर मचाकर उसने जसुदिया को उठाया । जसुदिया क्रोध से भर उठी । बोली—"क्या है ? सुबह-सुबह मुरगे की तरह शोर क्यों मचा रहो हो ?"

"तुम मुझे मुरगा ही नहीं जो मन में आवे कह सकती हो । लेकिन यह बताओ कि तुम्हारा बेटा रास्ते पर आ रहा है या नहीं । मेरी लड़की दिन पर दिन बढ़ती जा रही है और जादा दिन मैं उस भैंस को अपने घर नहीं पाल सकता हूँ ।"

"तो वह भैंस मेरे लड़के के गले ही मढ़ने को है ।"

"अरे ! कैसी बात करती हो तुम ! बात पक्की हो ही गई है ।"

"इससे क्या हुआ ? मैं पंचायत को डाँड़ दे दूँगी, पर मेरा बेटा जब तक तैयार नहीं होगा । मैं तैयार नहीं हूँ और इस बात को तुम अच्छी

तरह से समझ लो कि मैं इस बात की गारन्टी भी नहीं देती हूँ कि मेरे बेटे से तुम्हारी लड़की की शादी होकर ही रहेगी।"

"तुम जादा फारसी न झाड़ो!"

"मेरी बात झूठ समझ रहे हो?"

"क्या मरजी है तुम्हारी! मेरी नाक कटाओगी क्या?"

"तुम्हारी नाक है ही कहाँ? जवान लड़की के सामने दूसरी औरत घर में लाकर रक्खी तब नाक का ख्याल नहीं था? अब आये हैं बड़े बनकर नाक की बात करने...."

जसुदिया की टेढ़ी बातें सुनकर सरवन सन्न रह गया। उसका चेहरा उदास पड़ गया। आवाज दब गई धीरे से पूछा उसने—"क्या यही तुम्हारा फैसला है?"

सरवन की दयनीय दशा पर जसुदिया पिघल गई। बोली नम्र स्वर से— "मैं फैसला करने वाली कौन होती हूँ तुम टप्पू को मनाओ। शादी उसे करनी है। जिन्दगी उसे निभानी है। मेरा क्या है! दो दिन की जिन्दगी! आज-मरी कल दूसरा दिन।"

"मरें तुम्हारे दुश्मन टप्पू की माई। हमारा समधी और समधिन का नाता कायम रहेगा।"

"मैं भी यही चाहती हूँ पर यह सब टप्पू पर ही है।"

"क्या तुम उसे राजी नहीं कर सकती हो?"

"वह मेरी इतनी ही बात मानता होता तो खानदानी पेशा क्यों छोड़कर और जगह मरने जाता।"

"खैर...." सरवन ने लम्बी साँस छोड़कर कहा—" मैं ही कोशिश करके देखूँगा। आगे राम भरोसे।"

सरवन उदास होकर चला गया। सूरज सिर पर चढ़ आया था फिर भी जसुदिया लम्बी हो गई। टप्पू के आगे उसके लिये किसी का भी कोई मूल्य नहीं था।

टप्पू खुश था। बहुत खुश था। उसकी खुशी का पारावार न था।

गौरा के दो ही शब्दों ने उसमें जान डाल दी थी। दो पल ही वह गौरा से मिल सका। वह दो पल उसके लिये दो साल से भी बढ़ कर थे। उस दो पल में ही उसने सब कुछ पा लिया। वह दो पल और उन दो पलों में गौरा ने जो कुछ भी कहा वह उसके लिये जीवन की अनमोल निधि हो गये।

गौरा ने स्पष्ट कर दिया कि टप्पू के बिना वह जीवित नहीं रह सकती है और दो चार बरसों की बात क्या ? युग-युग तक वह उसकी प्रतीक्षा करती रहेगी।

शिक्षा के बिना मनुष्य अपूर्ण है। संचित धन कुछ ही बरसों का साथी रहता है, पर शिक्षा से मनुष्य जीवन भर दो रोटी कमाकर खा सकता है। टप्पू का और शिक्षित होना अनिवार्य है और जब तक वह इस उद्देश्य को पूरा नहीं कर लेता है तब तक गौरा को साथ लेकर समाज का सामना वह नहीं कर सकता है।

प्रफुल्ल टप्पू भोर होते ही काम पर चला गया।

उसे आते देख नीहारिका ने आदेश दिया कि आज उसके साथ चलना पड़ेगा। स्कूल तो बन्द था पर नीहारिका प्रायः पुस्तकें लेकर सहेलियों के यहाँ जाया करती थी। पढ़ाई में कमजोर न रहे इस उद्देश्य से कुछ लड़कियाँ अध्यापिका के घर जाकर पढ़ा करती थीं जिनमें नीहारिका भी एक थी।

टप्पू इन्कार कैसे कर सकता था !

नीहारिका के साथ जाने के लिये वह तैयार हो गया।

नीहारिका भी सज-धज कर आई। टप्पू ने देखा उस वेशभूषा से नीहारिका का लावण्य और बढ़ गया था। गजब की सुन्दर लग रही थी

पर उसकी सुन्दरता का कोई प्रभाव टप्पू पर न पड़ा। वह चुपचाप उसके साथ कार तक आया और नीहारिका के बैठ जानेपर वह एक ओर नीचे ही बैठने को उद्यत हुआ।

"अरे....अरे वहाँ नहीं। मेरे पास बैठो!"

नीहारिका ने उसका हाथ पकड़कर अपने पास बैठा लिया।

मोटरकार में बैठने का यह उसका पहिला अवसर था। कुछ आनन्द और कुछ आश्चर्य के साथ वह बैठ गया। एक झटके से कार चल पड़ी। नीहारिका टप्पू से और सटकर बैठ गई। टप्पू चाहकर भी उसके स्पर्श से अलग न हो सका।

"मालूम है, हम लोग कहाँ चल रहे हैं?"

"आप पढ़ने के लिये जा रही हैं।"

नीहारिका खिलखिलाकर हँस पड़ी—"मूर्ख हो। गरमी के दिनों में भला कोई पढ़ने के लिये जाता है। आज मैं तुम्हें सिनेमा दिखलाऊँगी।"

"सिनेमा...."

"हाँ! पढ़ने का तो एक बहाना है।"

टप्पू चुप रह गया। नीहारिका की यह सब चाल-ढाल उसे अच्छी न लग रही थी। मन मारकर वह बैठा रह गया। कार कुछ ही देर बाद एक सिनेमा हाल के सामने रुकी और नीहारिका टप्पू के साथ उच्च श्रेणी में जा बैठी। टप्पू का यह पहला अवसर था। अतएव वह आश्चर्य से सब कुछ देखता हुआ चुप था। एक ओर तो उसके मन में नीहारिका के प्रति घृणा उत्पन्न हो रही थी, तो दूसरी ओर तो वह कुतूहल से भरा हुआ सब देख रहा था।

कुछ ही देर बाद खेल शुरू हुआ। हाल में अन्धकार छा गया। टप्पू ने महसूस किया नीहारिका ने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया

है। उसके हाथों की गरमी से वह तिलमिला उठा। नीहारिका के हाथ जितने ही पतले और मुलायम थे, उन हाथों में उतनी ही गरमी थी।

"अच्छा लग रहा है?"

"हाँ!"

खेल चलता रहा। टप्पू खेल देखने में ही मशगूल रहा और इधर नीहारिका की गर्म-गर्म निःश्वासें उसके कांधे से टकराती रहीं। नीहारिका उससे एकदम सटकर बैठी हुई थी।

आधा खेल खत्म होने पर जब बत्तियाँ जलीं, तो नीहारिका टप्पू की ओर देखकर मुस्कुरा पड़ी और टप्पू को भी मुस्कुराना ही पड़ा। आस-पास के लोग आँखें फाड़कर इस विचित्र जोड़े को देख रहे थे। एक की वेशभूषा राजकुमारियों-सी थी और दूसरा साधारण वस्त्रों में नौकर सा स्पष्ट लग रहा था, लेकिन रूप में अद्वितीय था।

पुनः खेल प्रारम्भ हुआ। टप्पू फिर डूब गया। नीहारिका की किसी भी क्रिया का उसे तनिक भी ध्यान न रहा।

खेल समाप्त होने पर नीहारिका उसका हाथ जोर से दबा उठ खड़ी हुई।

"कैसा लगा....?"

"अच्छा।"

"मैं इस खेल को एक बार देख चुकी हूँ।"

"देख चुकी हैं?"

"हाँ! अच्छे खेल मैं कई बार देखती हूँ।"

टप्पू ने कुछ न कहा। वह चुप रह गया। यह है पैसेवालों के तमाशे। उफ़! चुपचाप वह नीहारिका के साथ नीचे आया।

लड़कियों का एक झुण्ड उसके समीप से निकला और उसने आश्चर्य से देखा कि उस झुण्ड में गौरा भी थी।

टप्पू की उससे निगाहें मिलीं।

"गौरा...."

अपने आप उसके होठों से निकल गया। गौरा ने उसकी ओर देखा और तत्काल मुँह फेर लिया।

नीहारिका चिहुँक पड़ी।

"क्या है ? किसे पुकार रहे हो ?"

"कुछ नहीं....कुछ नहीं..."

टप्पू उस झुण्ड में जाती हुई गौरा को देखता रह गया।

"रुक क्यों गये ? चलो ?"

"आँ...हाँ...."

टप्पू ठगा-ठगा-सा नीहारिका के साथ कार में बैठ गया। कार दूसरी दिशा में उड़ गई। टप्पू मूर्तिवत् रह गया। गौरा ने उसे देख लिया है। लड़कियों के उस झुण्ड में वह गौरा ही थी। उसे वह भूल नहीं सकता है। वह गौरा ही थी। उसे भला वह कैसे भूल सकता है। पहिचानने में वह भूल नहीं कर सकता है। गौरा ने उसे देख लिया है, पहिचान लिया है। एक लड़की के साथ गौरा ने उसे देखा है कहीं...।

"टप्पू...."

"जी...."

"किस सोच में पड़ गये ?"

"कुछ नहीं...."

"क्या मुझसे नाराज हो ?"

"भला नौकर मालिक से नाराज क्यों कर होगा ?"—टप्पू ने मुस्कुराने का असफल प्रयास किया।

"तुम्हारे घर में कौन-कौन है ?"

"माँ है और एक छोटा भाई।"

"बस ?"

"हाँ।"

दो सौ छियालीस

"तुम्हारी शादी नहीं हुई ?"

"जी नहीं !"

"शादी तो करोगे जरूर ?"

"कौन जाने !"

नीहारिका खिलखिलाकर हँस पड़ी।

"तुम बहुत अच्छे लड़के हो।"

कार तब तक वापस अपने स्थान पर पहुँच गई थी। नीहारिका उतरी। टप्पू बाहर आया। बूढ़ा ड्राइवर कार लेकर चला गया। नीहारिका ने पुनुआ को आवाज दी।

"क्या है बिटिया ?"

"माला के यहाँ गये थे ?"

"उतनी दूर भला क्यों जावेगा ?"

"तुम बड़े भुलक्कड़ मालूम पड़ते हो दादा !"—नीहारिका ने कहा—"मैंने तुमसे कहा था कि उसके यहाँ जाकर सिलाई मशीन ले आओ। एक महीने से उसके यहाँ पड़ी है।"

"जाऊँ ?"

"हाँ, ले आओ। पापा कहाँ गये ?"

"कहीं काम से गये हैं।"

"हुँ !"

नीहारिका अपने कमरे में कपड़े बदलने चली गई।

"बड़े सरकार के लिये हलका खाना बना रखो टप्पू ! मैं जा रहा हूँ।"

"अच्छा !"

पुनुआ के जाने के बाद नीहारिका ने टप्पू को आवाज दी। आवाज सुनकर टप्पू उसके पास गया। उसने देखा नीहारिका के बदन पर नाम-

मात्र के कपड़े थे। अर्द्धनग्न-सी वह पलङ्ग पर एक कामुक मुद्रा में लेटी थी। टप्पू ने निगाहें झुकाकर कहा—"कहिये...."

"एक गिलास पानी लाओ!"

"जी।"

टप्पू पानी लेकर आया। केवल एक घूँट पीकर नीहारिका ने गिलास रख दिया।

"बैठो....?"

टप्पू बैठ गया।

"मेरे सर में दर्द है, आह!"—नीहारिका ने उत्तेजक अँगड़ाई ली।

"डाक्टर बुला दूँ।"

"नहीं। सिर्फ तुम मेरे सामने बैठे रहो।"

"मुझे काम करना है।"

"काम फिर करना...."

"लेकिन बड़े सरकार...."

"मेरे रहते तुम किसी बात की चिन्ता मत करो।"

"........"

"........"

"टप्पू यह बतलाओ कि और लड़कियों के बीच में कैसी लगती हूँ?"

"मैं क्या जानूँ।"

"तुम बड़े भोले हो! जानते नहीं हो भगवान ने यह रूप, यह शरीर किसलिये बनाया है?"

"जिन्दा रहने के लिये।"

"बेवकूफ है। और पास आओ...."

"........"

"मेरे पास आओ...."

"........"

"और नजदीक आओ....नहीं....खड़े हो, पहले दरवाजा बन्द करके आओ...."

टप्पू थरथर काँप उठा।

"छोटी मालकिन...."

"इस समय में तुम्हारी छोटी मालकिन नहीं हूँ। उफ़ ! मैं जो कहती हूँ, वही करो। तुम्हारा भाग्य है, जो तुम्हारी जिन्दगी में ऐसा सुनहला अवसर आया है। मैं जो कहती हूँ, वही करो। फिर तुम देखोगे कि यह घर मेरा यह सब कुछ तुम्हारा है। मैं तुम्हें मालामाल कर दूँगी। तुम राजकुमारों की तरह रहोगे। सिर्फ मेरे इशारे पर तुम चलो। यह जिन्दगी मजे के लिये है। बेवकूफ ! इस सुनहले मौके के लिये जाने कितने तड़फ-तड़फकर मर जाते हैं। मेरे लिये छुरियाँ चल गईं, पर यह तुम्हारी तकदीर है कि मैं...."

टप्पू अबोध तो था नहीं वह नीहारिका की इन बातों का आशय समझ गया।

"लेकिन...."

"आनाकानी मत करो ? तुम जो माँगोगे मैं वही दूँगी। इस घर की लाखों की सम्पत्ति तुम्हारी है। बोलो ? कितना रुपया चाहिये ?"

"मुझे रुपया नहीं चाहिये....?"

"फिर....मेरा कहा नहीं मानोगे ?"

"मैं....मैं....मुझे काम है।"

"काम बाद में करना....मेरे पास आओ !"

"पर आप...."

"आप मत कहो। इस समय मैं तुम्हारी मालकिन नहीं हूँ !"

टप्पू ने साहस बटोर कर कहा—"क्षमा करिये। मैं आदमी हूँ और आदमी एक का ही होता है। जीवन की कुछ मर्यादा होती है। इस

मर्यादा को न मानने वाले चार दिन चाँदनी में रहते हैं, पर बाकी जिन्दगी अँधेरी हो जाती है। मैं इसलिये यहाँ नहीं आया हूँ।"

"बेवकूफी मत करो....जानते हो मैं तुम्हें बरबाद भी कर सकती हूँ।"

"यही ना। आप मुझे नौकर न रखेंगी!"

"........"

"मैं अभी जाता हूँ!"

"........"

"मैं आया था कि दो रोटी पाकर महलों से कुछ सबक लेकर अपनी जिंदगी ऊँची उठा सकूँ, पर यहाँ मैं नर्क ही देख रहा हूँ। नीहारिका देवी मनुष्य का इतना गिरना खतरनाक है। आपको ऐसे ही लोग मिलेंगे जो आपकी जिन्दगी बरबाद कर देंगे और एक दिन आप फुटपाथ पर पड़ी दिखलाई देंगी...."

"बेवकूफ...हट जा मेरी आँखों के सामने से।"—नीहारिका नागिन की तरह फुफकार उठी।

"जी...."

टप्पू तेजी के साथ बाहर हो गया। वह चाहता तो नीहारिका के इशारों पर नाचकर काफी धन कमा सकता था। लेकिन वह इस पथ का राही न था। गौरा ने उसे सिनेमा से निकलते समय नीहारिका के साथ देख लिया था। उसका मन बैठ गया था। नीहारिका के साथ देखे जाने पर गौरा के मनपर इस समय क्या न बीता ही होगी? इसका स्पष्टीकरण उसके लिये अत्यावश्यक था। वह गौरा से मिलने के लिये छटपटा रहा था। ऐसे ही में नीहारिका के इस व्यवहार ने जले पर नमक छिड़कने का कार्य किया।

गौरा के लिये वह सब कुछ करने को तैयार था।

टप्पू तीर की तरह उस बँगले के दूषित वातावरण से बाहर हो

गया। भले ही नीहारिका की नजरों में वह बेवकूफ था, पर उसे आत्म-सन्तोष था कि गौरा के प्रति वह ईमानदार निकला और वह हमेशा ऐसा ही बने रहने का प्रयत्न करेगा।

टप्पू की आशाएँ धूल में मिल गईं....क्या हुआ एक जगह से नौकरी छूट गई, तो उसे पचीसों जगह नौकरी मिल सकती है। उफ! उसे कितनी मंजिल अभी पार करना है। तिलमिला उठा टप्पू! उसे ऊँचे उठना है! और ऊँचे उठना है।

लेकिन कैसे—?

उफ़!

टप्पू तिलमिला उठा।

तेजी से वह गौरा के घर के सामने आया। वह सीधे घर जाना चाहता था, पर उसके कदमअपने आप गौरा के घर के सामने रुक गये। न चाहते हुये भी उसे रुक जाना पड़ा। रोटी माँगने के बहाने से ही वह कम से कम गौरा के मनका भ्रम मिटा देना चाहता था।

वह भीतर गया।

आवाज दी उसने, पर कोई उत्तर नहीं आया।

क्या गौरा अभी तक लौटकर नहीं आयी है?

उसे पंडित जी के दोपहर बाद घर में रहने की आशा कम थी।

उसने पुनः आवाज दी।

कोई उत्तर नहीं....

टप्पू घबड़ा गया। क्या सचमुच गौरा अभी तक वापस नहीं आई है?

निराश होकर वह लौटने जा ही रहा था कि आहट सुनकर थम गया। देखा उसने—गौरा ही सामने थी। चेहरा एकदम उतरा हुआ था जैसे वह एकदम गम में डूबी हुई हो।

टप्पू उसे देखते ही घबड़ा गया।

दो सौ इक्कावन

गौरा उसकी ओर उड़ती निगाहों से देख रही थी।

"क्या है...?"

"तुम...तुम....सिनेमा...."

"हाँ, मैं गई थी। तुम भी तो गये थे?"

"हाँ, मालिक की लड़की के साथ गया था। मैं वहाँ काम करता था?"

"मतलब....?"

"उसने ही मुझसे कहा था। मैं उसके साथ गया।"

"अकेले....?"

"हाँ।"

"मैं शुरू से आखिर तक तुम लोगों को देखती रही हूँ। आखिर गटर के कीड़े...."

"गौरा...."

"मेरी आँखें धोखा नहीं खा सकती हैं, टप्पू। मैंने सब कुछ देखा है। तुमने मेरी कीमत न जानी और अपनी हरकत की छूरियों से मेरा शरीर तुमने छेद दिया है।"

"तुम मुझे गलत समझ रही हो, गौरा?"

"इसका सुबूत?"

"तुम जो कहो, वह मैं करने के लिये तैयार हूँ। केवल तुम्हारे लिये ही मैं नौकरी छोड़कर आ रहा हूँ।"

"अब वियोग असह्य है टप्पू! जो होगा देखा जावेगा। मैंने तय कर लिया है। तुम्हें रुपये चाहिये। मेरे पास अपार सम्पत्ति है। वह लेकर मैं तुम्हारे साथ चलने को तैयार हूँ। बोलो, तुम तैयार हो?"

"हाँ!"

"बस! तो आज रात। मैं तैयार रहूँगी। तुम भी आओ। देखा जावेगा, कल क्या होता है। यदि हम मिलना चाहते हैं, तो कोई हमें

रोक नहीं सकता है। कल ही हम लोग अदालत के सामने पेश हो जावेंगे।"

"मुझे मंजूर है।"

"आज रात ?"

"हाँ, आज रात !"

गौरा टप्पू के सामने से चली गई। टप्पू चुपचाप बाहर आ गया।

बस। अब नाटक का अन्त होने को आया। आज की रात और है और कल सुबह ही सारे शहर में, शहर के समाज में सनसनी मच जावेगी। कल तहलका मच जावेगा। एक ब्राह्मण कन्या, एक बहुत ही ऊँचे कर्मकांडी पंडित की कन्या सड़क पर झाड़ू लगाने वाले लड़के के साथ निकल गई। उफ़ ! तब क्या यह समाज पागल नहीं हो उठेगा।

जो होगा देखा जावेगा। गौरा के लिये वह सब कुछ करने के लिये तैयार है।

आज रात....?

शेष समय टप्पू ने पुलिया पर ही गुजार दिया। रात आई। माँ के लाख कहने पर भी उसने खाना नहीं खाया। माँ को उसने कुछ भी नहीं बतलाया। जसुदिया के मन में शंका हुई कि कहीं गौरा से उसकी खटपट तो नहीं हो गई है, पर इस विषय में जसुदिया ने उससे कुछ पूछना ठीक नहीं समझा।

रात हो जाने पर भी टप्पू मैदान में बिस्तर लेकर नहीं गया। अकारण वह लच्छो से नहीं मिलना चाहता था। लच्छो के प्रति उसका हृदय दया से अवश्य भर आया था, पर गौरा के समक्ष वह विवश था। उसे इस बात की खुशी थी कि लच्छो की जिन्दगी बरबाद करके वह नहीं जा रहा है। सगाई तो टूट भी सकती है और लच्छो का विवाह कहीं और भी हो सकता है।

रात भींग चली।

सन्नाटा बढ़ चला।

जसुदिया और खनमन गहरी नींद में जा गिरे। टप्पू की आँखों में नींद कहाँ थी। वह करवटें बदल रहा था।

"आज रात...."

"आज रात...."

दूर पर कुत्ते की भौंकने की आवाज ने उसे चैतन्य कर दिया। टप्पू उठा। बाहर आया। उसके पाँव बढ़ गये।

जाने कब रास्ता तयकर वह गौरा के घर के सामने आया। बाहर से ही उसने एक हिलती छाया देखी। वह ठिठक गया। दो पल बाद ही वह छाया उसके पास आ गई।

"आ गये टप्पू ....?"

"हाँ।"

"लो यह बक्स सँभालो। इसमें इतनी पूँजी है कि हमारी जिन्दगी आराम से कट सकती है!"

"लेकिन..."

"मैं जानती हूँ कि यह अनुचित कार्य है, पर इस सारी पूँजी को हम लोग केवल अपने ही उपयोग में नहीं लावेंगे बल्कि समाज को एकता का पाठ पढ़ाने के लिये भी इस धन का उपयोग होगा। आओ..."

टप्पू ने उस छोटे से सूटकेस को सँभाल लिया।

दोनों रात के अन्धकार में विलीन हो गये।

सूरज की किरणें फूटीं। पंडित हरिहरनाथ शास्त्री की नींद खुली। नींद खुलते ही उन्हें अपने सिरहाने कुछ महसूस हुआ। देखा। एक कागज का टुकड़ा 'खुर खुर' हो रहा था।

यह कहाँ से आ गया ?

उसे उठाया। उसपर दृष्टि गई। अरे, यह क्या। उसपर उनका नाम कैसा ? पढ़ा। एक साँस में पढ़ गये।

आँय !!

यह क्या....?

फिर पढ़ा ! आँखें फाड़कर पढ़ा। गजब ! गौरा का पत्र था वह उनके नाम। उसमें लिखा था कि वह सदा के लिये उनकी चोरी कर एक हरिजन बालक के साथ जा रही है। उसे समाज की इन व्यवस्थाओं से बड़ी ही नफ़रत है। सब मनुष्य एक हैं। इसी एकता के सिद्धान्त को प्रत्यक्ष रूप से पालन करने के लिये उसने हरिजन बालक टप्पू के साथ अपना विवाह स्वीकार किया है।

"टप्पू..."

पंडित हरिहरनाथ शास्त्री चीख पड़े। उनकी चीख से सारा मकान गूँज पड़ा।

"गौरा की माँ...."

"........"

"उफ़ !"

पंडित हरिहरनाथ शास्त्री को होश न रहा। बेहोश होकर वह एक ओर लुढ़क गये। घर में रोना पीटना मच गया। पंडितजी के घर में कुहराम देखकर पास-पड़ोस के सभी लोग टूट पड़े। भीड़ लग गई और बात दबाये न दबी। आग और हवा देर से फैल सकती है, पर ऐसी बातों को फैलते कहीं देर लगती है ! बिजली से भी तेज गति से चारों ओर आग लग गई और देखते ही देखते शहर भर में सनसनी फैल गई।

पंडित हरिहरनाथ शास्त्री की लड़की एक मेहतर के लड़के के साथ भाग गई।

बहुत बड़ी भीड़ पंडितजी के घर पर टूट पड़ी और सभी उत्तेजित

हो उठे। समाज पर इतना बड़ा आघात बरदाश्त के बाहर था। चारों ओर बड़ी तेजी से खोज शुरू हो गई। हरिजनों की भी बस्ती में तहलका मच गया।

—और उधर अदालत के सामने टप्पू और गौरा खड़े थे।

गौरा ने कहा—"मैं बालिग हूँ और स्वेच्छा से टप्पू से अपना विवाह करना चाहती हूँ। मुझे आज्ञा दी जावे।"

टप्पू ने भी यही कहा।

गौरा के पास बालिग होने के सुबूत थे। अदालत धर्म और समाज की व्यवस्थाओं को नहीं देखती है। प्रमाण पाकर गौरा को आज्ञा दे दी गई। इससे पहिले कि वह दोनों बाहर निकल सकें, लोगों की एक बड़ी भीड़ अदालत में घुस आई।

"यही हैं दोनों....मारो....मारो..."

"खबरदार ! कोई आगे कदम न बढ़ाना।"—गौरा चीख पड़ी।

स्थिति गम्भीर देख पुलिस का दस्ता आ धमका। भीड़ को नियंत्रित कर पुलिस ने अपने संरक्षण में दोनों को बाहर किया। सारा शहर अदालत के बाहर टूट पड़ा था। संगीनों की छाया में दोनों को जाते देख किसी का साहस न हुआ।

कुछ लोगों ने तालियाँ बजाईं और कुछ लोगों ने ढेले फेंके। अदालत के बाहर आते ही टप्पू ने अपनी माँ को देखा। बस्ती के तमाम स्त्री-पुरुषों और बच्चों की भीड़ भी वहाँ थी।

"माँ।"—टप्पू आगे बढ़ गया—"तुम नाराज तो नहीं हो ?"

जसुदिया गर्व से भरकर बोली—"मुझे पहले से ही मालूम था। भला, मैं नाराज क्यों होऊँगी ?"

टप्पू ने देखा लच्छो भी खड़ी थी। टप्पू को देखकर वह मुस्कुराकर आगे बढ़ी। गौरा का हाथ पकड़कर उसने अपने साथ कर लिया उसे।

बोली—"आओ बहिन! मैं अपने हाथों से तुम्हें मेंहदी लगाऊँगी।"

जसुदिया ने प्रसन्नता से चीखकर कहा—"मैं बड़ी धूमधाम से दोनों की शादी अभी करूँगी। सब जेवर बेच दूँगी। आओ सब लोग।"

बस्ती के तमाम लोगों के समूह के बीच घिरकर दोनों चल पड़े। सड़कों पर अपार भीड़ उमड़ पड़ी थी। सर्वत्र सनसनी थी। फुसफुसाहट थी। स्थान-स्थान पर तैनात पुलिस वातावरण बिगड़ने से बचा रही थी। शहर के अधिकारियों के समक्ष यह नयी मुसीबत आ गई थी। कानूनन दोनों को रोका नहीं जा सकता था।

अखबार वालों के बुलेटिन अलग निकल चुके थे।

"हरिजन बालक के साथ एक पंडित की लड़की की स्वेच्छा से शादी।"

सारे शहर में अजीब सनसनी थी।

बस्ती में आये सब। जसुदिया ने जल्दी-जल्दी तैयारियाँ की। लच्छो ने गौरा को दुलहिन बनाकर तैयार किया। उधर टप्पू दुलहा बन गया। नाना किस्म के बाद्य गूँज उठे!

"बोलो बाबा रविदास की जय!"

"जय!"

हरिजनों का उत्साह उछले न समा रहा था। दूर-दूर के हरिजन एकत्रित थे और एकता के समर्थक शहर के कुछ लोग भी अपार संख्या में मौजूद थे।

दूलहा दुलहिन मंडप तले आये।

मंत्रोच्चारण हुआ। विवाह की रस्म अदा की जाने लगी। फेरे पड़ने का समय आया। दो फेरे भी न पड़ पाये थे कि दूर से कोलाहल की ध्वनि सुनाई पड़ी।

"धर्म की जय हो।"

"अधर्म का नाश हो।"

सब सशंकित हो उठे।

फेरे समाप्त हुये ही थे कि लठबंद आदमियों का एक बड़ा गिरोह टूट पड़ा और अंधाधुंध लाठियाँ तथा ईंट पत्थरों की बौछार शुरू हो गई। मंडप के स्थान पर युद्धस्थल का दृश्य उपस्थित हो गया।

"मारो-मारो .."

"धर्म की जय हो .."

"अधर्म का नाश हो!"

मुट्ठी भर पुलिस उस स्थिति पर काबू न पा सकी। किराये के गुण्डे टप्पू और गौरा के पास तक पहुँच चुके थे।

लच्छो दौड़कर गौरा से लिपट गई।

गौरा चीख उठा—" चलो भाग चलो टप्पू काका। हम लोग दूर भाग चलें।"

"भागना कायरता है गौरा...."

"लेकिन...."

तब तक टप्पू गौरा और लच्छो पर गुण्डे टूट पड़े थे। इतनी लाठियां बरसीं वहाँ कि पता ही न चला कि तीनों कहाँ हैं!

अतिरिक्त पुलिस का दस्ता देर से आया। तब तक अधिकांश लोग भाग चुके थे।

मंडप के आस-पास खून ही खून था और लाशें पड़ी थीं।

उन लाशों में गौरा, टप्पू, जसुदिया और लच्छो के भी शरीर थे।

* बिदा *

हमारा अभिनय प्रकाशन

||) सुहाग गोविन्द सिंह
३) हमें जीने दो ,,
३।) पैर की धूल ,,
२।।) दिया जले रात भर ,,
३) ये भी इन्सान हैं ,,
२।।) एक रात के साथी ,,
३।।) मैं बेगुनाह हूँ ,,
३) लड़खड़ाते कदम ,,
४) गटर के कीड़े ,,
४) हड्डियों के ढाँचे ,,
२) मोड़ प्यारेलाल आवारा
२) डगमगाती जिन्दगी सोमनाथ
३) आवरण अरविन्द
२ उच्छृङ्खल निरुपमा देवी
२।।) मिट्टी की माया मिसेस पलबक
४) कठपुतली ,,
४।।) शेष का परिचय शरत् बाबू
२) विराज बहू ,,
२।) देहाती समाज ,,
४) गृह-दाह
५) वात्स्यायनकामसूत्र रामसुशील सिंह
२।।) आह डा० एल पाल राजन
२।।) रूपान्तर शारदाप्रसाद सिंह
२) पानी और पत्थर रमेश वर्मा
२) नयेजीवन, नयेअंकुर, नयेरास्ते
—रामनाथ पाण्डे
१।।।) बोतलानन्द—
विन्ध्याचलप्रसाद गुप्त
२) अंगारे कृष्णचन्द्र

सुभाष पुस्तक मन्दिर अवधगर्वी बनारस ।